CCP-02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

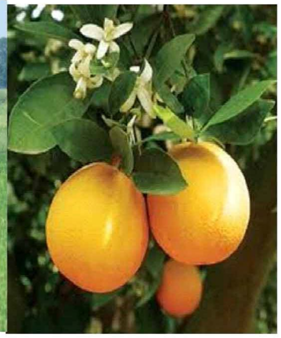

उद्यान विज्ञान (Horticulture)

-

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) एल. आर. गुर्जर
निदेशक, संकाय विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

समन्वयक / सदस्य

समन्वयक

प्रो. (डॉ.) बी. अरुण कुमार
आचार्य राजनीति विज्ञान
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

1. **डॉ. पुरुषोत्तम सिंह सिनसिनवार**
   सेवानिवृत्त आचार्य (मृदा विज्ञान) एवं क्षेत्रीय निदेशक,
   कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा
2. **प्रो. (डॉ.) ए.पी. सिंह**
   आचार्य (सस्य विज्ञान) इन्दिरा गांधी
   कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर(छ.ग.)
3. **डॉ. एस.एस. तोमर**
   आचार्य (सस्य विज्ञान) एवं क्षेत्रीय निदेशक,
   कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा
4. **श्रीमती श्वेता गुप्ता**
   गेस्ट फेकल्टी, कृषि विज्ञान
   वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
5. **डॉ. एन.एन. त्रिपाठी**
   सह आचार्य (कीट विज्ञान) कृषि विज्ञान केन्द्र
   कोटा

सम्पादक एवं पाठ लेखक

सम्पादक

डॉ. पुरुषोत्तम सिंह सिनसिनवार
सेवानिवृत्त आचार्य (मृदा विज्ञान) एवं क्षेत्रीय निदेशक,
कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा

इकाई लेखक	इकाई संख्या
1. **डॉ. पुरुषोत्तम सिंह सिनसिनवार** सेवानिवृत्त आचार्य (मृदा विज्ञान) एवं क्षेत्रीय निदेशक, कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा	8,10,12,13
2. **डॉ. एस.सी. जैन** आचार्य (उद्यान विज्ञान), कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा	1
3. **डॉ. एन.एन. त्रिपाठी** आचार्य (कीट विज्ञान), कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा	6,7,9
4. **डॉ. अशोक कुमार कुम्हार** सहायक संचालक कृषि किसान कल्याण तथा कृषि विकास भोपाल (म.प्र.)	15
5. **श्रीमती रश्मि मोदी** सहायक संचालक कृषि किसान कल्याण तथा कृषि विकास भोपाल (म.प्र.)	3
6. **श्री अविनाश सरोंजा** सहायक क्षेत्रीय प्रबन्धक नेशनल फर्टिलाइजर लिमिटेड (भारत सरकार का उपक्रम) नीमच (म.प्र.)	11
7. **श्रीमती श्वेता गुप्ता** गेस्ट फेकल्टी, कृषि विज्ञान वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	2,4,5,14

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. (डॉ.) विनय पाठक	**प्रो.(डॉ.) एल.आर. गुर्जर**	**प्रो. (डॉ.) पी.के. शर्मा**
कुलपति	निदेशक,संकाय विभाग	निदेशक, क्षेत्रीय सेवाएं
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी,

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन 2013

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

CCP-02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

विषय सूची

उदयान विज्ञान (Horiculture)

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई – 1	फल एवं सब्जियों के महत्व	6–19
इकाई – 2	उद्यान प्रबंधन	20–34
इकाई – 3	गृह वाटिका	35–45
इकाई – 4	रोपण प्रणाली	46–62
इकाई – 5	पेड़, झाड़ी, आरोही पौधे	63–76
इकाई – 6	आम	77–87
इकाई – 7	अमरूद	88–97
इकाई – 8	नींबूवर्गीय फल	98–108
इकाई – 9	पपीता	109–119
इकाई – 10	कद्दू वर्गीय सब्जियां	120–128
इकाई – 11	पत्तीवर्गीय सब्जियां	129–141
इकाई – 12	गोभीवर्गीय सब्जियां	142–150
इकाई – 13	सोलेनेशियस कुल	151–167
इकाई – 14	शोभायमान या पुष्प उद्यानिकी	168–183
इकाई – 15	संरक्षण/परीक्षण के सिद्धान्त और विधियां	184–192

इकाई- 1

फल एवं सब्जियों का महत्व

इकाई की रूप रेखा

1.0 उद्देश्य

1.01 प्रस्तावना

1.02 फल सब्जी की परिभाषा व अन्तर

1.03 फल एवं सब्जियों का देष में उत्पादन स्तर

1.04 फल एवं सब्जियों का महत्व

1.05 फल एवं सब्जियों का मानव आहार (पोष्टिक) महत्व

1.06 फल एवं सब्जियों का औषधीय महत्व

1.07 फल एवं सब्जियों का आर्थिक महत्व

1.08 फल एवं सब्जियों का औद्योगिक महत्व

1.09 फल एवं सब्जियों का सौन्दर्यपरक एवं धार्मिक महत्व

1.10 फल एवं सब्जियों के अन्य महत्व

1.11 सारांश

1.12 बोध प्रश्न

1.13 संदर्भ ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

फल एवं सब्जियों के बारे में समझना, फल एवं सब्जियों के वर्तमान उत्पादन स्तर से अवगत होना, फल एवं सब्जियों का मानव आहार में महत्व समझना, विटामिन्स एवं खनिज पदार्थो के अभाव से होने वाले रोगों के बारे में जानकारी प्राप्त करना। फल एवं सब्जियों का औषधीय महत्व, औधौगिक महत्व, आर्थिक महत्व व अन्य महत्वों की जानकारी प्राप्त करना।

1.01 प्रस्तावना

फल एवं सब्जियों का पोष्टिक महत्व,रोग उपचार में उपयोंग, इनके उत्पादन का आर्थिक एवं औधोगिक महत्व की जानकारी प्राचीन काल से मानव की समझ में हैं। क्यों कि फल एवं सब्जियाँ नि:संदेह मानव का सबसे प्राचीन भोजन है। आधुनिक खेती की शुरूआत से पूर्व मानव जंगलोमें रहकर जगंल से प्राप्त होने वाले कन्द मूलव फलों का उपयोंग अपने दैनिक आहार में पुरातन काल से करता रहा हैं। इस तथ्य के कई लिखित प्रमाण हैं। कि फलों कि खेती की शुरूआत 7000वर्ष ई. पूृ. खजूर के उत्पादन हुई हैं। तथा उसके बाद 3000वर्ष ई.पू. अनार, बेल व आम का उत्पादन शुरू हुआ। फिर जैसेजैसे मानव को फल एवं सब्जियों कें विभिन्न महत्व समझ में आने लगें तो लगातार इनका उत्पादन एवं मानव आहार में उपयोग बढता गया। आज

भारत में फल व सब्जियों का 221.4 मिलियन टन उत्पादन के साथ विश्व में चीन के बाद दूसरा स्थान हैं। फलों के औद्योगिक महत्व का पता इस बात से भी चलता हैं कि फलों से शराब बनाने का उल्लेख मुसलमानों के ग्रन्थ बाइबल में भी उलेखित हैं।

पुरातन काल से फल एवं सब्जियों के उत्पादन व उपयोग की जानकारी कई गन्थों में उलेखित हैं। परन्तु आज नई -2 तकनिकियां व उन्नत किस्मों में हुये विकास के कारण इनके उत्पादन में नये -नये आयाम स्थापित किये है परन्तु फल सब्जियों का उत्पादन मौसमीप्रकृति का होने के कारण बाजार में उपलब्धता एक साथ बढ जाती हैं। और साथ ही इनका उत्पादन जल्दी खराब होने वाला होने के कारण 20-30प्रतिशत उत्पादकटाई पश्चात खराब हो जाते है जिनका उपयुक्त प्रबन्धन कर मानव आहार में फलों एवं सब्जियों की आपूर्ति बढाई जा सकती हैं। क्योंकि भारत एक कृषि एवं कृषि आधारित उधोगों पर निर्भर हैं। उन्नत किस्मों एवं उच्च तकनिकियों के बावजूद हम भारतवासियों को विश्व स्वास्थ्य सगंठन के माप दण्डो के अनुरूप फल एवं सब्जियां उपलब्ध कराने में असमर्थ हैं। अतः वैज्ञानिको के सामने वर्ष 2014-15 तक 250 मिलियन टन फल एवं सब्जियों का उत्पादन लक्ष्य हैं। ताकि कुछ हद तक इनकी आपूर्ति बढ़ सके एवं भारत में कुपोषण की समस्या से निजात मिल सके।

1.02 फल एवं सब्जियों की परिभाषा एवं अन्तर

वैसे तो फल एवं सब्जियों से सभी लोग अच्छी तरह परिचित है। परन्तु फिर भी इनमे अन्तर स्पष्ठ करना आसान नही हैं। अतः निम्न बिन्दुओं के आधार पर फल एवं सब्जी में अन्तर स्पष्टतया समझा जा सकता हैं।

फल:- समान्यतया, बहुवर्षीय पौधौ से परागण एवं निषेचन की क्रिया के परिणाम स्वरूप पूर्ण रूप से विकासित एवं पके हुए अण्डाश्य से प्राप्त उत्पाद को फल कहते हैं। एवं जिसमें परिपक्व बीज विद्‌यमान होते हैं। परन्तु अपवाद स्वरूप कुछ पौधौ में अनिषेक जनन की क्रिया द्‌वारा भी अण्डाश्य बिना निषेचन के ही फल में परिवर्तित हो जाते है एवं ऐसे फलों में परिपक्व बीज भी नही बनते हैं। जैसे-अगूंर,अनन्नास,केला आदि।

फल अधिक शर्करा युक्त एवं अधिकतर अम्लीय प्रकृति के होने के कारण स्वाद में खट्टे-मीठे होते हैं। कटहल एवं आवलां जैसे अपवाद को छोडकर अधिकतर फल बिना उबाले/पकाये ही प्रयोग में लिए जाते है। केले जैसे अपवाद को छोड कर फल वृक्ष एक बार लगाने के बाद कई वर्षो तक फल देते हैं।

सब्जीः- सामान्यतया, एकवर्षीय पौधे का कोई भी विकसित एवं अद्रवविकसित भाग जिसका उपयोग उबालकर (पकाकर) तरकारी के रूप में किया जाता है, सब्जी कहलाता है। जैसे पत्तीदार सब्जिया (पालक, मेथी, पत्तागोभी इत्यादि), जड वाली सब्जियां (मूली गाजर शंकरकन्द आदि), तने वाली सब्जियाँ(गांठ गोभी, आलू, प्याज आदि) फलदार सब्जियाँ (टमाटर, मिर्च, बैंगन, कद्दूवर्गीय सब्जियां आदि) एवं बीज वाली सब्जियां (मटर, सेम आदि)

सब्जियों में शर्करा की मात्रा कम एवं अधिकतर अम्लीय प्रकृति की नहीं होने के कारण इनका स्वाद खट्टा मीठा नही होता हैं। सलाद में प्रयुक्त होने वाली सब्जियों को छोडकर अधिकतर

पकाकर (उबालकर) काम में ली जाती है। अधिकतर सब्जी वाली फसले अपना जीवन यापन एक मौसम अथवा एक वर्ष में पूर्ण कर लेती है एवं एक बार उगाने के बाद एक बार ही सब्जी उत्पादित करती है।

1.03 फल एवं सब्जियों का देश में उत्पादन स्तर

विश्व में फल एवं सब्जियों के उत्पादन में चीन के बाद भारत का दूसरा स्थान है। राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड, कृषि मत्रांलय भारत सरकार द्वारा वर्ष 2010-11 के लिए संग्रहित आकडो के अनुसार देश में 6.38 मिलियन हैक्टयर क्षेत्रफल से 74.88 मिलियन टन फलों का एवं 8.50 मिलियन हैक्टयर क्षेत्रफल से 146.55 मिलियन टन सब्जियों का उत्पादन हुआ है।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की जलवायु (शीतोष्ण- उतरी भारत में, उपोष्ण - दक्षिणी भारत में तथा उष्ण - मध्य भारत में) पाई जाने के कारण इस देश में विभिन्न प्रकार के फल सब्जियों को उगाये जाने की व्यापक सम्भावना है।

निम्नलिखित तालिका से पता चलता है कि भारतवर्ष में फल एवं सब्जियों के उत्पादन में निरन्तर वर्ष दर वर्ष वृद्धि हुई हे जो इस क्षेत्र में किय गये अथक प्रयासों का प्रमाण है।

तालिका- 1 भारत में विभिन्न वर्षो में उत्पादित फल एवं सब्जियों का क्षैत्रफल उत्पादन एवं उत्पादकता

वर्ष	फल			सब्जियाँ		
	क्षैत्रफल (मिलियन हैक्टयर में)	उत्पादन (मिलियनटन में)	उत्पादकता (मेट्रिक टन प्रति हैक्टयर)	क्षैत्रफल (मिलियन हैक्टयर में)	उत्पादन (मिलियन टन में)	उत्पादकता (मेट्रिक टन प्रति हैक्टयर)
1991-92	2.87	28.63	10.0	5.60	58.53	10.5
2001-02	4.01	43.00	10.7	6.15	88.62	14.4
2005-06	5.32	55.35	10.4	7.21	111.40	15.4
2010-11	6.38	74.88	11.70	8.50	146.55	17.3
2011-12 (लक्ष्य)	6.70	77.50	-	9.00	149.60	

उक्त आंकडो से ज्ञात होता है कि भारतवर्ष में फल एवं सब्जियों का क्षैत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता में लगातार वृद्वि हो रही है। जो उन्नत किस्मों की खोज, तकनीकी ज्ञान का प्रर्याप्त विकास एवं वैज्ञानिकों की मेहनत का सकारात्मक परिणाम है।

इसी प्रकार विश्व के प्रमुख फल सब्जी उत्पादक देशों पर नजर डाले तो भारतवर्ष का द्वितीय स्थान है जो निन्मलिखित तालिका से स्पष्ट हो जाता है।

तालिका- 2 विश्व के प्रमुख फल सब्जियां उत्पादक देश (वर्ष 2010-11 में)

क्र. सं.	देश	फल			सब्जियां		
		क्षैत्रफल (मिलियन हैक्टयर में)	उत्पादन (मिलियनटन में)	उत्पादकता (मेट्रिक टन प्रति हैक्टयर)	क्षैत्रफल (मिलियन हैक्टयर में)	उत्पादन (मिलियनटन में)	उत्पादकता (मेट्रिक टन प्रति हैक्टयर)
1	चीन	11.40	122.18	10.7	21.04.	473.06	22.5
2	भारत	6.38	74.88	11.7	8.5	146.55	17.3
3	ब्राजील	2.44	39.28	16.1	-	-	-
4	अमेरिका	1.14	25.38	22.2	1.12	35.29	31.40

उक्त आकडों से ज्ञात होता है कि फल एवं सब्जियों के उत्पादन की दष्टि से भारत देश भले ही द्वितीय स्थान रखता है परन्तु उत्पादकता में पिछडने के कारण इसमें और वृद्वि की गुंजाइश है। इसी प्रकार राजस्थान राज्य के फल एवं सब्जी उत्पादन के आंकडो पर नजर डाले तो प्रदेश इस क्षेत्र में काफी पिछड़ा नजर आता है।

तालिका- 3 वर्ष 2010-11 में राजस्थान प्रदेश का फल सब्जी का क्षैत्रफल उत्पादन एवं उत्पादकता

फसल	क्षैत्रफल (हजार हैक्टयर में)	उत्पादन (हजार टन में)	उत्पादकता (मेट्रिक टन/ हैक्टयर में)
फल	51.1	659.1	13.6
सब्जियां	140.3	885.0	6.3

भारत के विभिन्न राज्यों की स्थिति के मद्देनजर राजस्थान क्षैत्रफल की दृष्टि से देश का सबसे बडा राज्य होन के बाद भी फल एवं सब्जियों के उत्पादन में काफी पिछडा हुआ है।

तालिका - 4 फल उत्पादन में राजस्थान राज्य की देश में स्थिति (वर्ष 2010-11)

राज्य	फल उत्पादन (लाख टन में)	देश में स्थान

तमिलनाडु	99.65	प्रथम
महाराष्ट्र	95.13	द्वितीय
आन्ध्रप्रदेश	94.17	तृतीय
गुजरात	72.45	चतुर्थ
राजस्थान	6.95	उन्नीसवां

तलिका - 5 सब्जियां उत्पादन में राजस्थान राज्य की देश में स्थिति (वर्ष 2010-11)

राज्य	फल उत्पादन (लाख टन में)	देश में स्थान
पश्चिम बंगाल	267.25	प्रथम
महाराष्ट्र	176.80	द्वितीय
बिहार	146.30	तृतीय
आन्ध्रप्रदेश	118.47	चतुर्थ
राजस्थान	8.85	बीसवां

1.04 फलों एवं सब्जियों का महत्व

फलो एवं सब्जियों के विभिन्न महत्वों को निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।

1. फल एवं सब्जियों का मानव आहार में महत्व (पौष्टिक महत्व)
2. फल एवं सब्जियों का औषधीय महत्व।
3. फल एवं सब्जियों का आर्थिक महत्व।
4. फल एवं सब्जियों का औद्योगिक महत्व।
5. फल एवं सब्जियों का सौदर्य परक एवं धार्मिक महत्व।
6. फल एवं सब्जियों के अन्य महत्व।

1.05 फल एवं सब्जियों का मानव आहार में महत्व (पौष्टिक महत्व)

भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् (ICMR, New Delhi) के मापदण्डो के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को सन्तुलित आहार में प्रतिदिन 300 ग्राम सब्जियां (90 ग्राम कन्दीय या जडवाली सब्जियां 120 ग्राम हरी पत्तेदार सब्जियां एवं 90 ग्राम अन्य सब्जियां) व 120 ग्राम फलों (कम से कम दो तरह के) का उपयोग करना चाहिये। फल एवं सब्जियों को मानव आहार में संरक्षित भोजन या परिरक्षी आहार (Protective Food) की संज्ञा दी गई है। क्यों कि फल एवं सब्जियां अधिकतर विटामिन्स व खनिज लवणों से भरपूर होने के कारण मनुष्य को इनकी कमी से होने वाली बीमारियों से मुक्त रखकर स्वस्थ बनाये रखती है। वर्तमान में हमारे देश में 221.5 मिलियन टन फल एवं सब्जियों का उत्पादन हो रहा है। परन्तु देश की जनसंख्या अत्यधिक होने

के कारण इनकी उपलब्धता प्रति व्यक्ति काफी कम है। फल एवं सब्जियों द्वारा शरीर को मिलने वाले पोषक तत्व, उनके कार्य एवं उनकी प्राप्ति के प्रमुख स्त्रोत की जानकारी निन्म प्रकार दी जा रही है।

(अ) विटामिन्स

विटामिन्स 'ए' (Rational/Carotene) यह मनुष्य के शरीर की वृद्वि आँखों की रोशनी के लिए अति आवश्यक है। साथ ही यह विटामिन शरीर को रोगो व बीमारियों से लडने की शक्ति प्रदान करता है। इसमें उपस्थित केरोटीनोइड, केन्सर को बढ़ने से रोकता है। भोजन में इसकी मात्रा 3000-4000 अन्तर्राष्ट्रीय इकाई (I.U.) प्रति व्यक्ति प्रतिदिन के हिसाब से आवश्यक होती है।

कमी के लक्षण- इसकी कमी से रतौन्धी रोग हो जाता है। एवं बाल्यावस्था में शरीर एवं हड्डियों की वृद्वि रूक जाती है तथा बीमारियों से लड़ने की क्षमता कम हो जाती है।

आपूर्ति - विटामिन 'ए' की आपूर्ति आम, पपीता, कटहल, हरी पत्तेदार सब्जियां खाकर की जा सकती है।।

विटामिन 'बी - 1 (Thiamine) यह विटामिन मनुष्य की वृद्धि, जनन एवं सामान्य पाचन में आवश्यक होता है। भोजन में इसकी मात्रा एक मिलिग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन प्रर्याप्त रहती है।

कमी के लक्षणः- इसकी कमी से बेरी-बेरी नामक रोग हो जाता है अन्य विकृतियां जैसे त्वचा की संवेदनहीनता, लकवा, गले में सूजन भूख में कमी, वजन में कमी, हृदय के आकार में बढोतरी भी इस विटामीन की कमी के लक्षण है।

आपूर्तिः- इसकी आपूर्ति भोजन में काजू बादाम अखरोट, केला, सेव, पत्ता गोभी, प्याज, मटर आदि से की जा सकती है।

विटामिन 'बी-2- (Riboflavin)यह विटामिन छोटे उत्तक जैसे आखों का कोर्निया के श्वसन के लिए जरूरी है। एवं यह आखं के रेटीना में पाया जाता है। जिससे आखों की रोशनी के अनुकूलन में मदद मिलती है। यह इन्सुलिन हार्मोन के स्त्रावण को भी नियन्त्रित करती है। हमारे शरीर को प्रतिदिन 2.2 से 3.3 मिलिग्राम विटामिन बी-2 की आवश्यकता होती है।

कमी के लक्षणः- शरीर का भार कम होना, गले में खराश, घेघां, सिर में गंजापन नाक में सूजन, आदि विकृतियां उत्पन्न हो जाती है।

आपूर्तिः- इस विटामीन की आपूर्ति बेल, लीची, पपीता, काजू, हरी पत्तेदार सब्जियां खाकर की जा सकती है।

विटामिन 'बी-3 (Niacin or nicotinic acid) यह विटामिन मनुष्य में त्वचा के सामान्य कार्य, आहार नाल के कार्य एवं नाडी तन्त्र के कार्य करने के लिए जरूरी है।

कमी के लक्षणः- इसकी कमी से पैलेग्रा रोग (चमडी फटने की बीमारी) हो जाता है। चमडी खुरदरी हो जाती है। जीभ असमान्य हो जाती है।

आपूर्तिः- इस विटामिन की आपूर्ति भोजन में काजू खजूर, बेलपत्र, मटर, आलू, टमाटर व मिर्च खाकर की जा सकती है।

विटामिन 'बी-6' (Pyrixodin) यह विटामिन नवजात शिशुओं की बढवार के लिये अति आवश्यक होता हैं। यह विटामिन वसा व प्रोटीन की उपापचयी क्रियाओं में भी सहायक होता है।

कमी के लक्षणः- इसकी कमी से नाड़ी तन्त्र ठीक से कार्य नही करता है।

आपूर्तिः- इसकी कमी मटर, सेम, प्याज, मूली, अखरोट, आम, व अन्य फल खाकर की जा सकती है।

फोलिक अम्ल (Folic acid) यह अम्ल लाल रूधिर कणिकाओं को परिपक्व होने के लिए आवश्यक है।

कमी के लक्षणः- इसकी कमी से मेगालोब्लास्टिक रक्ताल्पता (Megaloblastic anaemia) नामक रोग हो जाता हैं। तथा त्वचा पर छाले पड़ जाते है।

आपूर्तिः- केला, जामुन, करौन्दा, सेव, किशमिस एवं हरी पत्तेदार सब्जियाॅ जेसे पालक, मेथी, खाकर की जा सकती है। (क्योकि थ्वसपब शब्द की उत्पति थ्वसपनउ से हुई है जिसका अर्थ पत्ती से है।)

विटामिन - 'सी' (Asbocoric acid) यह विटामिन शरीर की कोशिकाओं को एक दूसरे से जोडे रखने में, घावों को जल्दी भरने में तथा लाल रक्त कणिकाओं के निर्माण में सहायक है। लोह तत्व के पोषण में भी इसका योगदान है। इस विटामिन की शरीर को 50-70 मिलिग्राम मात्रा प्रति व्यक्ति प्रतिदिन के हिसाब से आवश्यक होती है।

कमी के लक्षणः- इसकी कमी से स्कर्वी नामक रोग हो जाता है। अन्य लक्षणों में मसूडो से खून आना, दांतो में सडन, हृदय रोग तथा शरीर की रोग रोधी क्षमता घट जाना, कमजोरी महसूस होना व घुटनों में दर्द होना है।

आपूर्तिः- यह विटामिन बार्बेडोस चेरी, आवलां, अमरूद, बेर, नींबू वर्गीय फलो, टमाटर, मेथी, कद्दूवर्गीय सब्जियों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

विटामिन- 'डी' - यह विटामिन केल्शियम व फास्पोरस के सही पोषण में मदद करता है। एवं हड्डियों एवं दांतो के निर्माण में सहायक होता है।

कमी के लक्षणः- इसकी कमी से सुखा रोग (Rickets) और ओस्टोमलेशिया (osteomalacia) नामक रोग हो जाता है जिससे हड्डियों व दांत कमजोर रह जाते है।

आपूर्तिः- काजू, किसमिस, बादाम, भिण्डी, हरी पत्तेदार सब्जियां, प्याज व लहसुन के द्वारा की जा सकती है।

विटामिन - 'ई' - यह विटामिन मनुष्य में सामान्य जनन के लिए आवश्यक है अतः इसे Anti-Sterlity विटामिन भी कहते है।

कमी के लक्षणः- इसकी कमी से जनन में बन्धयता (sterility in reproduction)आ जाती है।

आपूर्तिः- खजूर, बेल, जामुन, बैंगन, पत्ता गोभी, भिण्डी, पालक आदि के द्वारा की जा सकती है।

विटामिन- के - यह विटामिन चोट लगने पर खून के बहाव को रोकने के लिए आवश्यक होता है इस विटामिन द्वारा रूधिर में प्रोथ्रोम्बिन नामक तत्व का निर्माण होता है जो खून का थक्का बनाने में मदद कर चोट के समय रूधिर के बहाव को रोकता है।

कमी के लक्षणः- इस विटामिन की कमी से रूधिर के बहाव के समय रक्त का थक्का बनने में समय लग जाता है। और रूधिर का बहाव जारी रहने से खून का अधिक नुकसान हो जाता है। एवं इस स्थिति को हेमियोरेज कहते है।

आपूर्तिः- इस विटामिन की आपूर्ति करौन्दा, बेल, खजूर, अमरूद, व आलू, प्याज, टमाटर व हरी पत्तेदार सब्जियां खाकर की जा सकती है।

(ब)खनिज पदार्थ

खनिज पदार्थ मनुष्य को स्वस्थ रखने में मदद करते है अतः शरीर की अच्छी सेहत व वृद्‌वि के लिए भोजन में लगभग 10 आवश्यक खनिज पदार्थो की आवश्यकता होती है।

जिनमें के केल्शियम, फास्पोरस एवं लोहा तत्व अति आवश्यक होते है।

1. केल्शियमः- दांत एवं हड्‌डियों का अधिकाशं भाग केल्शियम से बना होता है। इसकी समुचित मात्रा के सेवन से दांत चमकीले और हड्‌डियां सुदृद बनी रहती हे। मनुष्य को प्रतिदिन 0.6 से 1.0 ग्राम केल्शियम की आवश्यकता होती है। जिसकी आपूर्ति लीची, काजू, कैथ, आवला, फालसा, अंजीर, बेल, नीबं़ू वर्गीय फल, गाजर प्याज, टमाटर, मिर्च, भिण्डी व हरीपत्तेदार सब्जियों से की जा सकती है।
2. फास्फोरसः- यह दांतो व हड्‌डियों में कोशिकाओं की संख्या का गुणन करने में सहायक होता है। इसके अतिरिक्त यह मांसपेशियों को मजबूत बनाने तथा कार्बोहाइड्रेट, वसा, एवं प्रोटीन के पाचन में सहायक होता है। इसकी आपूर्ति चीकू, बादाम, अखरोट, फालसा, अनार, कटहल, खजूर, स्ट्राबेरी आदि फलों एवं आलू, टमाटर, गाजर, ककडी व हरी पत्तेदार सब्जियों से की जा सकती है।
3. लोहाः- यह लाल रक्त कणिकाओं में पाये जाने वाले हीमोग्लोबिन का मुख्य अवयव है। यह पदार्थ रूधिर निर्माण में मदद करता है। इसकी 15-30 मिलिग्राम मात्रा प्रति व्यक्ति प्रति दिन आवश्यक होती है। इसकी आपूर्ति करौन्दा, खजूर, अखरोट, सेब, स्ट्राबेरी, आम आदि फलो से एवं प्याज भिण्डी, पत्तीदार हरी सब्जियों से की जाती है।

तालिका 6 - अन्य खनिज पदार्थो का पौष्टिक महत्व निम्न प्रकार है।

क्र.स.	खनिज पदार्थ	कार्य	आपूर्ति के साधन
1	सोडियम	रक्तचाप को नियन्त्रित करता है।	फल व पत्तीदार हरी सब्जियां
2	पोटेशियम	शरीर की वृद्धि एवं ऊतक निर्माण	काजू बादाम व सभी प्रकार की सब्जियां
3	मेग्नीशियम	हड्‌डियां, मांसपेशिया एवं नाडी के सामान्य कार्यो में सहायक है।	पिस्ता, अखरोट नींबू व सब्जियां
4	आयोडिन	थाइराइड ग्रन्थि के कार्य में सहयोग करता है।	प्याज, भिण्डी, सूखे मेवे इत्यादि
5	मेग्नीज	हड्‌डियों के विकास में सहायक	सब्जियां व फल

6	ताम्बा	लोहतत्व के पोषण में सहायक एवं श्वसन के लिए आक्सीजन की आपूर्ति करता है	मटर, मूली, गाजर, लहसुन, सेब, नाशपती आदि फल एवं सब्जियां
7	जस्ता	कार्बोहाइड्रेट एवं प्रोटीन के संश्लेषण में सहायक होता है	सभी फल एवं सब्जियों के द्वारा

(स) प्रोटीनः-

मनुष्य के शरीर की संरचना में प्रोटीन का विशेष महत्व होता है। यह शरीर में शक्ति एवं ऊर्जा का संचार भी करता है। प्रोटीन काजू, करौन्दा, नींबू,, अनार, कैथ आदि फलों से व मटर, सेम, मेथी सब्जियों में प्रर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। हालांकि इसकी अधिकतर आपूर्ति दालों द्वारा पूरी की जाती है।

(द) शर्कराः-

फल एवं सब्जियां शर्करा की भी अच्छी स्त्रोत है। अधिकाशं फलों में शर्कराऐं जैसे डैक्सट्राज, फ्रूक्टाज आदि प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। सब्जियों में विभिन्न प्रकार के कार्बोहाइड्रेट पाये जाते है। जो शरीर को कार्य करने के लिए उर्जा प्रदान करते है। हमारे शरीर को प्रतिदिन 400-420 ग्राम शर्करा की आवश्यकता होती है इसकी अधिकतर आपूर्ति धान्य फसलों से की जाती है। परन्तु इसकी आपूर्ति खजूर, केला, आलू, अंगूर, अमरूद, गाजर, शकरकन्द से भी की जा सकती है।

(य) वसाः-

फल एवं सब्जियां वसा की उत्तम स्त्रोत होती है। वसा शरीर की गर्मी बनाए रखने में मदद करती हे। वसा, प्रोटीन व काबोहाइड्रेट की तुलना में दुगनी से भी ज्यादा ऊर्जा व शक्ति प्रदान करती है। वैसेवसा की पूर्ति घी व तेल से की जाती है। परन्तु काजू, अखरोट, अवेकाडो, बादाम, में भी प्रचुर मात्रा में तथा मिर्च मेथी, मटर व अन्य सब्जियों में मध्यम से कम मात्रा में वसा पाई जाती है।

(र) पेक्टिनः-

खनिज तथा विटामिनों के अतिरिक्त कुछ फलों में पेक्टिन की मात्रा पाई जाती है। यह तत्व आसामान्य परिस्थिति में शरीर की रक्षा करता है। अमरूद, सेब, पपीता, बेर, कैथं पेक्टिन के सबसे अच्छे स्त्रोत है।

(ल) रेशाः-

शरीर में रेशे की अधिकतम आपूर्ति फल एवं सब्जियों के सेवन से ही की जाती है। ये आहारी रेशा जैसे सेल्यूलोस एवं लिग्निन होता है। जो पाचन शक्ति को बढाकर आहार नाल को साफ रखने में सहायक होता है। तथा कब्ज को रोकता है। चीकू, बेर, नाशपती व अन्य फल एवं सब्जियों में आहारी रेशा प्रर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

(व) कार्बनिक अम्लः-

फल व सब्जियों में विभिन्न प्रकार के कार्बनिक अम्ल पाये जाते है, जो भूख बढाने व पाचन क्रिया में सहायक होते है। उदाहरण के लिए नीबूं वर्गीय फलों में साइट्रिक अम्ल, इमली व अगूंर में टारटेरिक अम्ल पाया जाता है। यह अम्ल सभी फलों में विशेष रूप से पाये जाते है।

(ष) एन्जाइमः-

कुछ फलों में विशेष किस्म के एन्जाइम पाये जाते है। जो मनुष्य के शरीर में कई प्रकार की प्रक्रियाओं में हिस्सा लेकर हमें स्वस्थ रखने में सहायता करते है। उदाहरण के लिए पपीते में पेप्सिन, अनन्नास में ब्रोमेलिन, अजींर में फिसिन होते है। जो विशेष महत्व रखते है।

1.06 फल एवं सब्जियों का औषधीय महत्व

फल व सब्जियों का औषधीय महत्व चरक सहिंता व सुश्रुत संहिता में भी वर्णित है। फलों में उपस्थित खनिज पदार्थ, विटामिन्स व कार्बनिक अम्ल मनुष्य के शरीर में प्रति आक्सीकारकों का काम करते है। जो हमें दिल व पेट की बीमारियों से बचाते है। जामुन व करेले का उपयोग शुगर के रोगियों के लिए व बेल का रस पेट की बीमारियों को दूर करने के काम आता है। लू लगने पर प्याज का सेवन अच्छा माना जाता है तो बीमार व्यक्ति को तुरन्त उर्जा प्रदान करने के लिए मोसम्बी के रस की महत्वता है। आवलें का प्रयोग कई आयुर्वेदिक दवाओं में किया जाता है। और च्यवनप्राश का महत्व किसे नही पता जो सर्दियों में घर-घर में रामबाण औषधी का काम करता है। पपीते के सेवन से कब्ज को दूर किय जा सकता है तो आवंला व नीबूं वर्गीय फलो का सेवन स्कर्वी नामक बीमारी को दूर करता है। आम, पपीता, गाजर का सेवन रतौन्धी से बचा सकता है। तो हरड, बहडा व आवलें से बना त्रिफला चूर्ण पेट की समस्त बीमारियों को दूर करने में सहायक होता है। फल एवं सब्जियों के सेवन से अस्थमा, ब्रोंकाइटिस, बुखार, रक्ताल्पता, पेट के अल्सर आदि को ठीक किया जा सकता है। फल एवं सब्जियों के अतिरिक्त फलदार पेडो की छाल, जडे पत्तियां व अन्य उत्पाद भी औषधी का काम करते है, । अनार का सेवन रक्ताल्पता को दूर करता है, तो उसका छिलका खांसी को दूर करने के काम आता है।

फल एवं सब्जियों का औषधीय महत्व अधिक होने के कारण ही कहावत भी प्रचलित है कि एक अनार सौ बीमार एवं An apple a day keeps the doctor away यानि एक सेव का प्रतिदिन सेवन करने से अधिकतर बीमारियों को दूर रखकर डॉक्टर के पास जाने से बचा जा सकता है।

अतः उक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते है कि फल एवं सब्जियों को जिनको संरक्षित अथवा प्रतिरक्षी भोजन की संज्ञा दी गई है वो सटीक एवं सही प्रतीत होती है।

1.07 फल एवं सब्जियों का आर्थिक महत्व

आज फल एवं सब्जियों का उत्पादन बहुत से देशों की समृद्धि में अहम् भूमिका अदा कर रहा है क्योंकि भारत सहित कई देशों की अर्थ व्यवस्था एवं विकास दर फल एवं सब्जियों के उद्योगो पर काफी निर्भर करती है। उदाहरण के लिए फ्लोरिडा में संतरा, वेस्टइण्डिज में केला,

हवाई में अनन्नास, पौलेण्ड में स्ट्राबेरी, ब्राजील में नीबूंवर्गीय फल, न्यूज़ीलेण्ड में कीवी, चीन में लीची व सब्जियां तथा भारत में आम ऐसे फल है जिनका इन देशों की आर्थिक व्यवस्था में अहम योगदान है। वैसे भी सर्वाधिक जनसंख्या वाले देश चीन व भारत प्रमुख फल व सब्जी उत्पादक देश है। आज फल सब्जी उद्योग भारत के आर्थिक सुधार में निम्न प्रकार योगदान कर रहा है।

1. **अधिक उत्पादन -** यह सर्वविदित तथ्य है कि फलो एवं सब्जियों के इकाई क्षैत्रफल से धान्य फसलो की अपेक्षा तीन से चार गुणा अधिक उत्पादन मिलता है। तथा जिसका बाजार मूल्य भी धान्य फसलों से ज्यादा होता है। उदाहरण के लिए गेंहू की फसल से औसतन 40-50 क्विंटल उपज प्रति हैक्टयर प्राप्त होती है जबकि आम से 100 क्विंटल, टमाटर से 200-250 क्विंटल, केले से 300-350 क्विंटल, आलू से 500-600 क्विंटल व अन्य फल एवं सब्जियों से भी इसी प्रकार अधिक उपज प्राप्त होती है। इसलिए धान्य एवं दलहनी फसलों की तुलना में प्रति इकाई क्षैत्रफल से फल एवं सब्जियों से अधिक आमदनी प्राप्त होती है।
2. **विदेषी मुद्रा की प्राप्तिः-** पिछले कुछ वर्षो से ताजा फल व सब्जियां एवं उनके प्रसंस्कृत उत्पादों का निर्यात बहुत तेजी से विभिन्न देशों में बढा है।

तालिका 7. सन् 2010-11 में भारत वर्ष से फल एवं सब्जियों का निर्यात

क्र.स.	उत्पाद	मात्रा (मिलियन टन में)	मूल्य (करोड़ रूपये में)
1	ताजा फल व सब्जियां	20.72	3855.62
2	फल एवं सब्जियों के प्रसंस्कृत उत्पाद	6.22	2647.33
कुल		26.94	6502.95

उक्त तालिका से स्पष्ट होता हे कि वर्ष 2010-11 में भारत वर्ष से 26.94 मिलियन टन ताजा फल व सब्जियां एवं उनके विभिन्न प्रसंस्कृत उत्पादो का विभिन्न देशो में निर्यात हुआ है जिससे कुल 6502.95 करोड रूपये विदेशी मुद्रा के रूप में अर्जित की गई है।

3. बेरोजगारों की समस्या को दूर करने में सहायताः- भारत में अत्यधिक जनसंख्या होने के कारण बेरोजगारी की समस्या हमेशा बनी रही है।अतः फल एवं सब्जियों के उत्पादन व प्रसंस्कृत उद्योगो हेतु श्रमिकों की आवश्यकता होने से इन उद्योगो ने काफी हद तक बेरोजगारी की समस्या को हल किया है।
4. देश के शुष्क एवं अद्र्‌व शुष्क क्षेत्रों में व्यर्थ एवं बेकार पडी भूमि का उपयोग फल एवं सब्जियों के उत्पादन में लाकर अधिक आय प्राप्त की जा सकती है।

1.08 फल एवं सब्जियों का औद्योगिक महत्व

फल एवं सब्जियों के उत्पादन पर बहुत से उद्योग कच्चे माल की आपूर्ति हेतु निर्भर करते है। फल एवं सब्जियों पर आधारित प्रसंस्कृत उद्योग जैसे किसमिस बनाना, बियर व शराब का निर्माण आचार, मुरब्बा, जैम, जैली, स्कवैश, शर्बत, सॉस, नारियल तेल, प्रोटीन, स्टार्च,

पपेन, टाफी, आदि कच्चे माल के रूप में फल एवं सब्जियों के उपयोग पर निर्भर रहते है। इसके साथ ही प्रसंस्करण उद्योग आवश्यक उपकरण, रसायन, चीनी, बोतल, बर्तन, परिरक्षक, पेकिंग के लिए सामान आदि आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विभिन्न उद्योगों को बढावा देते है। अतः इनके उत्पादन से इन सभी उद्योगों को जेसे पेकिंग उद्योग, परिवहन उद्योग, प्रसंस्करण उद्योग, शराब उद्योग, नारियल तेल उद्योग आदि को बढत मिलती है जिससे कई लोगो को रोजगार भी उपलब्ध होता है।

1.09 फल एवं सब्जियों का सौदर्य परक एवं धार्मिक महत्व

फल एवं सब्जियों के उत्पादन से सौंदर्यकरण का कार्य भी करते है। फूलो से लदी फलदार पौधों की डालियाँ किसको अच्छी नही लगती। कुछ फलदार पौधे जैसे नीबू वर्गीय, आम, आड़ू, के फूलों की खूशबू सब का मन मोह लेती है।

फल एवं सब्जियों का धार्मिक महत्व का पता इस बात से चलता है कि भारतीय संस्कृति में नारियल, आम, केला व अन्य फल अपने पुज्य भगवान को भी चढाये जाते है। बेलपत्र के पते भगवान शिव को चढाने के काम आते है तो आम की सूखी लकडियां हवन के लिए महत्वपूर्ण समझी जाती है। विशेष अवसर एवं धार्मिक त्यौहारों पर आम व केले की पत्तियों से पाराम्परिक तरीकों से घर के दरवाजो को सजाया जाने का रिवाज भी प्राचीन काल से चला आ रहा है। अतः फल व सब्जियों का धार्मिक महत्व भी कम नही है।

1.10 फल एवं सब्जियों का के अन्य महत्व

1. पर्यावरण को संतुलित बनाये रखने मे फलदार पौधौ का महत्वपूर्ण योगदान है ।
2. आम, इमली, जामुन आदि फलदार पौधों को हाइवे पर रोड साइड सुन्दरता बढाने के लिए पौध रोपण हेतु काम में लिया जाता है।
3. फलदार पौधो से भोजन के अलावा जलाने की लकड़ी, इमारती लकड़ी, व सब्जियों से पशुओं को चारा भी मिल जाता है।
4. फल वृक्ष की जड़े व जमीन पर फैलने वाली सब्जियां मृदा कटाव को रोकते है।
5. फलवृक्ष औद्योगिक प्रदूषण को भी कम करने में सहायक होते हैं।

1.11 सारांश

भारत एक प्रमुख फल एवं सब्जी उत्पादक देश है यहां वर्ष 2010-11 में लगभग 14.88 मिलियन हैक्टयर क्षैत्रफल से 221.43 मिलियन टन फल एवं सब्जियों का उत्पादन हुआ है। हमारे देश में विभिन्न प्रकार की जलवायु होने के कारण 200 से अधिक सब्जियां व 50 से अधिक फल उगाये जाते है जिनमें से 80 से अधिक सब्जियां व 30 से अधिक फल प्रमुखता से उगाऐ जाते है। भारत की 60 से 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आधारित व शाकाहारी होने के कारण फल एवं सब्जियों का महत्व इस देश में और बढ जाता है। फल एवं सब्जियों को विटामिन व खनिज लवण की अधिकता होन के कारण संरक्षित/प्रतिरक्षी आहार की श्रेणी में रखा गया है। परन्तु भारत में अधिकतर जनसंख्या गांवों में निवास करती है जिनको इस तथ्य के बारे में नही

पता है अतः ऐसे ग्रामीण क्षैत्रों में फल एवं सब्जियों का उत्पादन बढाकर इनका महत्वता मानव आहार व अन्य उपयोग के बारे में समझाया जाना आवश्यक है। संक्षिप्त में हम कह सकते है कि-

1. फल एवं सब्जियां मानव के लिए सन्तुलित आहार का एक महत्वपूर्ण भाग है।
2. फल एवं सब्जियों का उपयोग भोजन की ग्राहयता (Palatability) को बढ़ाता है।
3. फल एव सब्जियां खनिज लवण, विटामिन्स, प्रोटिन एवं कार्बोहाइड्रेट का प्रमुख स्त्रोत है।
4. फल एवं सब्जियों के सेवन से मांसाहारी भोजन करने वालो में उत्पन्न अम्लीयता (Acidity) को दूर किया जा सकता है।
5. फल एवं सब्जियां के सेवन से आहारी रेशे की आपूर्ति की जा सकती है जो पाचन क्रिया को बढाकर कब्ज दूर करने में सहायक होता है।
6. फल एवं सब्जियों में खनिज लवण व विटामिन्स होने के कारण सबसे सस्ता प्राकृतिक संरक्षित आहार माना जाता है।

1.12 बोध प्रश्न

1. मानव में स्कर्वी नामक बीमारी किस विटामिन की कमी के कारण होती है।
   (अ) विटामिन ए की कमी के कारण (ब) विटामिन बी-1 की कमी के कारण
   (स) विटामिन बी-2 की कमी के कारण (द) विटामिन सी की कमी के कारण
2. भारत देश में वर्ष 2010-11 में सब्जियों का कुल उत्पादन कितना हुआ है।
   (अ) 473.06 मिलियन टन (ब) 221.43 मिलियन टन
   (स) 146.55 मिलियन टन (द) 87.88 मिलियन टन
3. फल एवं सब्जियों को प्रतिरक्षी/संरक्षित आहार क्यों कहा जाता है।
   (अ)इनमें पाऐ जाने वाले प्रोटिन की अधिकता के कारण।
   (ब) इनमें पाऐ जाने वाले विटामिन्स एवं खनिज पदार्थो की अधिकता के कारण।
   (स) इनमें पाऐ जाने वाले कार्बोहाइड्रेटस् की अधिकता के कारण।
   (द) इनमें पाऐ जाने वाले वसा की अधिकता के कारण।
4. विटामिन बी-2 का रासायनिक नाम क्या है।
   (अ)रेटिनोल (ब) थाईमिन (स) राइबोफ्लेविन (द) नायसिन
5. मानव में मेगालोब्लास्टिक रक्ताल्पता (Megaloblastic anaemia) किस तत्व की कमी के कारण होता है।
   (अ) फोलिक अम्ल की कमी के कारण (ब) एस्कार्बिक अम्ल की कमी के कारण
   (स) साइट्रिक अम्ल की कमी के कारण (द) टारटेरिक अम्ल की कमी के कारण

बोध प्रश्नों के सही उत्तर

प्रश्न संख्या	सही उत्तर क्रमांक
1	द
2	स
3	ब

4	स
5	अ

1.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Singh,Ranjit,1992,*Fruits*,National Book Trust.
2. Katyal,S.L.and Chadha, K.L.,1995, *Vegetable Growing In India*, Oxford and IBH Publishing Company,pp.157.
3. Bose, T.K.,1985,*Fruits of India: Tropical and Sub-Tropical,* Naya Prokash,pp.637.
4. Singh,S.P., 1989, *Production Technologies of Vegetable Crops*,ARCC, pp.380

इकाई 2

उद्‌ययान प्रबंधन

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देष्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 फलोद्‌यान की स्थापना

2.3 फलों का चुनाव

2.4 उद्‌यान के विभिन्न अंग -

2.5 वृक्षों का स्थान

2.6 अलंकृत उद्‌यानों की शैलियां

2.7 अभिन्यास

2.8 शोभाकारी बागवानी

2.9 सारांश

2.10 अभ्यास प्रष्न

2.11 संदर्भ ग्रंथ

2.0 उद्देष्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि -

- फलोद्‌यान की स्थापना कैसे की जाती हैं।
- डद्‌यान के विभिन्न अंगों को उचित स्थानों पर रेखांकन करना।
- अंलकृत उद्‌यानों का ज्ञान प्राप्त करना।
- शोभाकारी बागवानी के बारे में जानना।

2.1 प्रस्तावना

बाग के लिए उसी फल का चयन करना चाहिए, जो भूमि विशेष के लिए उपयुक्त हो या उस स्थान का चुनाव करें जो जलवायु को ध्यान में रखते हुए उस फल के लिए उपयुक्त हो।

यह हमेशा आवश्यक है कि नये उद्‌यान लगाने के लिए जिस स्थान का चुनाव करें वह सडक से जुडा हो तथा सिंचाई के साधन उपलब्ध हो। मिट्टी बाग के उपयुक्त हो। फल - वृक्षों के लिए हल्की दोमट मिट्टी अच्छी रहती है जिसमें पानी का निकास अच्छा हो। मिट्टी का पी.एच.पी. मान 6 या 7 के आसपास हो।

पौधे लगाने से पहले कुछ प्रारम्भिक क्रियायें करना आवश्यक है। सबसे पहले प्रयोगात्मक योजना के अनुसार विभिन्न खंडों, स्टोर, सडक और सिंचाई की नालियों का स्थान निर्धाररित कर लेना चाहिए। इसके बाद खेत को समतल करें और खाद मिला दें। यदि बाग की भूमि खराब हो तो आवश्यक है कि उस भूमि की उपजाऊ शक्ति को हरी खाद द्‌वारा बढा लें। सिंचाई की विधि भी बाग लगाने के पहले ही तय कर लेनी चाहिए।

2.2 फलोद्यान की स्थापना

1. फलों के वृक्ष अनेक वर्षों तक जीवित रहते हैं तथा फूलते-फलते है अर्थात् स्थायी प्रकृति के होते है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि उद्यान की स्थापना में उद्यान से सम्बन्धित सभी पहलुओं को ध्यान रखना चाहिए। फलोद्यान स्थापना के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें आती है -
   स्थल का चुनाव
2. फलों का चुनाव
3. उद्यान विन्यास या ले-आउअ
4. प्रारम्भिक तैयारियां
5. पौध रोपण

स्थल का चुनाव -

उद्यान स्थापित करने के लिए स्थल का चुनाव महत्वपूर्ण है। उद्यान कहां स्थापित करना चाहिए, जिससे कि उसका व्यावसायिक रूप उभर संके। उद्यान स्थापना के पूर्व सर्वेक्षण आवश्यक होता है, जिससे कि स्थल के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकें। सर्वेक्षण के समय भूमि की स्थिति, प्रकार व दशा, सिंचाई के साधन आवागमन के साधन, आस-पास का वातावरण, श्रमिकों तथा अन्य साधनों का उपलब्ध होना आदि की जानकारी एकत्र करनी चाहिए।

अ भूमि का प्रकार - उद्यान के लिए भूमि गहरी होनी चाहिए। भूमि गहरी होने से तात्पर्य है कि कम से कम भूमि के 2 मीटर गहराइ्र तक कोई चट्टान या मुरम आदि की कड़ी पर्त न हो। वृक्षों की जड़े भूमि में गहराई तक जाती है। कड़ी पर्त होने या चट्टान होने से उनके विकास में बाधा पहुंचती है। इसलिए भूमि पर तीन या चार स्थानों पर 2 मीटर गहरा गड्ढा खोदकर मिट्टी का अनुमान लगा लेना चाहिए। विभिन्न स्तरों पर मिट्टी की क्या बनावट है जिसे मृदा-परिच्छेदिका कहते है, ज्ञात हो जाती है। भूमि में जल का निकास होना अनिवार्य है। जिस भूमि में जल का निकास उचित मात्रा में नहीं है या सरलता से नहीं बनाया जा सकता हो, उद्यान के लिए नहीं चुनाव चाहिए। मिट्टी यदि दोमट या बलुई - दुमट या कछारी हो तो उत्तम है। चिकनी मिट्टी में वृक्ष ठीक से नहीं पनप पाते हैं, क्योंकि ऐसी भूमि में जल का निकास कम होता है। भूमि का समतल होना आवश्यक नहीं है, किन्तु अधिक ढलावदार या ऊबड़-खाबड़ भूमि में सिंचाई व्यवस्था कठिन होती है और भूमि-क्षरण भी अधिक होता है।

आ सिंचाई के लिए जल की उपलब्धता - फलोद्यान में वर्षा ऋतु को छोड़कर शेष दिनों में जल की आवश्यकता होती है। आम, अमरूद, अंगूर, पपीता, केला, अनन्नास, सेब, नीबू, सन्तरा, मोसम्बी आदि फलों के वृक्षों को नियमित सिंचाई की आवश्यकता होती है जबकि कुछ फल जैसे आंवला, बैर, फालसा आदि को कम जल की आवश्यकता होती है। सिंचाई के लिए जल कम लागत पर भरपूर मात्रा में उपलब्ध हो सकें, यहीं दृष्टिकोण रखकर स्थल चुनना चाहिए।

इ आवागमन की सुविधा - फलोद्यान में वर्ष पर्यन्त आवागमन की सुविधा होनी चाहिए। राष्ट्रीय मार्ग से जुड़ा हो तो उत्तम है, किन्तु ऐसे स्थल कम प्राप्त होते हैं, ऐसा साधन तो अवश्य ही होना चाहिए कि बैलगाड़ी, ट्रक आदि वर्षा ऋतु में भी उद्यान पहुंच सकें। पौधे, खाद, दवाईयां आदि लाने और उत्पादित फल को बाजार तक एक निश्चित समयावधि में पहुंचना चाहिए। ऐसा न होने पर कभी-कभी भारी हानि उठानी पड़ती है।

ई बाजार व्यवस्था - फलोद्यान की स्थापना का अन्ततः यही उद्देश्य होता है कि उससे उत्पादित फल उचित मूल्य पर बिक जाएं और लाभ प्राप्त किया जा सके। फल पकने के पश्चात शीघ्र खराब होने लगते हैं। विक्रय स्थल समीप हो तो उत्तम हैं जिससे कि फलों को दूर तक भेजने में अधिक व्यय न हो। आवागमन में फलों का गुण भी खराब हो जाता है। समीप में शासकीय शीत संग्रहण शीत संग्रहण अथवा फल-परिक्षण केन्द्र होने से विक्रय की समस्या नहीं रहती है। किसी फल परिरक्षण केन्द्र या कैनिंग फैक्टरी से ये निश्चित हो जाय कि उसे इस समय कितने फल की आवश्यकता होगी तब भी तुरन्त विक्रय की समस्या नहीं रहती।

वातावरण की स्वच्छता - मनुष्य के समान प्रदूषित वातावरण फल वृक्षों के लिए भी हानिकारक होता है। वृक्षों का विकास एवं फलन दोनों ही प्रभावित होते हैं। कारखानों से निकली हुई विषैली गैस वातावरण को दूषित कर देती है। जैसे ईट के भट्टों के समीप आम का उद्यान कभी नहीं लगाना चाहिए। ईट के भट्टों से निकली हुई गैस के कारण आम के फलों को काला धब्बा रोग हो जाता है। आम फल अनुसंधान केन्द्र द्वारा किए गए सर्वेक्षण में ज्ञात हुआ है, जहां पर ईंट के भट्टे नहीं थे वहां यह रोग 5 प्रतिशत कम था। जहां पर ईट के भट्टे थे वहां यह प्रतिशत 60 से 80 था।

ऊ श्रमिक तथा अन्य साधन उपलब्ध होना - उद्यान वर्षभर कुछ न कुछ कार्य रहता है, इसलिए श्रमिकों की अधिक आवश्यकता होती है। उत्पादन व्यय को कम करने के लिए रोजी पर श्रमिक उपलब्ध हो सकें, इसका भी ध्यान रखना आवश्यक है। इसके साथ ही उद्यान के लिए आवश्यक वस्तुएं जैसे खाद, उर्वरक, रोग और कीटनाशी दवाइयां, उपकरण आदि उपलब्ध हो सकें जिसे कि समय पर उद्यानिक क्रियाएं पूरी की जा सकें।

उपर्युक्त बातें एक आदर्श उद्यान की स्थापना में आवश्यक है, किन्तु सभी बातें या सुविधाएं एक साथ उपलब्ध नहीं हो सकती। इसमें प्रमुख सिंचाई सुविधा और बाजार व्यवस्था है जिनका ध्यान उद्यान की स्थापना के समय रखना चाहिए।

2.3 फलों का चुनाव

चुने हुए स्थल में कौन से फल लगाएं जिससे कि विपुल उत्पादन के साथ उचित आय प्राप्त हो, उद्यान स्थापना का दूसरा महत्वपूर्ण विषय हैं। यदि जलवायु बाजार व्यवस्था तथा फलों के प्रकार एवं किस्म के अनुसार फलों के प्रकार एवं किस्म के अनुसार फलों का चुनाव नहीं किया गया तो उद्यान व्यवसाय में असफलता प्राप्त हो सकती है

अ जलवायु - फलों के उत्पादन मे यह निर्णयाक घटक है। जलवायु को अपनी इच्छानुसार परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। प्रत्येक फल वृद्वा के लिए एक निश्चित जलवायु की

आवश्यकता होती है, उसी में वह पूर्णतया वृद्धि कर सकता है और फूल - फल सकता है। अतः चुने हुए स्थल का तापक्रम (अधिकतम एवं न्यूतनम), वर्षा, आर्दता आदिज्ञान कर लेना अनिवार्य है। इस वातावरण में कौन से फल लिये जा सकते हैं, इसका निर्णय किसी फल विशेषज्ञ से करा लेना चाहिए। चुने हुए स्थल के समीप रहने वाले निवासियों से भी इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकती है। प्रयोग के तौर पर व्यावसायिक उद्यान लगाना उचित नहीं होगा। उदाहरण के लिए रायपुर क्षेत्र में सेब, अंगूर, लीची आदि लगाना उचित नहीं है। यहां पर नींबू, अमरूद, आम, पपीता, केला आदि सफलतापूर्वक लगाए जा सकते है।

आ बाजार की आवश्यकता - जिस क्षेत्र में फल की बाजर में मांग अधिक हो उसी को लगाना लाभदायक रहता है। वैसे तो फल को बाजार उचित प्रचार माध्यम से बनाया जा सकता है, किन्तु इसमें कठिनाई होती है। फल परिरक्षण केन्द्रों की आवश्यकतानुसार भी फल उत्पादित किए जा सकते हैं।

इ जल की आवश्यकता - फलों का चुनाव फल वृक्षों क ेजल की आवश्यकता के अनुसार किया जाना चाहिए। यदि पर्याप्त जल वर्ष पर्यन्त उपलब्ध है, तो जलवायु के अनुसार नीबू, मौसम्बी, अंगूर, केला, पपीता, अनन्नास ले सकते है। इन फल वृक्षों को अधिक और नियमित जल की आवश्यकता होती है, कुछ फल ऐसे भी होते है, जिन्हें अपेक्षाकृत कम जल की आवश्यकता होती है, जैसे आम, अमरूद, कटहल, लीवी, चीकू आदि। कुछ फल वृक्ष ऐसे होते हैं, जिन्हें एक बार लग जाने के पश्चात् नियमित सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। कुछ फल वृक्ष ऐसे होते हैं जिन्हें एक बार लग जाने के पश्चात नियमित सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है, जैसे बेर, आंवला, फालसा, सीताफल, करौंदा, बेल, खिरनी, शहतमत, कमरख, जामुन आदि। अतः उपलब्धक जल के अनुसार ही फलों का चुनाव करना उचित है।

ई फलों का प्रकार - व्यावसायिक दृष्टिकोण से यह उचित होता है कि एक या दो या तीन प्रकार के फल ही उद्यान में लगाए जाएं। जैसे आम का उद्यान, आम और नींबू का उद्यान या अमरूद-आम-नींबू का उद्यान। उद्यान में फलों की नुकायत लगाना अच्छा नहीं होता। मिश्रिम फलों के उद्यान लगाना कई कारणों से उचित नहीं होता। यह अलग बात है कि एक या दो वृक्ष अनेक फलों के परीक्षण के तौर पर लगा लिये जाएं। इसके विपरीत वृक्षारोपण अर्थात् दो या तीन प्रकार के फलों का उद्यान लगाने से निम्न लाभ है -

साख का निर्माण - व्यवसाय में साख निर्माण अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। कोई स्थान मे यदि किसी वस्तु की प्रतिष्ठा बन जाए तो उसके विक्रय में सफलता हो जाती है। जैसे भुसावल का केला, बनारस का आंवला, और बेर, इलाहाबाद का अमरूद, नागपुर का संतरा, मांडव की खिरनी ऐसे उदाहरण है। जिनके नाम से फल बिकते है। एक ही प्रकार का फल विशेष क्षेत्र में लगा देने से उस फल विशेष की साख बढ़ जाती है।

औद्योगिकरण में सहायता - एक ही प्रकार के सामूहिक उद्यान लगाने से फलों से सम्बन्धित उद्योग लगाने में सहायता प्राप्त होती है। जैसे - अमरूद के बगीचे से उत्पादित फलों से जैम, जेली बनाने के उद्योग लगाए जा सकते हैं। यदि उद्यान में अनेक प्रकार के वृक्ष लगे हो तो औद्योगिकरण सम्भव नहीं हो पाता।

तकनीकी कुशलता में वृद्धि - प्रत्येक फल वृक्ष के लिए आवश्यक उद्यान क्रियाएं अलग - अलग होती है। अंगूर में कटाई छंटाई, नींबू वर्गीय फलों में सूक्ष्म तत्वों का छिड़काव, बोर्डो पेस्ट लगाना, फालसा में कटाई आदि। पौध प्रवर्धन विधियां तथा रोग एवं कीड़ों का आक्रमण भी भिन्न होता है, अनेक प्रकार के फलों के वृक्ष लगे होने से सभी में तकनीकी कुशलता प्राप्त करना कठिन होता है, जबकि एक या दो प्रकार के फलों में यह अत्यन्त ही सरल हो जाती है। उद्यान का प्रबन्ध करने में भी सफलता होती है।

अनुकूल वातावरसा का निर्माण - फल वृक्षों में सामूहिक जीवनयापन एवं विकास की प्रवृति देखी जाती है। वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि यदि एक ही प्रकार के वृक्षों को समूह में लगाया जाय तो वहां का वातावरण कुछ प्रकार निर्मित हो जाता है कि उन वृक्षों के विकास में सहायक होकर उनको समुचित रूप से फूलने फलने का अवसर देता है।

भारत के उद्यानों में यही एक विशेषता है कि वे बिखरे हुए हैं। अनेक छोटे - छोटे उद्यान उनमें भी अनेक प्रकार के फल रहते हैं । इस तरह से छोटे - छोटे टुकड़ों में बंटे रहने के कारण उद्यानिक क्रियाओं में तो कठिनाई होती ही है, उनका विकास भी सम्भव नहीं हो पाता है। अतः उद्यान स्थापित करने में इस सिद्धान्त को ध्यान में रखना चाहिए।

उद्यान का विन्यास या रेखांकन या लेआउट उद्यान स्थापना की रीढ है। उद्यान के विभिनन अंग को उचित स्थान पर रेखांकित किया जा सके, इसके लिए यह आवश्यक है कि उद्यान के अंगों का कार्य अच्छी तरह समझ लिया जाए।

2.4 उद्यान के विभिन्न अंग -

अ सड़क एवं रास्ते
आ भवन या मकान आदि
इ सिंचाई पद्धति
ई जल निकास पद्धति
उ वृक्षों का स्थान
ऊ जल निकास पद्धति
ऋ वृक्षों का स्थान
ऌ कम्पोस्ट या खाद के गड्डे
ऍ नर्सरी

अ **सड़क एवं रास्ते -** उद्यान में एक मुख्य सड़क होती है जो कि सम्भवतः उद्यान के बीच में होती है, किन्तु स्थल की बनावट के अनुसार इसका स्थान बदल भी सकता है। इस सड़क की चैड़ाई उद्यान के क्षेत्रफल के अनुसार 5 से 6 मीटर की हो सकती है। इस सड़क से जुड़े हुए विभिन्न स्थानों तक पहुंचने के लिए रास्ते होने चाहिए। ये रास्ते 3 से

4 मीटर के हो सकते हैं। इन रास्तों को बनाने में यह ध्यान रखना चाहिए कि इनमें से ट्रेक्टर आदि जा सकें। उद्यान के प्रत्येक खण्ड पर पहुंचने के लिए स्वतंत्र हों, जिससे कि खण्ड के बीच से होकर न जाना पड़े।

आ **भवन या मकान -** उद्यान में कार्यालय, भण्डार गृह (फलों का संग्रह), औंजार गृह तथा निवास

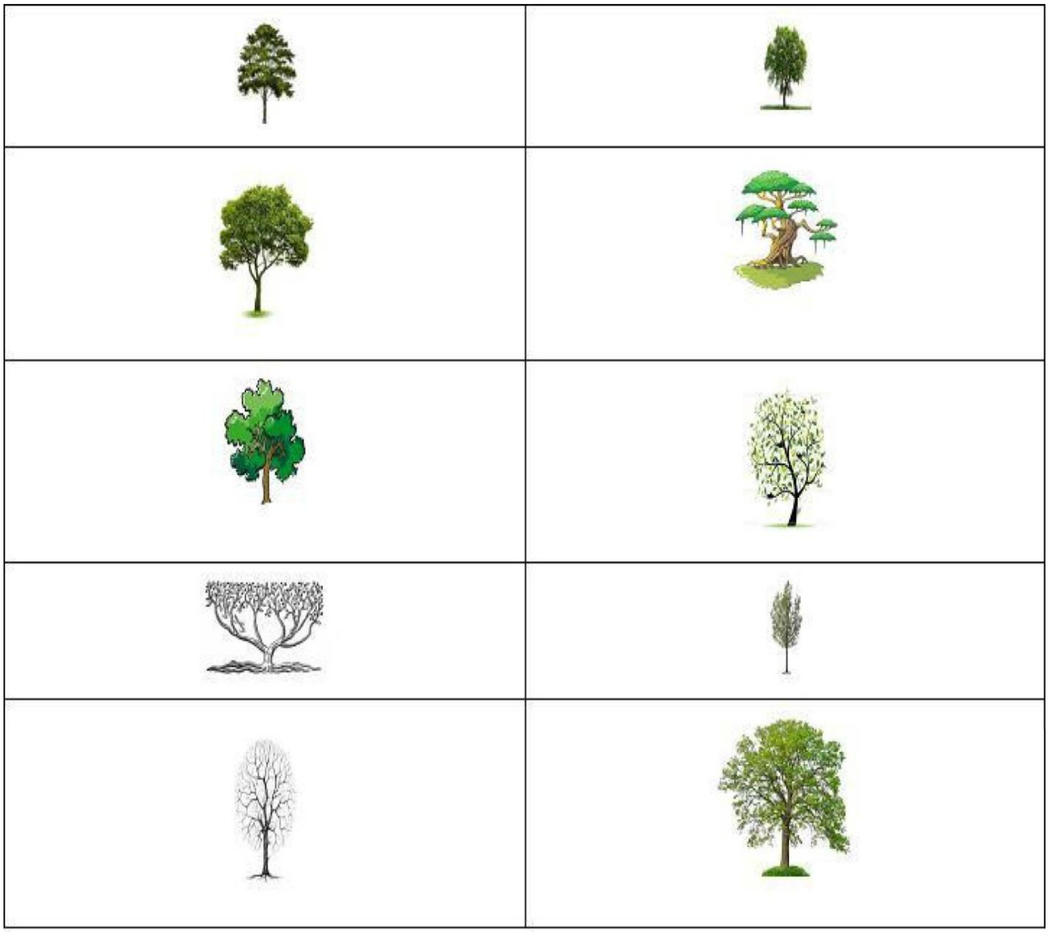

चित्र - फलोद्यान रेखांकित

आदि होते हैं। निवास में स्वयं मालिक का निवास, श्रमिकों का निवास एवं पशु गृह होते हैं। भवन अधिकांशत मुख्य द्वार से थोड़ी दूर पर बनाए जाते हैं तथा यह स्थान उद्यान के सबसे अधिक ऊंचाई वाली भूमि पर होता है। मुख्य सड़क के समीप ही सभी गृह रहे तो आने जाने में सुविधा रहती है। मकान आदि परिस्थिति के अनुसार कच्चे व पक्के हो सकते हैं।

इ सिचाई पद्धति - कम से कम लागत पर, बिना व्यर्थ हुए जल, वृक्षों को उनकी आवश्यकतानुसार प्राप्त हो जाए, यही सक्षम सिंचाई पद्धति है। वृक्षों को निश्चित समय में, निश्चित मात्रा में ही जल की आवश्यकता होती है। सिंचाई पद्धति में प्रमुख कमी इस बात की रह जाती है कि सिंचाई के लिए उपलब्ध बहुत सा जल व्यर्थ ही बह जाता है। जल एक अमूल्य निधि है और इसका सक्षम उपयोग अमूल्य निधि है ओर इसका सक्षम

उपयोग उद्यान सफलता का प्रथम सोपान माना जाता है। इस कार्य के लिए पम्प हाउस,पम्प वितरण कक्ष, पाइप लाइन जल के उद्वहन के लिए आवश्यक हैं, क्योंकि जल निचली सतह में रहता है। मुख्य सिंचाई नाली तथा सहायक नालियां जल को वृक्षों तक पहुंचती है। मुख्य सिंचाई नाली पक्की होनी आवश्यक है इससे जल कम व्यर्थ होता है। सहायक नालियां भी यथासम्भव पक्की होनी चाहिए। कच्ची भी बनाई जा सकती है। सिंचाई नालियों में से जल उचित गति से बहकर वृक्षों तक पहुंच जाए, यही सक्षम सिंचाई नालियों में से जल उचित गति से बहकर वृक्षों तक पहुंच जाय, यही सक्षम सिंचाई है। जल नालियों में रूकना नहीं चाहिए। नालियों के ढाल की दिशा समोच्च रेखा मानचित्र या कन्टूर मैप के आधार पर बनाई जानी चाहिए।

ई जल निकास - वर्षा की आवश्यकता से अधिक जल, उद्यान से बाहर निकल जाये ओर वह वृक्षों के समीप जमा न हो न पाए, यही जल निकास है। आवश्यकता से अधिक जल को निकालने के लिए नालियां तैयार की जाती है, जिन्हें जल निकास नालियां कहते हैं। भूमि के प्रकार तथा ढाल के अनुसार ये नालियां तैयार की जाती है, अर्थात् कन्टूर मैप के अनुसार बनाई जानी चाहिए। यदि वर्षा के अभाव में सिंचाई महत्वपूर्ण है तो वर्षा ऋतु में जल निकास भी महत्वपूर्ण है। उतम ले-आउट तो वह है जिसमें प्रत्येक भूखंड रास्ते, सिंचाई नाली और जल निकास नाली से जुड़ा हुआ हो।

2.5 वृक्षों का स्थान -

ले-आउट में वृक्षों का स्थान निर्धारण आधारशिला है। समस्त भूमि को 1/2 या 1 हेक्टेयर के भू-खण्ड में विभाजित कर लेना चाहिए। इन प्लाट को रास्ते, सिंचाई नाली एवं जल-निकास नाली से जोड़ देना चाहिए। उद्यान में इनके लिए अलग से स्थान छोड़ने की आवश्यकता नहीं होती। वृक्षों के स्थान का निर्धारण वृक्ष लगाने की पद्धति के अनुसार किया जाता है। प्रत्येक वृक्ष के लिए स्थान जो उसके लिए निश्चित हो अवश्य छोड़ना चाहिए। सूर्य के प्रकाश वृक्षों को तो आवश्यक है ही भूमि को भी आवश्यक है। वृक्षों की ऊंचाई तथा फैलाव के अनुसार भी स्थान निर्धारित किया जाता है। ऊंचे वृक्ष उत्तर - पश्चिम दिशा की ओर लगाना उचित रहता है।

मानव के प्रकृति प्रेम की सौन्दर्यमयी एवं आकर्षक भावनाओं को भूमि पर वृक्ष, झाडियों, लताओं एवं पुष्पों के माध्यम से अभिव्यक्त करना ही अलंकृत उद्यान या शोभा उद्यान कहलाता है। अर्थात् ऐसा स्थान जो प्राकृतिक वनस्पतियों एवं कृत्रिम साधनों के मिले जुले रूप से वैज्ञानिक एवं कलात्मक उपायों द्वारा सुसज्जित किया गया हो, अलंकृत या शोभा उद्यान कहलाता है। निर्जल, वनस्पति - विहीन, शुष्क ओर अनाकर्षक भूमि को विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों से सजाना ही अलंकृत उद्यान का उद्देश्य है। अनेक प्राकृतिक स्थल जो स्वमेव में आकर्षण्क व प्रिय नहीं होते, उन्हें भी वनस्पतियों के माध्यम से कलात्मक रूप प्रदान करना भी एक उद्देश्य है। अतः इसे भू - सुदर्शनीकरण भी कहते है।

पुष्प और पुष्पोद्यान भारतीय सभ्यता से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। इनका संबंध वैदिक काल से रहा है। शोभायान उद्यानिका या अलंकृत बागवानी का विकास एवं परिवर्तन, सभ्यता, संस्कृति एवं शासन के प्रभाव से होता रहा है। प्रारंभिक अवस्था में इनका विकास हिन्दू और बौद्ध

साधु - सन्तों एवं पुजारियों द्वारा किया गया, जिसके परिणामस्वरूप हिन्दू ओर बौद्ध उद्यानों की शैलियों का विकास हुआ। प्रथम बार घिरे हुए स्थान उद्यान शैलियों का विकास हुआ और आगरा कश्मीर, दिल्ली आदि स्थलों में मुगल आदि स्थलों में मुगल उद्यान लगाने लगाये गये। मुगल शासकों की देन है। नियमित या ज्यामितीय शैली इन्हीं की देन है। इसके साथ ही कुछ महत्वूपर्ण पौधे भी भारत में विदेशों से लाये गये , जैसे - चिनारा और सिप्रसस के वृक्ष , गुलाब, कार्नेशन, आयरिश, नर्सिग, डैफोडिल, लिलीज, ट्यूलिप और रजनीगंधा आदि। पिंचोर तथा निशान बाग, कश्मीर ताज गार्डेन आदि उद्यान इसी शैली से बनाये गये है।

वैज्ञानिक प्रगति के आधार - तीन महत्वपूर्ण की दिशाएं 18 वीं एवं 19 वीं सदी निर्धारित हुई है। प्रथम इंग्लैंड एवं अन्य देशों से पौधों की विदेशी प्रजातियों का भारत में प्रवेश एवं परीक्षण द्वितीय, वानस्पतिक उद्यानों की स्थापना तथा तृतीय, स्थानीय पौधे प्रजातियों का संकलन एवं परीक्षण।

इस अवधि में निम्न वानस्पति उद्यानों की स्थापना की गई -

1 रायल एग्री - हार्टिकलवरल सोसायटी गार्डन, कलकत्ता (पश्चिम बंगाल)

2 ल्वायड वानस्पति उद्यान, दार्जिलिंग (पश्चिम बंगाल)

3 वानस्पति उद्यान, सहारनपुर

4 वानस्पति उद्यान, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

5 राष्ट्रीय वानस्पति उद्यान, लखनऊ (यू.पी.)

6 लाल बाग वानस्पतिक उद्यान, बैंगलोर (कर्नाटक)

7 शासकीय वानस्पति उद्यान, ऊटकमंड (तमिलनाडु)

8 सिम्स पार्क, कोनूर (तमिलनाडु)

9 वानस्पति उद्यान, कोयम्बटूर (तमिलनाडु)

10 ब्रायण्ट पार्क, कोडई कैनाल (तमिलनाडु)

स्वाधीनता के पश्चात उद्यानों की दिशा परिवर्तित हुई। इनका विकास शहरों, ओद्योगिक नगरों, नदी घाटी परियोजना के प्रभाव में हुआ। जमशेदपुर, पिम्परी, भोपाल, रांची, भिलाई आदि स्थानों में पार्कों का विकास हुआ। राज्यों के पर्यटन निगम भारतीय पुराततव सर्वेक्षण विभाग द्वारा संलग्न उद्यानों एवं पार्कों का विकास किया गया। वनस्पति विशेषा, वन विशेषज्ञ, उद्यानविद् वनस्पति सरक्षण के सक्रिय योगदान से अलंकृत बागवानी को वैज्ञानिक आधार मिला। पौध संरक्षण गृह की स्थापना इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। इसके साथ ही कुछ क्षेत्रों में फूलों का व्यापारिक उत्पादन आरंभ हुआ। रजनीगंधा सेवन्ती आदि कलकत्ता क्षेत्र में, जास्मीन मदुराई में, सेवन्ती और रजनीगंधा कोयम्बटूर में और गेंदा का बैंगलोर स्तर पर तैयार किया जाने लगा।

अनुसंधान कार्य की बुनियाद सन् 1960-65 में समन्वित परियोजना (5 वर्ष के लिए) प्रारम्भ कर डाली गई। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली, भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, हिसार घाट, बैंगलोर, राष्ट्रीय वानस्पतिक उद्यान, कलकत्ता प्रमुख केन्द्र थे। इसके पश्चात् सन 1970-71 में अखिल भारतीय समन्वित, पुष्प विकास परियोजना का 12 केन्द्रो और

नई दिल्ली प्रमुख कार्यालय सहित शुभारम्भ किया गया। इस योजना के परिणामस्वरूप अनेक नवीन किस्मों का विकास हो पाया है।

2.6 अलंकृत उद्यानों की शैलियां

फलोत्पादन या सब्जी उत्पादन के समान अलंकृत उद्यानों का मूल्यांकन आर्थिक या व्यावसायिक दृष्टिकोण से नहीं किया जाता है। इसके मूल्यांकन का आधार धार्मिक भावनाएं, सौंदर्यबोध ओर आत्म-तृष्टि रहता है। वर्तमान मे निर्यात तथा विक्रय हेतु पुष्पोत्पादन किया जाने लगा है।

वर्तमान समय में चार तरह के अलंकृत उद्यान दिखाई देते हैं, जिसके शैलियां अलग-अलग है। जैसे हिन्दू या बौद्व उद्यान।, ईरानी एवं मुगल उद्यान, जापानी उद्यान एवं इंग्लेण्ड के उद्यान। इस तरह के उद्यान विभिन्न शासकों द्वारा विकसित किये गये है। वर्तमान समय में उपरोक्त चारों तरह के उद्यान में जापानी उद्यान पूर्ण विकसित माना जाता है। डींग उद्यान, भरतपुर (राजस्थान) हिन्दू-बौद्ध शैली में, पिंजौर और निशात बाग, श्रीनगर, शालीमार बाग, लाहौर-मुगल शैली में वानस्पति उद्यान, दिल्ली, पब्लिक गार्डेन, हैदराबाद, मैत्री बाग भिलाई (म.प्र.) जापानी शैली में तथा राष्ट्रीय वानस्पति उद्यान, लखनऊ तथा कलकत्ता में इंग्लैण्ड शैली में विकसित किये गये है। इन स्थानों में अलग-अलग विशेषताएं हैं जिनमें प्राकृतिक तथा कृत्रिम साधनों में विभिन्न शैलियों द्वारा निर्मित किया गया है।

अलंकृत उद्यान की विषेषताएं -

1 अलंकृत उद्यान का निर्माण करने में स्थल चयन का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता बल्कि उपलब्ध स्थल पर विशेष उद्देश्य से अलंकृत उद्यान बनाया जाता है। अलंकृत उद्यान का उद्देश्य भी यही है कि उपलब्ध स्थान को सुसज्जित किया जाये। अतः निश्चित स्थल पर जैसे - सार्वजनिक - स्थल, शहर का मध्य स्थान, कार्यालयों, शिक्षा, संस्थानों, चिकित्सालयों, धार्मिक स्थलों, राष्ट्रीय मार्ग के किनारे, चैराहों आदि पर उनके समीप उपलब्ध भूमि पर अलंकृत भूमि पर अलंकृत उद्यान बनाकर उन स्थानों का आकर्षक बनाना होता है। फलोद्यान या सब्जी प्रक्षेत्र की तरह स्थल चयन की स्वतंत्रता नहीं होती। भूमि कैसी भी हो, उसे उद्यान के अनुरूप बनाकर उद्यान का निर्माण किया जाता है।

2 जल की दोहरी भूमिका अलंकृत उद्यान की दूसरी विशेषता है। उद्यान के लिए जल दो रूप में उपयोग किया जाता है। प्रथम सिंचाई के लिए और द्वितीय सुन्दरता उत्पन्न करने के लिए, जैसे ज्ञापन, फुहारा आदि में। अतः जिस स्थान पर उद्यान विकसित करना हो वहां पर विपुल मात्रा में जल उपलब्ध होने के साधन बनाने चाएि। प्राकृतिक जल स्रोत उपलब्ध हो तो उत्तम है अन्यथा कुंआ, नलकूप आदि साधन बनाने चाहिए।

3 मनोवैज्ञानिक-पृष्ठभूमि का ज्ञान अलंकृत उद्यान विकसित करने में सहायक है। अलग-अलग स्थानों पर लोगों की रूचि अलग - अलग होती है। सार्वजनिक उद्यान से लोगों को मनोरंजन एवं संतोष होना चाहिए। चिकित्सालयों के उद्यान तथा कार्यालयों के उद्यान विभिन्न दृष्टिकोणों से बनाये जाते हैं। स्थलों में रहने वाले व्यक्तियों की रूचि के अनुसार ही उस

स्थल पर उद्यान बनाना चाहिए। अतः सभी स्थलों पर विन्यास अलग अलग दृष्टिकोण को लेकर किया जाता है।

4 वृक्षा, शोभायान झाड़ियों, लताओं एवं पुष्पों की वृद्धि या प्रकृति, रंग, फूलने का समय आदि की पूर्ण जानकारी होना आवश्यक है। अलंकृत उद्यान की सफलता इनके उचित स्थान पर उचित नीति से चुनकर मनोरम दृश्यावली उत्पन्न करने में ही है। अतः अलंकृत उद्यानकर्ता को उद्यान स्थापत्यविद् भी होना आवश्यक है।

5 अलंकृत उद्यान का उद्देश्य स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करता है, न कि आर्थिक लाभ प्राप्त करना। इसलिए समस्त योजनाएं इसी दृष्टि से तैयार की जाती है। वर्तमान समय में इस दृष्टिकोण में अन्तर आया है। आर्थिक लक्ष्य भी हो सकता है। और प्रयास भी किया जाना चाहिए।

अलंकृत उद्यान के लिए स्थल

अलंकृत उद्यान निम्न स्थल पर बनाये जाते है -

1 गृह वाटिका - घरों के आस पास की भूमि पर अलंकृत उद्यान लघु रूप में विकसित किया जा सकता है। ऐसे उद्यान व्यक्तिगत रूचि के आधार पर बनाये जाते है।

2 कार्यालय तथा शिक्षा संस्थान उद्यान - ऐसे उद्यान कार्यालय तथा शिक्षा संस्थानों के सामने या पीछे उपलब्ध भूमि पर बनाये जाते हैं। ऐसे उद्यानों में विश्राम - स्थल या छाया-गृह या क्रीड़ों - स्थल का विशेष आकर्षण रखा जाता है।

3 सार्वजनिक उद्यान - ऐसे उद्यान अधिक क्षेत्र में फैले हुए होते हैं। इनका निर्माण कठिन होता है। प्रायः अलंकृत के सभी आकर्षण एक निश्चित विन्यास के अनुसार निर्मित किये जाते हैं।

4 भू - सुदर्शनीकरण - प्राकृतिक स्थलों को संवारने के लिए ऐसे उद्यानों का विकास किया जाता है। इस तरह उद्यान निर्मित करने में प्राकृतिक सौन्दर्य देने वाले स्थल जो पहले से रहते हैं उन्हीं को सजाया जाता है। पहाड़ी स्थलों, धर्म संस्थानों, पिकनिक - स्थलों, नदी बांध या नहर के किनारे आदि स्थलों में बनाये जाते है।

5 आवागमन स्थल उद्यान - हवाई पट्टियों, रेल स्टेशन, बस स्टेण्ड, सडको के चाराहे आदि आवागमन स्थलों पर अलंकृत उद्यान लगाये जाते है।

6 औद्योगिक संस्थान उद्यान - औद्योगिक स्थानों का वातवरण शुष्क एवं नीरस होता है। वायु प्रदूषण भी रहता है, अतः ऐसे स्थानों पर उद्यान बनाया जाना एक अनिवार्य आवश्यकता है।

अलंकृत उद्यान की स्थापना -

अलंकृत उद्यानों को वृक्षों, लताओं, झाड़ियों, पुष्पों आदि से सजाया जाता है, इसलिए अलंकृत उद्यान के निम्न अंग है -

1 सड़क, रास्ते एवं पगडण्डी

2 वृक्षावली

3 हरियाली

4 बाड़ एवं कोर सज्जा

5 झाड़ियों एवं उनकी पट्टियां

6 लताएं एवं बेल

7 पुष्पों की क्यारियां एवं पट्टियां

8 गमला स्थल

9 छाया गृह

10 जल उद्यान

11 शैल उद्यान

1 सडक, रास्ते एवं पगडण्डियां - अलंकृत उद्यान में सडक, रास्ते एवं पगडण्डियां बनाने का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि दर्शक प्रत्येक सौन्दर्य स्थल पर सुगमता से पहुंच सकें। मुख्य सडक से रास्ते और रास्तों में पगडण्डियां जुड़ी हुई होनी चाहिये। छोटे उद्यानों में पहुंच मार्ग ही पर्याप्त होता है, किन्तु बड़े सार्वजनिक उद्यानों में रास्तों और पगडण्डियों का विशेष महत्व होता है। सड़क, रास्ते और पगडण्डियां होनी चाहिए और इन्हें आकर्षक रूप से बनाया जाना चाहिए। विशेष आकर्षण वाले स्थलों पर चारों और रास्ते या पगडण्डियां होनी चाहिए।

2 वृक्षावली - वृक्षों के बिना कोई भी अलंकृत उद्यान पूर्ण नहीं माना जाता है। उद्यानों में वृक्षों का उपयोग सड़क के किनारे, जलाशय के चारों और तथा विशेष प्रयोजनों से लगाने के लिए किया जाता है। सुन्दर फूलों के लिए तथा छाया के लिए शोभादार पत्तियों के लिए वृक्ष लगाये जाते हैं। वृक्ष उद्यान में स्थायी शोभा एवं उसकी विशालता प्रदर्शित करते हैं। वृक्ष लगाने से पहले फूलों का रंग, फूलने का रंग, फूलने का समय, ऊंचाई तथा फैलाव आदि के बारे में जानकारी आवश्यक है। वृक्षावली में रंगों का आकर्षण विशेष महत्व का होता है। गृह तथा छोटे उद्योगों में कम फैलने वाले वृक्ष जैसे डूपिंग, अशोक, आकाशनीम, गुलतर्रा आदि उपयक्त है। वृहद उद्यानों में वृक्षावली के रूप में बड़े वृक्षों को लगाया जाता है जैसे गुलमोहर, और पेल्टाफोरम एक के बाद दूसरा एवं आकशनीम और गुलमोहर की एकान्तरित वृक्षावली आदि। एक वृक्ष के रूप में आकर्षण देने के लिए विशाल वृक्ष जैसे बरगद, कदम्ब, स्पैथोडिया, सीता, अशोक आदि का चुनाव उत्तम है।

3 हरियाली - किसी भी प्रकार के पौधे से विहीन भूमि पर घास लगाने को, जिससे कि भूमि हरी तथा आकर्षक दिखने लगे, हरियाली या लॉन कहते हैं। हरियाली उद्यान की पृष्ठभूमि का कार्य करती है। सुन्दर चित्रों को उभारने के लिए पृष्ठभूमि का विशेष महत्व होता है। जिस प्रकार एक कपड़े पर सुन्दी बेल-बूटे बनाकर सजाया जाता है, उसी प्रकार भूमि में हरियाली या लॉन रूपी कपड़ा फैलाकर वृक्ष झाड़ियों, लताओं तथा पुष्प आदि बेल - बूटों से सजाया जाता है। हरियाली का महत्व छोटे बड़ उद्यानों में बराबर है और हरियाली के बिना कोई उद्यान पूरा नहीं होता है। हरयाली छायादा स्थानों, बिना जल निकास वाली भूमि तथा क्षारीय भूमि को छोड़कर सभी स्थानों पर उगाई जा सकती है।

4 बाड़ एवं कोर सज्जा - झाड़ीनुमा पौधों को कतारबद्ध तरीके से लगाकर उन्हें दीवार की तरह बनाने को बाड़ या हेज कहते हैं। बाड़ का उपयोग अहाता बनाने के लिए किया जाता है। उद्यान के बाहरी घेरे के समीप लगी हुई झाड़ियों को दीवार की तरह काट - छांट कर

शोभमय बनाया जाता है। इसके साथ ही बाड़ का उपयोग पर्द के रूप में किया जाता है। उद्यान में एकान्त स्थल बनाने के लिए या अशोभनीय स्थलों को ढ़कने के लिए भी बाड़ का उपयोग होता है। बाड़ का उपयोग उद्यानों को विभाजित करने के लिए भी किया जा सकता है। बाड़ के लिए लगाई गई झाड़ियों को काट - छांट कर सीमित रखा जाता है। दुरन्आ, विलायती-इमली, गुड़हल, क्लीरोड्रेन्ड्रान, एकलीफा, लैन्टाना, मेंहदी आदि झाड़ियां बाड़ के लिए उपयोग की जाती है।

कोर सज्जा से तात्पर्य है कोमल, आकर्षक और सुन्दर पत्तियों वाले अथवा सुन्दर फूल वाले पौधों की घनी पट्टी जो कि 15 से 25 सेमी चैड़ी हो। ऐसी पट्टियों का उपयोग विभाजन रेखा बनाने के लिए किया जाता है। ऐसे पौधों को काट - छांट कर सीमित रखा जाता है। आल्टरनैन्थ्रा, कोलियस, ट्रेडिसकैन्सिया, अजरेटम, पीलिया, कैल्डीटफ्ट आदि पौधों से कोर सज्जा बनाई जा सकती है।

2.7 अभिन्यास

बाग का अभिन्यास करने के लिए जो विधियां साधारणतः हमारे देश में उपयोग में लाई जाती हैं वे इस प्रकार है -

1 वर्गाकार प्रणाली - बाग का अभिन्यास करने के लिए यह बहुत ही आसान विधि है। इस विधि में अन्तरा - शस्यन दोनों दिशाओं में की जा सकती है। इस विधि में कुल स्थान खेत के आरम्भ में बाड़ या वायुरोधक वृक्षों के लिए छोड़ दिया जाता है। फिर आधार रेखा स्थापित करते हैं। यह आधार रेखा सड़क, बाढ़ या नजदीक के उद्यान के समान्तर रखी जाती है। पहले पौधे का स्थान इसी आधार रेखा पर समुचित दूरी पर रखते हैं और एक खूटी गाड़ देते है, फिर आधार रेखा के दोनों किनारों पर समकोण बनाते हैं जिससे कि बाग वर्गाकार शक्ल का बन जाये।

2 षटकोणीय प्रणाली - इस तरीके में समत्रिभुज के हर किनारे पर पौधा लगाते है। इस प्रकार 6 पौधे षटकोण शक्ल में ओर एक पौधा उनके बीच में आता है। इसमें वर्गाकार प्रणाली की अपेक्षा 15 प्रतिशत अधिक पौधे लगते है। यह प्रणाली वहीं प्रयोग की जाती है जहां पर भूमि मंहगी तथा उपजाऊ हो।

   इसका विन्यास करने के लिए आधार रेखा खेत के एक तरफ वर्गाकार प्रणाली की तरह बनाते हैं, फिर तार द्वारा सभी किनारों में छल्ले से त्रिकोण बना लेते हैं। इस त्रिकोण की सभी छल्लों से आवश्यकतानुसार जितनी दूरी चाहिए रखते हैं। इनमें से दो छल्लों का स्थान पौधे के स्थल के अनुसार आधार रेखा पर रखते है। तीसरे छल्ले का स्थान दूसरी कतार के पेड़ की जगह तय करता है। फिर हर एक कतार को आधार रेखा मानकर पूरे खेत का नक्सा बना लेते हैं।

3 विकर्ण प्रणाली - इस प्रणाली में चार पौधों के बीच में खाली स्थान पर एक और पौधा लगा दिया जाता है। यह पौधा कुद समय के लिए ही रखते है। वर्गाकार प्रणाली की अपेक्षा इस विधि में दुगने पौधे आते है। यह विधि तभी अपनाई जाती है जबकि स्थाई पौधा धीरे-धीरे

बढ़ने वाला हो या पौधे के बीच की दूरी 8 मीटर से ज्यादा हो। इस तरीके को पूरक विधि भी कहते है।

4 कन्टूर प्रणाली - इस विधि का प्रयोग पहाड़ी क्षेत्रों में करते है। इसमें पौधों को कतारों में भूमि के कन्टूर के साथ साथ लगाते हैं और कन्टूर की सही दिशा में लगते हैं। निशान नीचे से आरम्भ करके ऊपर तक लगते है।

2.8 शोभाकारी बागवानी

शोभकारी बागवानी एक कला है, जिसके लिए उद्यानकर्ता में रूचि और रेखांकन का पर्याप्त ज्ञान अनिवार्य है। रूचि और ज्ञान इसलिए अनिवार्य है कि वह अपनी भूमि, सिंचाई साधन व आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर अपने रूचि के अनुकूल फूल वाले वृक्षो, झाड़ियों, लताओं और मौसमी फूलों का उगा सकते है।

उद्यान दो प्रकार के होते है।

1 निजी उद्यान

2 सार्वजनिक उद्यान

निजी उद्यान में लगाने के लिए विभिन्न प्रकार के वृक्ष, झाडियां, गमले में उगाये जाने वाले पौधे, शैलवाटिका, लटकती टोकरियों में उगाये जाने वाले पौधे, मौसमी फूल, गुलाब आदि के बारे में विस्तृत जानकारी नीचे दी गई है-

1 फूल एवं पत्रक समूह वाले वृक्ष

सरेस इंडिका, पल्यूमेरिया एल्बा, ग्रीविलिया रोबस्टा, डिलोनिक्स रीजिया, जैकरांडा मिमोसिफोलिया।

2 फूल एवं पत्रक समूह वाली झाड़ियां

एकेलीफा प्रजाति, कोटन्स प्रजाति, मुराया एजोटिका, टिकोला स्टैंस, रूसेलिया जनसिया।

3 छायादार और गमले वाले पौधे

एस्परेगस प्रजाति, ब्रायोफाइलम प्रजाति, फर्न, संसेबिरिया मारजिनेटा।

4 शैल वाटिका के लिए पौधे -

अगेव अमेरिकाना, अगेव फिलीफेरा, फर्न, केक्टस प्रजाति, एनथूरियम प्रजाति।

5 अरोही लतायें -

एन्टीगोनन लेप्टोपस, बोगेनवेलिया, बिगोलिया लेनसुस्टा, टिकोमा ग्रेंडिफ्लोरा।

6 गुलाब

दिल्ली प्रींसिस, हंस, मोहिनी पूसा सोनिया, सुजाता, कुमारी, सरोद।

7 लटकती टोकरियों में लगाये जाने वाले पौधे -

एस्परेगस प्रजाति, मीना लोबाटा, मनी प्लांट, पोरचुलाका।

8 मौसमी फूल

स्वीट पी, स्वीट, सुल्तान, फ्लोक्स, निकोटियाना, बरबीना, स्टॉक, बाल-फ्लावर, पिटुनिया, स्वीट एलाइसम, पैन्जी, पोर्टलका, एस्टर, कार्नेशन, डहेलिया, एक्रोक्लाइनम, गेंदा, सूरजमुखी,

लार्क स्पर, जिनिया, कैन्डीटफ्ट, कोचिया, डाइएन्थस, ग्लेडियोलस, लाइनेरिया, ब्रांचीकोम, होली, हॉक, स्वीट एलाइसम आदि।

सार्वजनिक उद्योगों का रेखांकन अधिकतर प्राकृतिक विधि से किया जाता है क्योकि ये उद्यान आकार में बड़े होने के कारण से रेखांकन भूमि की उपलब्धता और जलवायु पर आधारित रहता है। इस प्रकार के उद्यान का उदाहरण मैसूर का वृन्दावन उद्यान है।

इन उद्यानों में अलंकृत फूलों के अलावा कसरत का स्थान, तरण ताल खेलने के लिए वॉलीवाल, टेनिस, फुटबाल, बैडमिण्टन कोर्ट, फव्वारा, बाल क्रिड़ा-स्थल, अजायबघर, चिड़ियाघर, क्लब, पुस्तकामलय, जलपान-गृह आदि को भी स्थान दिया जाता है।

2.9 सारांश

बाग लगाने के लिए स्थान का चुनाव करना एक महत्व बिन्दु है। बाग में पौधे लगने से पूर्व कुछ प्राथमिक क्रियाऐं किया जाना भी आवश्यक है। जिसमें स्टोर, सड़क, पानी की नालियां भवन आदि के लिए स्थान का चयन करना उद्यान विकास के लिए आवश्यक है। फलोद्यान लगाने के लिए उसका व्यवसायिक स्तर देखना एक महत्वपूर्ण बिन्दु है। इसके बाद भूमि का प्रकार एवं जलवायु आते है। इसके साथ साथ श्रमिकों की उपलब्धता, जल की आवश्यक मात्रा में उपलब्धता फलों का प्रकार, वातावरण की स्वच्छता, आदि को ध्यान में रखा जाता है। उद्यान का विन्यास के लिए सड़क एवं रास्ते, भवन सिंचाई पद्धति, जल निकास पद्धति, नर्सरी आदि के लिए जगह सुरक्षित रखना आवश्यक है। अलन्कृत या शोभा उद्यान को वृक्ष, झांडिया, लताएं तथा पुष्पों के द्वारा सजाया जाता है। भारत में पुष्प अंलकृत आदि काल से होता रहा है। इसकी वैज्ञानिक प्रगति का निर्धारण 18 वीं - 19 वीं शताब्दीयों से शुरू हुआ ह। जिससे दो तरह के शोभाकारी उद्यान आते है । 1 निजी एवं 2 सार्वजनिक उद्यान।

2.10 अभ्यास प्रष्न

1 फलों के लिए स्थान पर चयन करते समय ध्यान रखा जाता है

अ व्यवसायकता का   ब फल उत्पादन का

स उन की सुरक्षा   द उपरोक्त सभी का

2 फल उद्यानों के लिए आवश्यक है -

अ स्वच्छ वातावरण   ब कार्बन डाई आॅक्साइड

स औद्योगिक वातावरण   द उक्त में से कोई नहीं

3 अलन्कृत उद्यानों में लगाये जाते है

अ फल   ब सब्जियां

स शोभाकरी वृक्ष   द नर्सरी

3 गृह वाटिका कहा गया है

अ घर के पिछवाड़े का   ब बगीचों का

स नर्सरी को   द उपरोक्त सभी को

4 गृह वाटिका कहा गया है -

अ घर के पिछवाड़े का   ब बगीचों का

स नर्सरी को   द उपरोक्त सभी को

5 उद्यानों के अंगों की व्याख्या कीजिए।

2.11 संदर्भ ग्रंथ

6 Singh, Ranjit 1992, Fruits, National Book Trust.

7 Katyal, S.L. and Chadha, K.L., 1995, Vegetable Growing in India, oxford and IBH Publishing Company, pp. 157

8 Bose, T.K., 1985, Fruits of India : Troprical and Sub-troprical, Naya Prokash, pp. 637.

9 Singh, S.P., 1989, Production Technologies of Vegetable Crops, ARCC, pp. 380.

10 National Horticulture Data Base, National Horticulture Board Agriculture Ministry, Government of India.

11 शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.

इकाई 3

गृह वाटिका

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 ग्रह वाटिका - अर्थ, एवं परिभाषा
3.3 रसोई उद्यान का महत्व
3.4 गृह वाटिका के प्रकार
3.5 गृह वाटिका की स्थापना
3.6 गृह वाटिका के आवश्यक अंग
3.7 फल, सब्जियाँ और पुष्पों का चुनाव -
3.8 गृह वाटिका प्रबन्ध
3.9 गृह वाटिका के लिए सब्जियों का फसल-चक्र
3.10 गमले में पौधे लगाना
3.11 फूलदान में पुष्प -सज्जा
3.12 सारांश
3.13 बोध-प्रश्न
3.14 संदर्भ ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

गृह वाटिका या रसोई उद्यान का उद्देश्य व्यवसायिक न होकर आत्मसंतुष्टि के लिये होता है। स्वयं की आवश्यकता एवं रूचि के अनुसार फल, सब्जियो एवं पुष्पों का उत्पादन करना ही इसका प्रमुख उद्देश्य है।

3.1 प्रस्तावना

गृह वाटिका एक छोटी उत्पादन ईकाई होती है जिसमें फल, सब्जियो एवं पुष्पों का उत्पादन किया जा सकता है। ग्रह वाटिका आज के युग की एक महती आवश्यकता हो गई है विशेषकर शहरी क्षेत्रो में जहाँ भूमि का मूल्य आत्याधिक बढ़ गया है। संतुलित आहार पूर्ति की समस्या को आंशिक रूप में फल तथा सब्जियां उगाकर किया जा सकता है।

नित्य प्रति की पूजा, आराधना के लिए ताजे पुष्प उपलब्ध हो पाते हैं, इन्हें गृह वाटिका में सरलता से उगाया जा सकता है। पुष्प स्वयं में सौंदर्य के प्रतीक होते हैं। इन्हें क्रमबद्ध रूप में उगाने से स्थल सौंदर्य का निर्माण होता है, जिससे मनुष्य में सौदर्यात्मक प्रवृति का विकास होता है। इसके साथ ही घर के समीप बना हुआ सुन्दर पुष्प उद्यान रहन्सहन के स्तर को प्रदर्शित करता है। इससे मानसिक वृत्तियाँ भी शुद्ध होती है। पुष्पों को आन्तरिक गृह सज्जा के

लिए भी उपयोग किया जा सकता है। कृत्रिम साज-सज्जा की अपेक्षा सजीव पुष्पों से सजाना प्राकृतिक वातावरण का आभाष देता है।

गृह वाटिका में कार्य करना एक मनोरंजन का साधन हो सकता है। नित्य प्रति बढ़ते, फूलते-फलते पौधों को देखना विशेष मनोरंजन देता है। क्यारियों को बनाना, पौधों में गुदाई करना, सिंचाई करना आदि क्रियाओं में शारीरिक व्यायाम भी हो जाता है। ऐसा व्यायाम उत्पादक व्यायाम कहा जा सकता है। और इसके लिए अलग से व्यायाम के साधन नहीं जुटाने पड़ते हैं।

पर्यावरण सुधार में भी गृह वाटिका का योगदान होता हैं घनी बस्तियों तथा औद्योगिक क्षेत्रों में गृह वाटिका की विशेष भूमिका हो सकता है। यदि घर के सामने दो या तीन वृक्ष लगा लिए जाएँ तो कमरों के अन्दर धूल नहीं आ पाती है। वृक्षो से छन्न जाती है।गृह वाटिका की स्थापना एवं विकास उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति करता है मानव समाज के संतुलित विकास के लिए प्रकृति से सामंजस्य स्थापित करना अनिवार्य है।

परिभाषा -

निवास स्थान के समीप उपलब्ध भूमि पर स्वयं की आवश्यकतानुसार फल, सब्जियो एवं पुष्पों का उत्पादन ग्रह वाटिका उत्पादन या रसोई उद्यानिकी (Kitchen Garden or Home Garden) कहलाता है।

3.2 गृह वाटिका का महत्व -

(1) बाजार से फल, सब्जियाँ खरीदने की अपेक्षा गृह वाटिका में उत्पादन सस्ता होता है।

(2) भोजन हेतु ताजे फल एवं सब्जियाँ प्राप्त हो जाती है।

(3) पूजा-पाठ हेतु प्रतिदिन ताजे पुष्प मिल जाते है।

(4) घर से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थो एवं जल का प्रबंधन कर उपयोग लाया जा सकता है।

(5) जीवन के प्रारंभिक दौर के दौरान बच्चों में प्रकृति प्रेम की अलख जागृत की जा सकती है।

(6) घर पर ही मनोरंजन हेतु स्थान उपलब्ध हो जाता है।

3.4 गृह वाटिका के प्रकार - गृह वाटिका दो प्रकार की होती हैं:-

(1) **शाक वाटिका या बाड़ी -** ऐसी वाटिका जिसमें कि मात्र फल और सब्जियों का उत्पादन किया जाता है, शाक वाटिका कहलाती है। 5 से 6 सदस्यों के परिवार के लिए 300 मी.2 की शाकवाटिका पर्याप्त होती है। सामान्यतः किचेन गार्डेन से तात्पर्य शाक वाटिका से ही माना जाता है।

(2) **मिश्रित गृह-वाटिका -** ऐसी वाटिका जिसमें फल और सब्जियों के उत्पादन के साथ की शोभा-उद्यान भी लगाया जाता है। ऐसी वाटिकाएँ शहरो में होती है।

3.5 गृह वाटिका की स्थापना -

गृह वाटिका फलोद्यान, सब्जी प्रक्षेत्र एवं शोभा उद्यान का क्रमबद्ध मिला-जुला लघु रूप होता है। इन तीनों विज्ञानों का सार स्वरूप गृह वाटिका में देखने को मिलता है, जहाँ पर उपलब्ध

सीमित भूमि पर फल, सब्जी तथा पुष्पोत्पादन किया जाता है। गृह वाटिकाओं की अपनी ही सीमाएँ होती है, जिनको ध्यान में रखकर इनकी स्थापना की जाती है।

(1) **स्थान का निर्धारण -** गृह वाटिका में स्थान चुनने का प्रश्न ही नहीं उठता बल्कि जिस तरह की भूमि उपलब्ध है, उसी को पूर्णतया योग्य बनाकर उत्पादन किया जाता है। गृह वाटिका निवास स्थान के पूर्व और दक्षिण दिशा की ओर हो जिससे कि पौधों को पर्याप्त मात्रा में सूर्य प्रकाश मिल सके और उत्तर-पश्चिम दिशा की ओर से बहने वाली ग्रीष्म ऋतु की गर्म और हवाओं से पौधों की रक्षा हो सके। इस बात का ध्यान गृह-निर्माण के समय रखना चाहिए कि गृह वाटिकाओं के लिए भूमि पूर्व या दक्षिण दिशा की ओर छोड़ी जाए और मकान उत्तर-पश्चिम दिशा की ओर हो। निवास स्थान के उत्तर दिशा की ओर बनी हुई गृह वाटिका सफल नहीं होती है।

(2) **घेरा या बाड़ी लगाना -** गृह वाटिका में घेरा या बाड़ी दीवाल के रूप में बनाई जाती है साधरणतया 1.5 से 2 मी. ऊँची दीवाल बनाकर उस पर 1 मी. झुके हुए लोहे के खम्भे लगाकर उनमें का ँटेदार तार लगा देने से घेरा अधिक समक्ष हो जाती है। इन खम्भों पर कोई शोभादार बेल चढ़ाई जा सकती है। शोभादार झाड़ियों से भी घेरा या बाड़ बनाई जा सकती है, किन्तु इन्हें अधिक फैलने नहीं देने के लिए नियमित काट-छाँट की आवश्यकता होती है। क्लोरोडेन्ड्रान, दुरन्टा, एकलीफा और सस्बेनिया आदि झाड़ियों की बाड़ बनाई जा सकती है।

(3) **भूमि का विकास -** भूमि यदि समतल नहीं है तो समतल करना आवश्यक है। समतल करते समय भूमि का थोडा ढाल उस दिशा की ओर बनाएँ जिस ओर सामान्य ढाल हो जिससे वर्षा का जल सरलता से निकल जाए। यदि भूमि रेतीली या हल्की या भाटा है तो उसमें काली मिट्टी या चिकनी मिट्टी मिला दें जिससे कि इस भूमि की जलधारण क्षमता बढ़ जाए, अन्यथा सिंचाई के लिए अधिक जल की आवश्यकता होगी। यदि चिकनी भूमि है तो रेत या हल्की मिट्टी मिलाना आवश्यक है। जैविक पदार्थ पर्याप्त मात्रा में होना आवश्यक है।

(4) **गृह वाटिका विन्यास -** गृह वाटिका का विन्यास तीन प्रमुख उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया जाता है:

(1) गृह वाटिका की भूमि का अधिकतम उपयोग ही अर्थात् भूमि का कोई भी भाग व्यर्थ न पड़ा रहे।

(2) गृह वाटिका का स्वरूप चित्ताकर्षक हो अर्थात् सुन्दर दिखाई दे।

(3) गृह वाटिका में अधिकतम उत्पादन हो अर्थात् सन्तुलित उद्यानिक क्रियाएँ अपनाई जाएँ।

3.6 गृह वाटिका के आवश्यक अंग -

(1) पथ या रास्ते, (2) सिंचाई तथा जल निकास नालियाँ, (3) कम्पोस्ट के गड्ढे,

(4) भण्डार कक्ष, (5) नर्सरी, (6) गमला स्थल, (7) सब्जी की क्यारियाँ, (8) फल वृक्षों का स्थान,

(9) शोभा-उद्यान।

गृह वाटिका के उपर्युक्त अंग निश्चित स्थान पर होने चाहिए, इनका विवरण इस प्रकार है:

(1) **पथ या रास्ते -** प्रवेश द्वार से निवास तक पहुँचने के लिए 2 से 3 मी. चौड़ा रास्ता सीधा या गोलार्द्ध लिए हुए हो और इस रास्ते से लगे हुए अन्य रास्ते जो 0.50-0.60 मी. चैड़े हों, गृह वाटिका के अन्य स्थानों में पहुँचने के लिए होना चाहिए। रास्तों की चैडाई क्षेत्रफल के अनुसार कम की जा सकती है। रास्ते कम से कम हों किन्तु पर्याप्त होने चाहिए।

(2) **सिंचाई तथा जल निकास नालियाँ -** सिंचाई नाली से वाटिका का प्रत्येक खण्ड जुडा होना चाहिए। एक क्यारी से दूसरे क्यारी में पानी ले जाना उचित नहीं है। मुख्य सिंचाई नाली ईटों से बनानी चाहिए तथा अन्य नालियाँ कच्ची बनाई जा सकती हैं। सिंचाई के लिए यदि पाइप का प्रबन्ध हो क्षेत्र छोटा हो तो सिंचाई नाली की आवश्यकता नहीं होती है। यद्यपि गृह वाटिका में जल-निकास नाली नहीं रखी जाती तथापि यदि वाटिका में जल रूकने की सम्भावना हो तो ऐसी नाली निश्चित रूप से बनाई जानी चाहिए। ऐसी नाली वाटिका के किनारे घेरा की तरफ बनाई जाए जिससे वर्षा का अधिक जल सरलता से निकल जाए।

(3) **कम्पोस्ट के गड्ढे** -वाटिका एवं घर का कचडा आदि एकत्रित करने के लिए वाटिका के एक कोने में एक या दो गड्ढे बना देना चाहिए। गड्ढों का आकार आवश्यकता के अनुसार बनाया जा सकता है। इन गड्ढों में वाटिका की आवश्यकता के लिए कम्पोस्ट खाद तैयार की जा सकती हैं यदि घर में गाय भी पाली गयी तो इन गड्ढों की उपयोगिता अधिक हो जाती है।

(4) **भण्डार कक्ष -** उद्यान के औजार, बीज, खाद, उर्वरक, कीट और रोगनाशक दवाइयाँ आदि रखने के लिए छोटा सा भण्डार गृह भी बनाना चाहिए।

(5) **नर्सरी -** वाटिका में लगाए जाने वाले शोभायमान पौधों तथा सब्जियों के पौधे तैयार करने के लिए एक छोटी नर्सरी होना आवश्यक है। इसका आकार 3 X 2 मी. या अधिक हो सकता है। कलमें भी वाटिका में तैयार की जा सकती हैं।

(6) **गमला स्थल -** गमले में लगाए गए पौधे किसी भी स्थान पर रखे जा सकते हैं, जहाँ पर सजाना हो। गमले रास्ते के दोनों ओर, सीढ़ियों, बालकनी या अन्य दर्शनीय स्थानों पर रखे जा सकते है। इनका स्थान निश्चित नहीं होता है।

(7) **सब्जियों की क्यारियाँ** - सब्जियों की क्यारियाँ क्षेत्र के अनुसार बनाई जाती हैं। ये क्यारियाँ आकार में 3 X 2 मी., 2.5 X 1.5 मी. या 3 X 1.5 मी. आकार की बनाई जा सकती है। क्यारियों का आकार छोटा रखना अच्छा रहता है, सिंचाई करने में सरलता होती है। क्यारियों से सिंचाई नाली जुडी हुई हो। प्रत्येक क्यारी में पहुँचने के लिए 0.40 से 0.50 सेमी. चैडा रास्ता होना चाहिए। सब्जियाँ उगाने के स्थान पर सूर्य प्रकाश पर्याप्त मात्रा में आना चाहिए। क्यारियों की मेंडें अधिक ऊँचाई तक बनाना चाहिए जिससे कि सिंचाई का पानी कुछ समय तक रूक सके।

(8) **फल वृक्षों का स्थान -** वृक्षों के लिए क्यारियाँ वाटिका के उत्तर-पश्चिम दिशा की ओर किनारे पर होना चाहिए जिससे कि उनकी छाया सब्जियों मे न पड़ सके। फल वृक्षों के लिए पर्याप्त स्थान छोडना चाहिए तथा थाले का भी स्थान निश्चित रखना चाहिए। थाले के स्थान पर

कुछ न उगाएँ। यदि वाटिका का क्षेत्र अधिक हो तो अधिक वृक्षों का लगाना चाहिए अन्यथा कम संख्या में ही लगाना उचित है- पपीता, कंला, मीठी नीम, नीबू, तो अवश्य ही रहना चाहिए।

(9) **शोभा-उद्यान -** शोभा उद्यान, वृक्ष और सब्जियों के स्थान से अलग होना चाहिएं अच्छा हो यदि विभाजक के रूप में सुन्दर झाडियों की बाड बना दी जाय। शोभा उद्यान के स्थान के आकार के अनुसार वृक्ष, झाडियाँ, लताएँ, मौसमी पुष्प, हरियाली, फुहारा, मूर्तियाँ आदि विकसित की जाती हैं। शहरों में ऐसी वाटिकाएँ होती हैं, जिनमें मात्र शोभा उद्यान ही रहता है। सामान्यतया, शोभा उद्यान का स्थान निवास के सामने और फल तथा सब्जियों का स्थान पीछे या दाएँ-बाएँ होता है और यह उचित भी है।

3.7 फल, सब्जियाँ और पुष्पों का चुनाव -

गृह वाटिका में अपनी रूचि के अनुसार ही फल, सब्जियों तथा फूलों के पौधों का चुनाव किया जाता है, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उद्यान में नियमों को छोडकर मात्र अपनी ही रूचि देखी जाए। ऐसा करने से गृह वाटिकाओं की अनेक कठिनाइयाँ आ जाती हैं। अतः अपनी रूचि को उद्यान-विज्ञान के सामान्य नियमों के अनुरूप ढालकर फूल, सब्जियाँ तथा पुष्प-पौधे लगाने चाहिए।

फल - कम फैलने वाले तथा शीघ्र फलने वाले वृक्षों को लगाना चाहिए, जैसे -पपीता, केला, अनन्नास, स्ट्राबेरी आदि। यदि अधिक स्थान उपलब्ध है तो नीबू, संतरा, अनार, मीठी नीम तथा फालसा आदि भी लगा सकते है। इन फल वृक्षों की बाड, काट-छाँटकर सीमित रखें, जिससे कि ये अनावश्यक रूप से बढकर गृह वाटिका में सघनता उत्पन्न न कर दें। इससे सब्जियों तथा पुष्प पौधों पर असर पड़ता है। वृक्ष, वाटिका के किनारे और घेरा के इतने अन्तर से लगायें कि उनकी शाखाएँ बाहर न जाने पायें। बेर, कटहल, आम आदि नहीं लगाना चाहिए। ये अधिक फैलते हैं। पपीता गृह वाटिका का अनिवार्य फल है। फलों की बौनी किस्में लगाना चाहिए जैसे, आम की आम्रपाली किस्म।

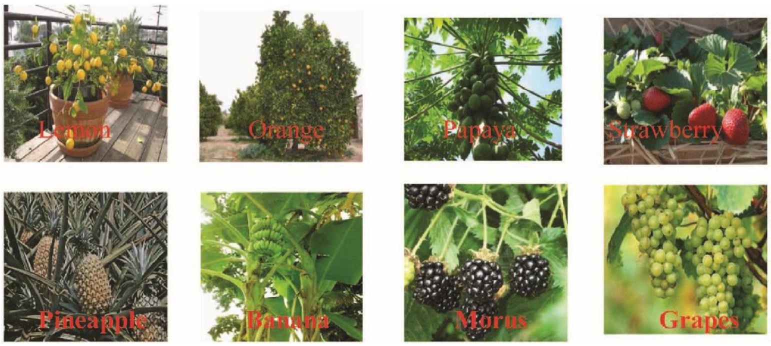

सब्जियाँ - रूचि के अनुसार ही सब्जियाँ चुनें। जो सब्जियाँ बाजार में महँगी तथा कम मिलती हों, उन्हें उगाना चाहिए। पत्तेदार सब्जियाँ निश्चित रूप से उगाना चाहिए। बेल वाली सब्जियाँ, जैसे- कुम्हड़ा, लौकी, शकरकंद, सेम, करेला आदि कम लगाना चाहिए। यदि इन्हें लगाना ही हो तो वाटिका के किनारे लगाना चाहिए और मण्डप बनाकर इन्हें फैला देना चाहिए। सब्जियों की उत्तम किस्म की लगायें। इसके साथ ही ऐसे समय में उगायें जब ये बाजार में

बहुतायत से उपलब्ध न हों अर्थात् अगेली या पिछेती किस्मों को प्राथमिकता दें। फलीदार सब्जियाँ, जैसे - मटर, बरबटी, फ्रेंचबीन आदि निश्चित रूप से लगायें।

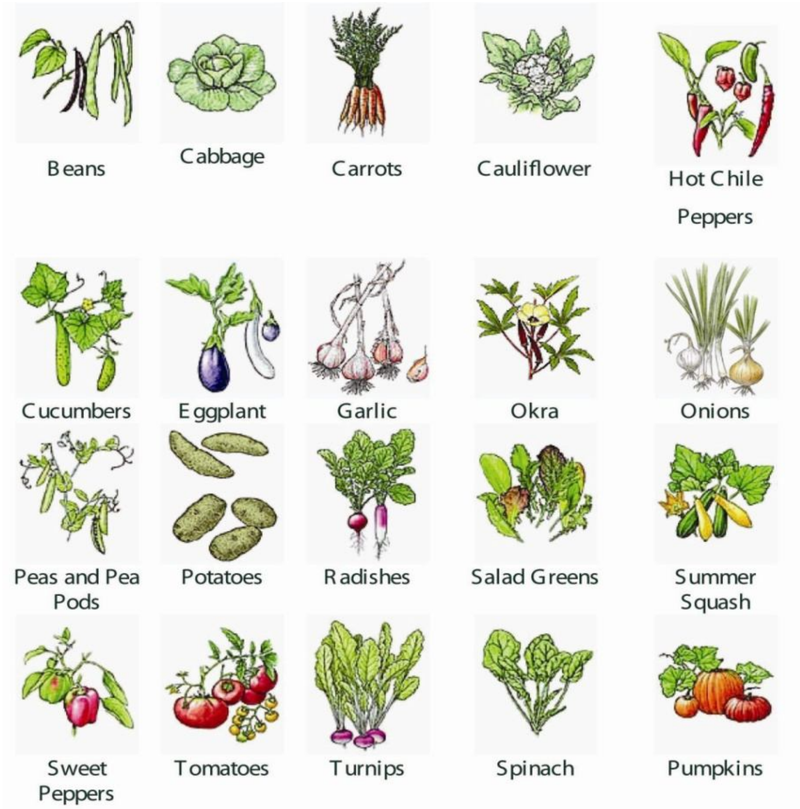

औषधीय पौधे

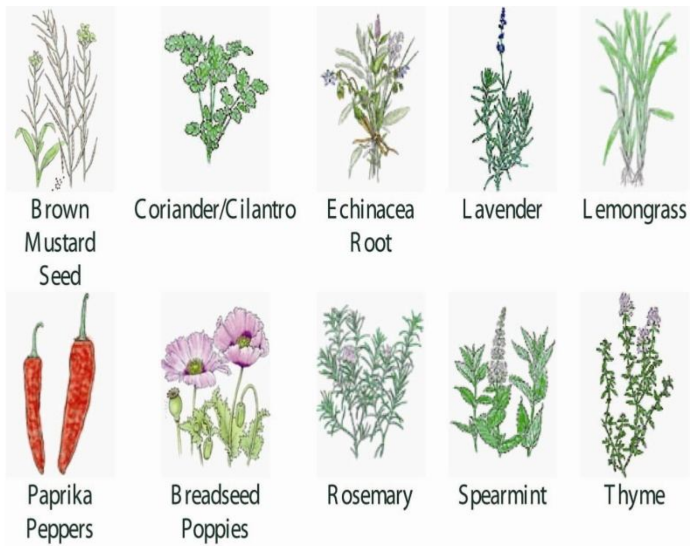

शोभायमान पौधे -शोभायमान वृक्ष, झाडियाँ, लताएँ तथा मौसमी पुष्प आदि स्थान के अनुसार लगाये जा सकते हैं। वृक्ष की संख्या कम होनी चाहिए और ऐसे वृक्ष चुनें जो अधिक न फैलते हों। कम स्थान होने पर मौसमी पुष्प अधिक लगाना चाहिए। हरियाली निश्चित रूप से लगाना चाहिए, इसके बिना वाटिका अधूरी मानी जाती है।

फल, सब्जियाँ तथा शोभायमान पौधों को लगाने में ऐसा प्रयास न किया जाय कि ये अधिक संख्या में लगें, बल्कि सूर्य प्रकाश आदि का ध्यान रखते हुए उचित स्थान पर लगायें जिससे प्रत्येक पौधे को पूर्ण विकसित होने का अवसर मिल सके और सब मिलकर एक आकर्षण स्वरूप दे सकें। आवश्यकता से अधिक सजाने पर वाटिका अधिक घनी हो जाती है। खुले हुए स्थान का अपना ही महत्व होता है।

3.8 गृह वाटिका प्रबन्ध -

गृह वाटिका का प्रबन्ध एक मनोरंजन का विषय है, जिसके अन्तर्गत फलोत्पादन, सब्जी उत्पादन तथा शोभा उद्यान के सामान्य नियमों को लघु या सीमित क्षेत्र अपनाकर फल, सब्जी एवं पुष्पों का उत्पादन किया जाता है। कुछ प्रमुख नियम इस प्रकार हैः-

(1) **भूमि का अधिकतम उपयोग -** वाटिका का सबसे महत्त्वपूर्ण अंश यह है कि किसी भी ऋतु में कोई भी भूखण्ड खाली न रहे। जहाँ पर वृक्ष और शोभायमान वृक्ष एवं झाडियाँ लगी हैं, उस स्थान पर थाला बना देना चाहिए। थाला वाले स्थान को छोडकर छाया चाहने वाली सब्जियाँ, जैसे- हल्दी, अदरक आदि लगा सकते हैं। मेंड तथा सिचाई नाली के दोनों ओर मूली या पत्तेदार

सब्जियाँ लगाई जा सकती हैं। वर्षा ऋतु में कुछ ही सब्जियाँ उगाई जाती हैं, जैसे-भिण्डी, बरबटी, लौकी आदिं अतः प्लाट खाली रहते हैं। ऐसे प्लाट में सनई बोई जा सकती है। और जब सनई के पौधे एक या दो फीट के हो जाएँ तो उन्हें भूमि में पलट देना चाहिए। इस तरह भूमि को हरी खाद प्राप्त हो जाती है। ऐसा करना वहाँ आवश्यक हो जाता है, जहाँ गोबर की खाद या कम्पोस्ट सरलता से उपलब्ध नही होती है।

(2) **उचित फसल-चक्र व क्रियाएँ अपनाएँ -** सब्जियाँ उगाने में उचित फसल-चक्र अपनाना चाहिए जिससे कि भूमि की उर्वरता बनी रहे और वर्षपर्यन्त सब्जियाँ प्राप्त होती रहें। एक ही प्लाट में बदलकर सब्जियाँ लगाएँ। बेल वाली सब्जियाँ किनारे पर लगाएँ और उन्हें मण्डप में चढाएँ, जिससे अधिक स्थान न घेर सकें। बरसात के समय सब्जियों के सडने का भय रहता है, अतः टमाटर जैसी सब्जियों को लकड़ी के सहारे बढ़ाना चाहिए। सब्जियों की उत्तम किस्म ही लगाएँ। बीज विश्वसनीय स्थान से प्राप्त कर सब्जी स्वयं तैयार करें। खाद और उर्वरक उचित मात्रा में तथा उचित समय पर दें। गोबर की खाद या कम्पोस्ट का अधिक उपयोग किया जाना चाहिए। यदि सब्जियों की बाढ़ कमजोर दिखाई दे तो यूरिया के 2.3 : घोल का छिड़काव किया जा सकता है।

3.9 गृह वाटिका के लिए सब्जियों का फसल-चक्र -

(अ) वर्ष में दो सब्जियाँ:-

(1) **बैंगन** (जून-फरवरी) - **बरवटी** (मार्च-मई)
(2) **शिमला-मिर्च** (जुलाई-फरवरी) - **तरबूज** (फरवरी-जून)
(3) **बैंगन** (जून-फरवरी) - **भिंडी/तरककड़ी** (मार्च-मई)
(4) **मिर्च** (जुलाई-फरवरी) - **बरवटी/तरबूज** (मार्च-जून)
(5) **अदरक** (जून-नवम्बर) - **करेला/लौकी** (दिसम्बर-मई)
(6) **तरोई** (जून-अक्टूबर) - **मिर्च** (नवम्बर-मई)
(7) **सेम** (जुलाई-जनवरी) - **चौलाई/खेड़ा** (फरवरी-जून)
(8) **लौकी**(फरवरी -दिसम्बर) - **आलू** (अक्टूबर-जनवरी)
(9) **टमाटर** (जून-नवम्बर) - **लहसुन** (दिसम्बर-मई)

(ब) वर्ष में तीन सब्जियाँ:-

(1) **बरवटी** (जुलाई-सितम्बर)	- **फूलगोभी** (अक्टूबर-फरवरी)	- **तरककड़ी** (मार्च-जून)
(2) **भिंडी** (जून-सितम्बर)	- **गाजर** (सितम्बर-दिसम्बर)	- **टमाटर** (जनवरी-मई)
(3) **बरवटी** (जुलाई-सितम्बर)	- **आलू** (अक्टूबर-फरवरी)	- **भिंडी** (मार्च-जून)
(4) **टमाटर** (जुलाई-अक्टूबर)	- **पत्तागोभी** (नवम्बर-फरवरी)	- **तरककड़ी** (मार्च-जून)
(5) **कद्दू** (मार्च-मई)	- **भिंडी** (जून-सितम्बर)	- **आलू** (अक्टूबर-फरवरी)
(6) **टमाटर** (जुलाई-अक्टूबर)	- **प्याज** (नवम्बर-फरवरी)	- **लौकी** (अक्टूबर-फरवरी)
(7) **प्याज** (जनवरी-अप्रैल)	- **भिंडी** (मई-अगस्त)	- **टमाटर**(सितम्बर-दिसम्बर)

(8) **फूलगोभी अगैती**(जुलाई-अक्टूबर) - **पालक** (नवम्बर-जनवरी) - **खरबूजा** (फरवरी-जून)

(9) **सोयाबीन** (जुलाई-अक्टूबर) - **आलू** (नवम्बर-मार्च) - **चौलाई/खेडा** (अप्रैल-जून)

(10) **खीरा**(जून-अगस्त) - **पत्तागोभी**(सितम्बर-दिसम्बर) - **बैंगन** (जनवरी-मई)

(11) **बैंगन** (जून-अक्टूबर) - **पालक** (नवम्बर-जनवरी) - **ग्वारफली** (फरवरी-मई)

(12) **फूलगोभी** (सितम्बर-दिसम्बर) - **चौलाई** (जनवरी-फरवरी) - **लौकी** (मार्च-अगस्त)

(13) **लाल भाजी** (जुलाई-अगस्त) - **गांठ गोभी**(सितम्बर-दिसम्बर) - **मिर्च** (जनवरी-जून)

(14) **भिंडी** (जनवरी-अप्रैल) - **शकरकंद** (मई-सितम्बर) - **पालक/सलाद**(अक्टूबर-दिसम्बर)

(15) **आलू** (नवम्बर-फरवरी) - **चौलाई/मेथी** (मार्च-मई) - **कुम्हडा** (जून-अक्टूबर)

(16) **मिर्च** (जून-अक्टूबर) - **फ्रांसबीन** (नवम्बर-जनवरी) - **खरबूजा** (फरवरी-मई)

(स) वर्ष में चार सब्जियाँ:-

(1) **गाजर** (अगस्त-अक्टूबर) - **फ्रांसबीन** (नवम्बर-जनवरी) - **मूली**(फरवरी-मार्च) - **ककड़ी**(अप्रैल-जुलाई)

(2) **कद्दू छप्पन**(मई-अगस्त) - **फ्रांसबीन** (सितम्बर-15 नवम्बर) - **गांठ गोभी**(16नवम्बर-जनवरी) - बरबटी (फरवरी-अप्रैल)

(3) **मूली**(जून-जुलाई) - **मेथी** (अगस्त-अक्टूबर) - **पालक**(नवम्बर-जनवरी) - **ककड़ी** (फरवरी-मई)

(द) मेड़ो पर सब्जियाँ:-

(1) **गाजर** (अगस्त-अक्टूबर) - **धनियाँ** (नवम्बर-जनवरी) - **मूली** (फरवरी-मार्च) - **पुदीना** (अप्रैल-जून)

(2) **मूली** (जुलाई-अगस्त) - **धनियाँ** (सितम्बर-नवम्बर) - **पालक**(दिसम्बर-जनवरी) - **खेड़ा** (फरवरी-मई)

(3) **चौलाई**(जुलाई-सितम्बर) - **चना**(बूट)(अक्टूबर-जनवरी) - **मूली** (फरवरी-मार्च) - **पुदीना** (अप्रैल-मार्च)

3.10 गमले में पौधे लगाना:-

गमले में पौधे उगाने को चलता-फिरता उद्यान कहा जाता है। गमलों में पौधे लगाने के कुछ प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार है:-

(1) गमले में लगे पौधों को अपनी इच्छानुसार समय-समय पर उनका स्थान बदल सकते है।

(2) गृहों की आन्तरिक सजावट के लिए, जैसे- सीढ़ियों के दोनो ओर, छज्जों तथा छतों पर या कमरों में रखकर भवन की शोभा बढ़ा सकते है।

(3) स्थान की कमी होने के कारण भी पौधे गमले में उगाए जा सकते हैं, क्योंकि अत्यनत की कम भूमि होने पर सब्जी या पुष्पोत्पादन में कठिनाई होती है।

(4) कुछ पौधे अत्यन्त ही कोमल तथा सुदर होते हैं, उन्हें भी गमलों में उगाया जाता है। ग्रीष्म या वर्षा ऋतु से उन्हें सुरक्षित स्थानों में रखा जा सक्ता है।

(5) बौनाकरण या बोनसाई, जिसमें कि बडे वृक्षों को काट-छाँट कर बौना रखा जाता है, गमलों में ही पौधे उगाकर किया जाना सम्भव है।

(6) सब्जियाँ भी गमलों में उगाई जा सकती हैं और उन्हें छत पर गमले रखकर किया जा सकता है।

(7) गमले से पौधे उगाने से खाद,उर्वरक तथा सिंचाई की बचत होती है अर्थात् इनकी कम मात्रा से पौधों को उगाया जा सकता है।

3.11 फूलदान में पुष्प -सज्जा -

वर्तमान समय में फूलदान में पौधों के पुष्पों का सजाने की कला लोकप्रिय है और गृहसज्जा का एक आवश्यक अंग बन गई है। कार्यालयों में भी मेज पर फूलदान सजाए जाते हैं। फूलदान विभिन्न आकार में, चीनी-मिट्टी, प्लास्टिक, काँच तथा अन्य धातुओं (पीतल आदि) से बनाये जाते है। इनका आकार एक तश्तरी, घड़ा, बाल्टी, सुराही आदि के समान होता है, जिसमें कटे हुए फूल सजाये जाते हैं।

पुष्प-सज्जा के लिए फूलदानों तथा फूलों का चुनाव दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। उचित आकार के फूलदानों में जब उचित किस्म के फूल सुन्दर पत्तियों के साथ सजाये जाते हैं, तभी पुष्प-सज्जा में निखार आता है। फूलों के रंगों का सम्मिश्रण अत्यनत ही महत्त्वपूर्ण है। पुष्प-सज्जा के लिए गुलाब, डहेलिया तथा मौसमी पौधों के पुष्प उपयोग किए जाते हैं। फूलों के साथ की सुन्दर पत्तियाँ, जैसे- थूजा (मोर पंजी), फर्न, अशोक, क्रोटन आदि भी सजाई जाती हैं।

3.12 सारांश-

फल एवं सब्जियाँ ताजे रूप में पोषक तत्वों में परिपूर्ण तथा स्वादिष्ट होती है साथ ही बाजार से खरीदने की तुलना में सस्ती भी होती है यदि उनका उत्पादन गृह वाटिका में किया जाये तो एक परिवार की संतुलित खाद्य आवष्यकता की पूर्ती एक गाय पालकर दूग्ध के लिये, कुछ मुरगिंया रखकर अण्डों के लिये तथा ताजे फल और सब्जियाँ प्राप्त करने लिये गृह वाटिका बनाकर की जा सकती है। वर्तमान समय में गृह वाटिका होना एक अनिवार्य आवष्यकता है। अतः यह कहना अतिष्योक्ति नहीं होगी कि गृह वाटिका से जैविक स्वास्थ, मानसिक स्वास्थ, सामाजिक स्वास्थ, तथा अध्यात्मिक स्वास्थ, की प्राप्ति संभव है।

3.13 बोध प्रश्न

1. ग्रह वाटिका के प्रकार का विस्तृत वर्णन करें।
2. गृह वाटिका के आवष्यक अंग कौन-कौन से है। उल्लेख करें ?
3. गृह वाटिका हेतु उपयुक्त 5-5 फल, सब्जी, औषधीय एवं सजावटी पौधों के नाम लिखें।
4. गृह वाटिका के प्रबंध से आप क्या समझते है।
5. गृह वाटिका हेतु 5 उपयुक्त ित्रफसलीय फसल चक्र लिखें।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. रसोई उद्यान का उददेष्य....................के लिये होता है।

(अ)व्यवसाय (ब)दिखावा (स) आत्मसंतुष्टि (द) उपरोक्त में से कोई नही

2. रसोई उद्यान में ....का पेड़ नही लगाना चाहिए।

(अ) आम (ब) केला (स) पपीता (द) संतरा

3. पौधों को रसोई उद्यान में लगाते समय ....का ध्यान रखना चाहिए ।

(अ) मिटटी का (ब) हवा और धूप का (स)वर्षा का (द) पानी का

4. ....में पौधे लगाने को चलता फिरता उद्यान कहते है।

(अ) क्यारी (ब) खेत (स) मेड़ (द) गमला

5. लेमन धास एक ....पौधा है।

(अ) फलदार (ब) फूलदार (स) औषधीय (द) सजावटी

वस्तुनिष्ठ प्रश्नो के उत्तर

1. आत्मसंतुष्टि 2. आम 3. हवा और धूप 4. गमला 5. औषधीय

3.14 संदर्भ:

1. Singh ,Ranjit,1992,Fruis,National Book Trust.
2. Katyal,S.l. and Chadha,K.L.,1995,Vegetable Growing in India,Oxford and IBH Publishing Company,pp.157.
3. Bose, T.K. 1985, Fruits of India : Tropical and Sub-tropical,Naya Prokash,pp.637.
4. Singh, S.P.,1989,Production Technologies of Vegetable Crops ,ARCC,pp.380
5. National Horticulture Data Base,National Horticulture Board Agriculture Ministry,Government of India.
6. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009 , शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.
7. हेण्डबुक आफ हार्टीकल्चर, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद नई दिल्ली

इकाई 4

रोपण प्रणाली

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देष्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 भूमि की तैयारी
4.3 रोपण प्रणाली
4.4 साधनों एवं कांट छांट करना
4.5 अंतरा-षस्यन
4.6 पौध लगाना
4.7 फल वृक्षों में संधाई विधियां
4.8 अन्तरासस्य या बीच की फसल
4.9 पूरक वृक्ष
4.10 सामान्य देखभाल
4.11 फलित उद्यानों का प्रबन्ध
4.12 सारांश

4.0 उद्देष्य

इस इकाई को पढ़ने के पष्चात आप इस योग्य हो सकेगें कि -

- बाग लगाने की प्रमुख विधियाँ जान पाएगें
- पौधा लगाने की तकनीकी
- फल वृक्षों की संधाई विधियां

4.1 प्रस्तावना

रोपण प्रणाली का ज्ञान उद्यानिकी की दृष्टि से काफी महत्व रखती हैं। रोपण से पहले हमे भूमि का समतलीकरण, सिंचाई, जल निकास आदि पर ध्यान देना चाहिए। बाग लगाने की मुख्यतः छः विधियाँ होती हैं। पौधे की कांट, छांट, सुरक्षा आदि अति आवष्यक हैं।

4.2 भूमि

भूमि का ढलाव तथा ऊँचाई आदि ज्ञात करने के लिए भूमि सर्वेक्षण आवश्यक है। भूमि सर्वेक्षण से स्थलाकृति (Topography) ज्ञात हो जाती है। भूमि सर्वेक्षण में स्थलाकृतिक सर्मोच्च रेखा मानसिच (Topotraphic contour Map) तैयार किया जाता है। इस मानचित्र में भूमि की आकृति का सही मूल्यांकन होता है। चुने हुए स्थल में कौन स्थान ऊँचा है तथा कौन नीचा है समतल क्षेत्र कितना है? आदि बातों का ज्ञान समोच्च रेखा मानचित्र (Contour Map) से हो जाता है।

इस तरह का मानचित्र तैयार हो जाने पर समतलीकरण, सिंचाई तथा जल निकास नील, भू-खण्ड आदि बनाने में सरलता होती है। भूमि-क्षरण (Soil Erosion) का भी अनुमान इस मानचित्र से लग जाता है। प्रस्तुत चित्र को देखकर यह अनुमान लग जाता है कि इस भूमि का ढाल उत्तर से दक्षिण की ओर है। उत्तर की ओर की भूमि अपेक्षाकृत समतल है। (101, 100, 99, 98) तथा दक्षिण की ओर की भूमि कटी हुई है। सबसे ऊँचा स्थान उत्तस्पूर्व (101 एवं 100) और सबसे नीचा स्थान दक्षिण-पश्चिम (89 एवं 90) में है। सारांश के रूप् में जिस भूमि का यह मानचित्र है वह लगभग समतल ही है, ढाल उचित है और कटाव कम है। भूमि सर्वेक्षण के पश्चात् मिट्टी परीक्षण कराना आवश्यक है, जिससे भूमि की भौतिक तथा रासायनिक दशा तथा उर्वरा शक्ति (Fertility) ज्ञात हो जाय। इस कार्य के लिए कई स्थानों से मिट्टी का नूमना लेकर मिट्टी परीक्षण प्रयोगशाला भेजना चाहिए।

समतलीकरण - भूमि का समतलीकरण सिंचाई, जल निकास तथा भूमि संरक्षण की दृष्टि से किया जाता है। समतलीकरण का यह तात्पर्य नहीं है कि भूमि काखेल के मैदान की तरह समतल बना दिया जाय। इसका तात्पर्य है भूमि के ढाल को समोच्च रेखा मानचित्र के आधार पर एक निश्चित क्रम दिया जाय। भूमि का ढाल मिट्टी की किस्म के ऊपर निर्भर करता है। भूमि पर ऐसा ढाल दिया जाय जिससे कि भूमिक्षरण कम से कम हो, सिंचाई में पानी का बहाव उचित गति से तथा वर्षा ऋतु में जल निकास संतोषजनक रहे। जिस भूमि में पहले से ही ढाल अधिक है वहाँ सीढ़ियाँ तथा पौढियाँ या टिरेसेस बनाकर समतलीकरण करना चाहिए। सम्पूर्ण क्षेत्र को एक समान समतल नहीं बनाना चाहिए। भूमि की प्राकृतिक दशा को कम से कम परिवर्तित करने का दृष्टिकोण होना चाहिए।

जुताई करना - समतलीकरण के पश्चात् एक बार ट्रेक्टर से जुताई करनी चाहिए जिससे कि झाड़ियों के अवशेष और जड़े निकल जाएँ। बड़े वृक्षों की जड़े खोदकर जुताई करने से पहले निकाल दें।

4.3 रोपण प्रणाली

बाग लगाने की छः प्रमुख विधियाँ प्रचलित है -

1 वर्गाकार विधि
2 आयताकार विधि
3 क्विनकंक्स विधि
4 त्रिभुताकार विधि
5 षट्भुजाकार विधि
6 समोच्च रेखा विधि

1 **वर्गाकार विधि -** वर्गाकार विधि सरल एवं उत्तम है। इनमें पौधे से पौधे एवं कतार से कतार की दूरी बराबर होती है। इस विधि में अंतराशस्य क्रियाये करने में सुगमत रहती है तथा पौधों को भी चारों और समान रूप से फैलने का अवसर मिलता है।

2 **आयताकार विधि -** यह विधि वर्गाकार विधि की भांति है। इन दोनों विधियों में अंतर केवल यह है कि इसमें एक पंक्ति से दूसरे पंक्ति की दूरी, पंक्तियों में लगाये गये पौधों से पौधों

की दूरी की अपेक्षा अधिक होती है। इस विधि में वर्गाकार विधि से प्रति इकाई अधिक पेड़ लगाये जा सकते है।

3 **क्विनकंक्स विधि** - यह विधि वर्गाकार और आयाताकार विधि की तरह है। केवल चारों पड़ों के बीच फिलर के रूप् में एक अल्पावधि व शीघ्र फल देने वाले हो, तो इसे क्विनकंक्स विधि या पूरक विधि कहते है। प्रमुख पेड़ में फल आने लगने के बाद इन्हें निकाल दिया जाना चाहिए।

4 **त्रिभुजाकार विधि -** त्रिभुजाकार विधि में पंक्ति तथा पौधे से पौधे की दूरी तो वर्गाकार विधि की तरह ही रहती है, परन्तु प्रत्येक दूसरी पंक्ति में पौधा प्रथम पंक्ति में पौधा त्रिकोण बनाता हुआ दो पौधों के बीच की लाइन में लगाया जाता है। इस विधि में सभी पौधों की दूरी हर तरफ से समान होती है।

5 **षट्भुजाकार विधि -** इसमें वर्गाकार विधि की अपेक्षा प्रति हेक्टर 15 प्रतिशत पौधे अधिक संख्या में लगते है। जिससे आय अधिक होती है परन्तु जुताई तथा अन्य अंतराशस्य क्रियाओं में असुविधा रहती है। इस विधि के अन्तर्गत समबाहु त्रिकोण के हर किनारे पर पौधे लगाते है। इस प्रकार 6 पौधे षट्कोण आकार में आ जाते हैं। एक पौधा उनके बीच में आता है। जहाँ भूमि अधिक उपजाऊ व महंगी हो वहां यह विधिकाम में ली जा सकती है। इस विधि में भूमिका का अधिकतम उपयोग होता है।

6 **समोच्च रेखा विधि (कंटूर विधि) -** पहाड़ी व अधिक ढलान वाले स्थान पर यह विधि अपनाई जाती है। हर ढलान के बीच पंक्ति बनाकर कन्टूर के साथ-साथ पौधे लगा देते है।

4.4 साधनों एवं काट-छांट करना

यदि पौधों को उनकी प्रकृति के अनुसार बढ़ने दिया जायेतो वे कुछ दिनों में जंगली रूप् धारण कर लेते हैं तथा पर्याप्त फल नहीं आते है इसलिए ऐसे पौधों की कांटछांट जरूरी है जिससे उनका वांछित आकार व कद बना रहे तथा फसल भी अच्छी आये। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि कुछ पौधों की कटाई-छंटाई केवल आरम्भ में सधाईके लिए की जाती है जबकि पर्णपाती वृक्षों में जैसे अंगूर,सेब, आड़ू आदि की काट-छांट उचित फसल के लिए की जाती है। साधना का तात्पर्य है कि पौधे की अवांछित शाखाओं या भाग को काटकर इसे एक वांछित शक्ल देना। साधना और काट-छांट में अन्तर सिर्फ इतना है कि साधन पौधे की आरम्भिक अवस्था में काट-छांट द्वारा की जाती है। जिससे पौधे का वांछित आकार बन जाये जबकि काट-छांअ पौधे की सफल अवस्था में की जाती है जिससे फलोत्पादन नियमित रूप से मिले तथा अच्छे गुण वाले फल प्राप्त हो।

पौधे के आकार और शक्ल को नियमित करना भी काट-छांट का उद्देश्य है। पौधे का आकार नियमित होने से फल तोड़ने और पौधे के ऊपर दवा छिड़कने में आसानी होती है।

काट-छांअ करने का समय विभिन्न कारकों पर आधारित है, जैसे समय की उपलब्धता, वांछित प्रभाव, जाति तथा प्रजाति। फलधारी पौधों की काट-छांट का सबसे बढ़िया समय वह होता है जब वे सुपुप्ता अवस्था में होते है। इसको सुपुप्ता काट-छांट कहते है। ग्रीष्म ऋतु मेंकी गई काट-छांट ग्रीष्मकालीन काट-छांट कहलाती है।

4.5 अंतरा - शस्यन

नये लगाये बागों में पौधों के बीच बची भूमि के कुछ फसलों को सफलतापूर्वक उगाकर कुछ वर्षों तक लाभ बढ़ाया जा सकता है। इससे किसानों की आमदनी में बढ़ोतरी होती है क्योंकि बाग लगाने के बाद किसान आमदनी कुछ वर्षों के लिए कम हो जाती है। इस कारण बाग लगे खेतों में पहले फसल उगाता है।

फलधारी वृक्षों के बीच तेज बढ़ने वाले फल वृक्ष या कोई अन्य फसल उगाना चाएि। फसलों को वर्षा ऋतु के आरम्भ में या मध्य में भूमि कटाव को रोकने के लिए लगाना पड़ता है। यदि बाग शहर के नजदीक हो तो सब्जी वाली फसलें जैसे टमाटर, गाजर, फूलगोभी आदि उगानी चाहिए तथा यदि बाग शहर से दूर हो तो आलू, प्याज, मिर्च,चना आदि फसलें उगाना चाहिए क्योंकि इन फसलों को दूर ले जाने में परिवहन के कारण हानि नहीं होती। गन्ने जैसी फसलों को नहीं उगाना चाहिए क्योंकि ऐसी फसलें अधिक पानी चाहती है तथा जमीन में तत्वों को खींचती है। कुछ फल उत्पादन तेजी से बढ़ने वाले ओर कम समय में फल देने वाले फलधारी पोधों को अंतरा-फसल के रूप में उगाते है जैसे पपीता, अनन्नास,केला, फालसा आदि। आमतौर पर यह देखा गया है कि इन फसलों को आवश्यकता से अधिक दिनों तक बाग में रखने से बाग को हानि होती है।

4.6 पौध लगाना

फलों के पौधे लगाने का उत्तम समय वर्षा ऋतु है अर्थात् जुलाई, अगस्त, सितम्बर। पौधे वर्षा ऋतु के आरम्भ में ही लगा देने चाहिए। वर्षा ऋतु में लगाए गए पौधे वायुमण्डल में नमी अधिक होने से शीघ्र ही लग जाते है। इसके साथ ही सिंचाई की भी वर्षा में आवश्यकता नहीं होती है। इन महीनों में वृक्षारोपण ऐसे स्थानों में किया जा सकता है जहां पर अधिक वर्षा के कारण भूमि सेजल-निकास ठीक से नहीं हो पाता और वर्षा ऋतु में लगाए गए पौधे सड़ जाते हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में पौधे बसन्त ऋतु अथवा फरवरी-मार्च में ही लगाए जाते हैं।

रोपण फलक या प्लांटिंग बोर्ड का उपयोग पौधा लगाने के लिए किया जाता है। प्लांटिंग बोर्ड या रोपण फलक 1.5 मी. लम्बा, 1.5 सेमी चैड़ा और 2.5 सेमी मोटा लकड़ी का तख्ता होता है, जिसके मध्य भाग में और दोनों सिरों पर कोण के आकार के कटाव होते है। लकड़ी सीधी और मजबूत होनी चाएि।

पौधा लगाने की विधि -

1 पौधा गड़ढे में उतनी गहराई में लगाना चाहिए जितनी गहराई तक नर्सरी या गमले में या पॉलीथीन की थैली में था। अधिक गहराई में लगाने से तने को हानि पहुंचती है और कम गहराई में लगाने से जड़े मिट्टी के बाहर जाती है, जिससे उनको क्षति पहुंचती है।

2 पौधा लगाने के पूर्व उसकी अधिकांश पत्तियों को तोड़ देना चाहिए लेकिन ऊपरी भाग की चार-पांच पत्तियाँ लगी रहने देना चाहिए। पौधों में अधिक पत्तियाँ रहने से वाष्पोत्सर्जन अधिक होता है अर्थात् पानी अधिक उड़ता है। पौधा उतने परिमाण में भूमि से पानी नहीं खींच पाता क्योंकि जड़े क्रियाशील नहीं हो पाती है। अतः पौधे के अन्दर जल की कमी हो जाती है और पौधा मर भी सकता है।

3 पौधे का कलम किया हुआ स्थान अर्थात् मूलवृन्त और सांकुर डाली या मिलन बिन्दु भूमि के ऊपर रहना चाहिए।इसके मिट्टी में दब जाने से वह स्थान सड़ने लग जाता है और पौधा मर सकता है।

4 जोड़ की दिशा - दक्षिण - पश्चिम दिशा की ओर रहना चाहिए। ऐसा करने से तेज हवा से जोड़ टूटता नहीं है।

5 पौधा लगाने के पश्चात् उसके आस-पास की मिट्टी अच्छी तरह दबा देनी चाहिए, जिससे सिंचाई करने में पौधा टेढ़ा न हो पाए।

6 पौधा लगाने के तुरन्त बाद ही सिंचाई करनी चाहिए।

7 जहां तक सभव हो पौधे सांयकाल लगाये जाने चाहिए।

8 यदि पौधे दूर के स्थान से लाए गये है तोउन्हें पहले गमले में रखकर एक सप्ताह के लिए छायादार स्थान पर रख देना चाहिए। इससे पोधों के आवागमन में हुई क्षति पूरी हो जाती है। इसके पश्चात् उन्हें गडढों में लगाना चाहिए। तुरन्त ही गड्ढे में लगा देने से पौधों के मरने का भय रहता है।

पौधा जो भी लगाये जाएँ उनमे निम्नलिखित गुण होने चाहिए, यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है -

1 पौधे की उग्र कम से कम एक वर्ष होनी चाहिए। दो वर्ष से अधिक उम्र के पौधे भी नहीं लगाना चाहिए, उनमे मरने का अधिक भयरहता है।

2 पौधे यथासम्भव गूटी विधि से या कलिकायन या उपरोपण विधि से तैयार किये हुए होने चाहिए। ऐसे कलमी या ग्राफ्टेड पौधे कहलाते है।ऐसे पौधों में अपने पैतृक वृक्ष से कम से कम गुणों में विभिन्नता होती है । बीज से तैयार किए गये पौधे पैतृक गुणों को स्थिर नहीं रख पाते।

3 पौधे अपने किस्मों के अनुसार सही होने चाहिए। अतः पौधे विश्वसनीय नर्सरी से ही मंगाए जाने चाहिए। ऐसी नर्सरी से पौधे नहीं लेना चाहिए जिससे मातृ वृक्ष न हो।

4 किसी भी प्रकार के रोग से सवंमित नहीं होने चाहिए।

5 एक तने वाले सीधे, कम ऊँचाई वाले, फैले हुए उत्तमरहते है।

6 पौधों का मिलन बिन्दु अच्छी तरह जुड़ा होना चाहिए।

7 कलिकायन या उपरोपण किए हुए पौधे में मिलन बिन्दु भूमि के कम से कम दूरी पर हो अर्थात् मूलवृन्त का भाग या तना कम से कम लम्बाई का होना चाहिए।

8 पौधा ओजस्वी तेजी से बढ़ता हुआ हो।

9 पौधा पॉलीथीन या गमला में लगा हुआ हो। ऐसे पौधे लगाने पर कम मरते है।

10 यदि पौधे नर्सरी से उखाड़े गये हो तो उनकी जड़ों में पर्याप्त मिट्टी का पिण्ड होना चाहिए।

पौधे की सुरक्षा -

नये पौधों की ग्रीष्म ऋतु में लू या तेज गर्म हवा तथा ऋतु शीत में पाला या सर्द हवा से रक्षा करनी होती है। नवीन उद्यान में वायु अवरोधक इतने विकसित नहीं हो पाते कि छोटे पौधों की लू या पाले से रक्षा कर सकें। अतः इन पौधों को बचाने का अलग से उपाय होता है।

निमनलिखित उपायकाम में लाएजा सकते हैं -

चित्र : पौधों की सुरक्षा–
चटाई दक्षिण–पश्चिम दिशा की ओर

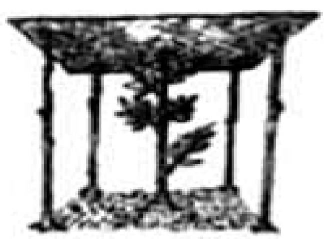

चित्र : पौधों की सुरक्षा–
चटाई ऊपर की ओर

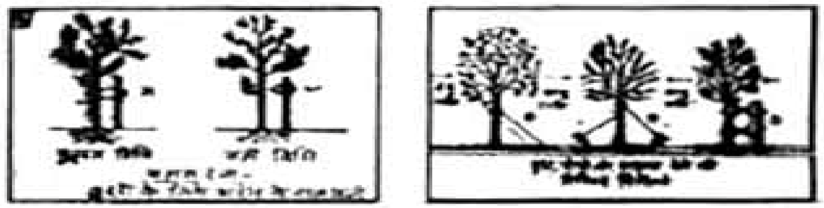

चित्र : फलों को सहारा देना

1 **पौधों को छाया देना -** तेज धूप या हवा से बचाने के लिए प्रत्येक पोधें को छाया देना आवश्यक है। छाया बांस की चटाई का घेरा, घास की झोपड़ी, ताडद्य तथा खजूर की पत्तियां आदि से बनाई जा सकती है पौधों में छाया करते समय यह ध्यान में रखें कि प्रातःकाल की धूप पौधों पर लग सकें। गर्मी के दिनों में भरपूर मात्रा में तथा कम अन्दर से पानी देने की आवश्यकता होती है, जिससे कि पौधें को पानी की कमी न हो ओर आस-पास के वातावरण मे नमी बन पाए। आवश्यकता से अधिक पानी देना भी हानिकारक है, इससे पौधे नाजुक हो जाते है। शीत ऋतु में भी पाले से रक्षा करने के लिए भरपूर मात्रा में सिंचाई आवश्यक है। पाला या तुषार पड़ने की आशंका में पहले ही सिंचाई कर देनी चाहिए। यह ध्यान देने योग्य बात है कि पौधे गर्म या सर्द हवा के झोंके से मरते हैं, तेज गर्मी या सर्दी से नहीं। अतः हवा का बहाव या झोके से पौधों की रक्षा करना आवश्यक है।

2 **पौधें को सहारा देना -** नए लगाए गये पौधें को बांस या लकड़ी लगाकर सहारा देना चाहिए, जिससे कि वह तेज हवा से टूट न जाए। कलमी पौधों में इस तरह की सुरक्षा की अधिक आवश्यकता होती है। लकड़ी या बांस पौधे से कुछ दूरी पर लगाना चाहिए जिससे कि उसकी जड़ों में हानि न पहंचे। पोधों को बांध देना चाहिए।

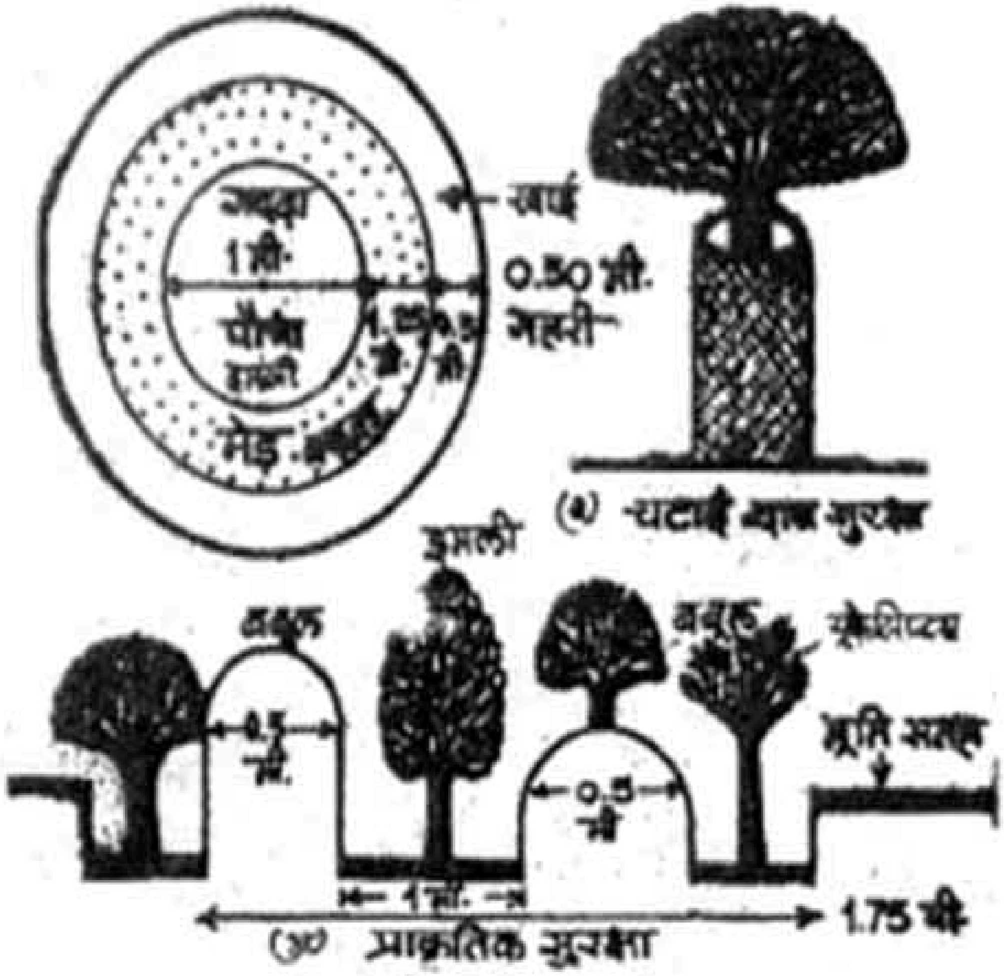

4.7 फल वृक्षों में संधाई विधियाँ

अ केन्द्रीय अग्रप्ररोह प्रणाली

ब खुला केन्द्र प्रणाली

स रूपान्तरित अग्रप्ररोह प्रणाली

अ **केन्द्रीय अग्रपरोह प्रणाली -** इस प्रणाली में मुख्य तने को भूमि के धरातल से बृक्ष के सिरे तक बढ़ने दिया जाता है। इस मुख्य तने के चारों और नियमित क्रम में शाखाओं को बढ़ने दिया जाता है। धरातल से पहली शाखा कम से कम एक मीटर की ऊँचाई से निकलनी चाहिए और इसके पश्चात् अन्यय शाखाएं लगभग 1/2 मीटर के अनतर से बढ़ने दी जानी चाहिए, जिससे वृक्ष सन्तुलित रूप ले सकें। इस तरह से साधे हुए वृक्ष शुण्डाकार दिखाईदेते है (अ) और लम्बे तथा मजबूत होते हैं। वृक्ष अधिक ऊँचा हो जाने के कारण फलों की तुड़ाई और दवा आदि छिड़काव में कठिनाई होती है। ऐसे वृक्षों में फल प्रमुख रूप से ऊपर भाग में आते हैं। नीचे के भाग में उत्तम गुणों के फल नहीं हो पाते। इसे शुण्डाकार प्रणाली भी कहते है।

चित्र :(अ) केन्द्रीय अग्रप्ररोह प्रणाली **(ब) खुला केन्द्र प्रणाली** **(स) रूपान्तरित अग्रप्ररोह प्रणाली**

आ) **खुला केन्द्र प्रणाली -** वृक्ष के मुख्य तने को भूमि से पौन या एक मीटर की ऊँचाई हो जाने पर काट दिया जाता है। पौधे लगाने के एक वर्ष के अन्दर ही मुख्य तने को काट दिया जाता है, जिससे कि नई शाखाएं निकलती है। तीन या चार शाखाओं को एक साथ चारों दिशाओं में बढ़ने दिया जाता है। अगले वर्ष इन शाखाओं को 1/2 या 1/3 मीटर पर काट दिया जाता है और इनके बगल से शाखाएं निकलने दी जाती है। इस प्रकार वृक्ष से कई शाखाएं निकलकर वृक्ष को गुलदान का आकार दे देती है, वृक्ष मध्य में खुला हुआ दिखता है। जिससे कि इसको पर्याप्त धूप मिलती है। ऐसे वृक्षों में फलन अच्छा होता है और फल उच्चकोअि के होते हैं। वृक्ष छोटा होने के कारण उद्यानित क्रियाओं में भी सरलता होती है। इस विधि में कांट - छांट अधिक करनी होती है, अतः वृक्ष कमजोर हो जाता है, शाखाएं टूटने का भी अंदेशा रहता है।

इ) **रूपान्तरित अग्रप्ररोह प्रणाली -** केन्द्रीय अग्रप्ररोह प्रणली एवं खुला केन्द्र प्रणाली के मिले - जुले रूप में सधाई, रूपान्तरित अग्रप्ररोह प्रणाली कहलाती है। इस विधि में दानों विधियों के अच्छे गुणों को अपनाया जाता है। तीन या चार वर्षों तक मुख्यतने को बढ़ने दिया जाता है, और फिर उसे काट दिया जाता है, जिसेस कि इससे लगी हुई शाखाएं बढ़ सकें। इस शाखाओं को बढ़ने दिया जाता है, जिससे कि शुण्डाकार और गुलदान के मध्य के आकार में दिखता है। प्रथम चार या पांच वर्षों तक वृक्ष को केन्द्रीय अग्रप्ररोह प्रणाली से प्रशिक्षित किया जाता है और बाद में खुले केन्द्र प्रणाली से निश्चित आकार दिया जाता है। इस तरह से प्रशिक्षित वृक्षों को सूर्य के प्रकाश तथा वायु उचित मात्रा में प्राप्त होती है। वृक्ष मजबूत होते हैं और अच्छी उपज मिलती है। वर्तमान में यह प्रणाली अधिकाशंतः अपनाई जाती है।

4.8 अन्तरासस्य या बीच की फसल -

नवीन रोपित उद्यानों में वृक्षों के फकने से पूर्व खाली पड़ी हुई भूमि पर सब्जियां या अन्य फसलें उगाने को बीच की फसल लेना कहते हैं। फलों के वृक्ष जैसे - आम, कटहल, आंवला, अमरूद, आदि फलने में अधिक समय लेते हैं। अतः उद्यानों में कोई आय नहीं हो पाती है। उद्यानों से कुछ न कुछ आय होती रहे इस उद्देश्य हेतु पौधों के अलावा जो भूमि रिक्त है वहां पर सब्जियां या अन्य फसलें उगाई जाती है।

बीच की फसल लेने में आवश्यक निर्देश

1 जहां पर वृक्ष लगेहो,उसके एक मीटर चारों ओर की भूमि में कोई भी फसल नहीं लेना चाहिए। वृक्ष की उम्र बढ़ने के साथ ही अन्तर बढ़ा देना चाहिए।

2 फल-वृक्षों को बढ़ने में कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं देना चाहिए। प्रमुख उद्देश्य उद्यान लगाना है न कि अन्य फसलें उगाना।

3 वृक्षों और फसल में कोई प्रतिस्पर्धा नहीं होने देना चाहिए। लगाई गई फसल में सिंचाई, खाद देना, पौधे संरक्षण अतिरिक्त रूप में देना चाहिए।

4 फलीदार सब्जियां जैसे मटर, बरवटी, ग्वारफली, फ्रेंचबीन, मूंग, चना आदि लेनाचाहिए। ऐसी फसलें लेने से उर्वराशक्ति (नाइट्रोजन) बढ़ जाती है।

5 बेल वाली सब्जियां जैसे कुम्हड़ा, लौकी, करेला, सेम आदिनहीं लेना चाहिए।

6 जब वृक्ष फलने लगें तब बीच की फसल लेना बन्द कर देना चाहिए।

7 आलू, बैंगन, मिर्च, फूलगोभी, टमाटर, प्याज, पत्तेदार सब्जियां भी ली जा सकती है।

8 फसल लेने के पश्चात् उनके अवशेष को जुताईकर भूमि में मिला देना चाहिए, जिससे कि वे सडद्य जाएं। खुला छोड़ देने से दीमक उगने का भय रहता है।

4.9 पूरक वृक्ष -

ऐसे फल वृक्षों, जिन्हें उद्यानों के बीच की फसल के रूप में उगाया जाता है, पूरककक्ष कहलाते हैं। उद्यान लगाने की प्रारम्भिक वर्षों में जब तक कि वृक्ष फूलने - फलने न लगें, कुछ अस्थायी फल वृक्ष लगाए जाते हैं, जिनका उद्देश्य खाली पड़ी हुई भूमि का उपयोग कर अतिरिक्त आय प्राप्त करना होता है। पूरक वृक्ष में पपीता, अनन्नास, स्ट्रोबेरी, फालसा आदि लिये जा सकतेहै। पूरक वृक्ष को तभी तक रखना चाहिए, जब तक कि मूल वृक्ष फूलने फलने न लगे। परस्पर प्रतिस्पर्धा उत्पन्न नहीं होने देना चाहिए। पूरक वृक्ष को लगाने में वही निर्देश अपनाने चाहिए जो की फसल के लिए होते हैं। जिन उद्यानों में नवीन रोपित वृक्ष कम दूरी पर लगे हो उनमे पूरक वृक्ष नहीं लगानाचाहिए। जैसे नीबू, सन्तरा, मौसम्बी, अमरूद, अनार आदि के उद्यानों में पूरक वृक्ष न लगाएं बल्कि बीच की फसल लें। आम, कटहल, आंवला, चीकू, लीची, जो कि अधिक दूरी पर लगाए जाते है, इनके उद्यानों में पूरक वृक्ष लगा सकते हैं।

4.10 सामान्य देखभाल -

नवीन रोपित उद्यानों की देखभाल अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है, क्योकि इन पौधों के विकास के ऊपर उद्यान का फलन निर्भर है। सुरक्षा के अलावा थाल बनाना, सिंचाई करना, पौध संरक्षण के उपाय अपनाना, खाद और उर्वरक देना आदि प्रमुख है। ऐसा सोचना गलता होगा कि वृक्ष के फल नहीं रहे हैं इसलिए देख-रेख की आवश्यकता नहीं है, बल्कि जिस तरह एक छोटे बच्चे की देख-रेख की अधिक अवशकता होती है वही पौधों के बारे में भी सत्य है।

थाला बनाना - फल वृक्षों के लिए थाला बनाना उसके लिए स्थान निर्धारित करना है, जहां पर वृक्ष के लिएपानी, खाद एवं उर्वरक आदि दी जाती है अर्थात् थाला वृक्ष के लिए कार्यस्थल है। थाला बनाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कितने से लगी हुई भूमि बिखरने या खुदने न पाए इसलिए तने के चारों और 1/3 मी. स्थान छोड़कर थाला बनाया जाता है। इस स्थान को पौधे की नींच समझना चाहिए। थाला का आकार वृक्ष के फैलाव के ऊपर निर्भर करता है। जैसे - जैसे फैलाव बढ़ता जाता है। थाले का आकार भी बढ़ता जाता है। थाला सामान्य भूमि के समतल ही बनाना चाहिए न कि गहरा करकें।

सिंचाई करना - वृक्षों को आवश्यतानुसार पानी देना चाहिए। पानी की आवश्यकता भूमि के प्रकार ऋतु तथा वृक्ष के आकार के ऊपर निर्भर करती है। सिंचाई का पानी तना को न स्पर्श करें, यह ध्यान रखें । थाला में पानी दिया जाता है, अतः पानी का बहाव तेज नहीं होना चाहिए।

खाद और उर्वरक देना - पौधों की वृद्धि तेजी से हो, इसलिए उचित मात्रा में खाद और उर्वरक देना चाएि। खाद और उर्वरक थाला में देकर हल्की बुड़ाईकर सिंचाई कर देना चाहिए। यदि वृक्षों की बाढ़ कमजोर दिखाई दे और पत्तियां पीली दिखाई दे तो यूरिया का छिड़काव किया जा सकता है। खाद और उर्वरक वृक्ष के फैलाव की परिधि में देना चाहिए।

पौध संरक्षण - पौधे में यदि कोई बीमारी या कीड़ों का आक्रमण दिखाई दे तो आवश्यक दवाईयों का छिड़काव करना चाहिए। वर्षा ऋतु के बाद वृक्षों के तनों पर बोर्डो पेस्ट लगा देना चाहिए।

पुनः रोपण - उद्यानों में लगाए गए पौधों मे से कुछ तो मरते ही हैं, अतः उनके स्थान पर मार्च या जुलाई में नए पौधे लगा देना चाहिए लेकिन लगाने से पूर्व यह ज्ञात कर लेना चाहिए कि पहले पौधा क्यों मर गया है, आरम्भ में जब उद्यान में पौधा लगाएं तब कुछ पौधों को गमलों में लगा देना चाहिए। ये पौधे मरे हुए पौधों के स्थान पर लगाने के काम आते हैं। इस तरह से उद्यान वृक्षों की उम्र में अन्तर नहीं आता है।

4.11 फलित उद्यानों का प्रबन्ध -

कुछ फल वृक्ष ऐसे हैं जो लगाने के दूसरे वर्ष में फल देना आरम्भ कर देते हैं, जैसे पपीता, केला, अनन्नास, स्ट्राबेरी आदि। इनका जीवन काल भी कम होता है। केला, अनन्नास, स्ट्राबेरी, फलने के पश्चात् समाप्त हो जाते हैं और इनका पुनः रोपण करना होता है। पपीता तीन-चार वर्ष तक फलता है और समाप्त हो जाता है। फलित उद्यानों के प्रबन्ध से तात्पर्य ऐसे फलने हुए फल वृक्ष से है, जो दीर्घजीवी होते हैं और समय-समय पर इनमें निश्चित उद्यानिक क्रियाएं

की जाती है। आम, कटहल, चीकू, लीची, आंवला, बेर, काजू, शहतूत, खिरनी आदि फलों के वृक्ष 40-50 वर्ष से भी अधिक समय तक फलते रहते हैं। अमरूद, नींबू , सन्तरा, मौसमी, अनार, सीताफल, करौंदा, अपेक्षाकृत कम वर्षों तक फलते हैं। अतः यह आवश्यक है कि फलित उद्यानों के प्रबन्ध में ऐसी उद्यामिका क्रियाएं अपनाई जानी चाहिए जो कि वृक्षों के भरपूर फलन के साथ ही उन्हें दीर्घ जीवन दें। ऐसी उद्यानिका क्रियाएं अपनाई जानी चाहिए जो कि वृक्षों के भरपूर फलन के साथ ही उन्हें दीर्घ जीवन दें। ऐसी उद्यानिका क्रियाऐं निम्न है -

अ) काट-छांट या कृन्तन,

आ) कर्षण क्रियाएं

इ) खाद एवं उर्वरक देना

ई) सिंचाई

उ) पौध संरक्षण

ऊ) फलों की तुड़ाई

अ) **काट - छांट या कृन्तन -** वृक्ष के किसी भी भाग को विशेष उद्देश्य से काटकर अलग कर देने की क्रिया को काट-छांअ कहते है। वृक्ष के किसी भाग को काटने के निम्न उद्देश्य हो सकते हैं, जो कि वृक्ष के लिए आवश्यक होता है -

1 सधाई या वृक्षों को निश्चित आकार या स्वरूप देने के उद्देश्य से कटाई छंटाई की जाती है, जैसे अग्रफरोह, खुला शीर्ष, परिवर्तित अग्रप्ररोह रूप। इनका वर्धन दिया जा चुका है।

2 वृक्षों में वृद्धि और फलन में सामंजस्य लाने हेतु कृन्तन की जाती है। वानस्पति वृद्धि तथा फलन ये ही ऐसी क्रियाएं हैं, जो एक साथ ही साथ नहीं होती। वृद्धि के फलस्वरूप खाद पदार्थो का संचय होता है, इसके बाद फूलने -फलने की क्रिया होती है। अतः वृद्धि एक निश्चित सीमा तक हो अर्थात् वृक्षों में कार्बोहाइड्रेड और नाइट्रोजन का अनुपात सनुलित रहें और समयानुसार उनमें फूल और फल लगें, यही समाजस्य बनाए रखना कृन्तक का उद्देश्यहै। अधिक वानस्पतिक वृद्धि से वृक्षों में फलन कम हो जाता है तथा कम वृद्धि से भी पर्याप्त उत्पादन नहीं हो पाता। कुछ फल वृक्षों में नई शाखाओं में ही फूल लगते हैं, जैसे - अंगूर, फालसा, सेब आदि इसलिए इनमें काट - छांअ एक महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य क्रिया है। निश्चित समय और विधि के अनुसार इनमें कटाई - छंटाई करने से नवीन शाखाएं निकलती हैं और उनमें फल लगते हैं।

3 वृक्ष के एक अंग से दूसरे अंग में शकित स्थानान्तरण हेतु भी काट-छांट की जाती है, जैसे - यदि बढ़ते हुए वृक्ष का सिरा काट देने से उसकी शकित जो शीर्ष की वृद्धि करने में लगी थी। स्थानान्तरित होकर नीचे की ओर से शाखाएं विकसित करने में लग जाती है। कुछ वर्षों में फूल आने के लिए जड़ों की छंटाई की जाती है। जड़ों की छंटाई करने से जड़ों के विकास में लग जाती है। इसी तरह यदि फूलों के गुच्छों में से कुछ फूल तोड़ दिए जाएं या गुच्छों को ही अलग कर दिया जाय तो शक्ति स्थानान्तरित होकर वानस्पतिक वृद्धि में लग जाती है, जैसे आम, नींबू, अमरूद आदि मे। जैसे अमरूद वर्ष में दो बार फलता है - शीत ऋतु और वर्षा ऋतु में। वर्षा ऋतु की फसल अच्छी नहीं होती है इसलिए वृक्षों के फूल काटकर गिरा दिए

जाते है। फूल गिरा देने पर वानस्पतिक वुद्धि होती है और पुनः फूल आते हैं जो शीत ऋतु में फल देते हैं।

4 पौध संरक्षण के रूप में भी कटाई-छंटाई को अपनाया जाता है। जिन शाखाओं में रोग का आक्रमण हो चुका है, उन्हें काटकर अलग कर दिया जाता है, जिससे कि रोग पूरे वृक्ष में न फैलने पाए। इसमें कीटों द्वारा अक्रामित शाखाओं को काट दिया जाता है।

5 वृक्षों की सफाई के लिए भी कृन्तक किया जाता है। फलों की तुड़ाई के पश्चात हल्की छंटाई आवश्यक होती है, जिससे कि सूखी हुई या क्षतिग्रस्त शाखाएं निकल जाएं और वृक्ष साफ सुथरा दिखाई देने लगे। सुखी हुई शाखाओं में रोग शीघ्र लग जाते हैं। इसके साथ अनावश्यक शाखाएं भी होती हैं जो वृक्ष को अनावश्यक रूप से घना बना देती है, उन्हें भी काटकर अलग कर देना आवश्यक होता है।

काट - छांट के आवश्यक नियम -

वृक्षों की काट-छांअ करने के कुछ सामान्य नियम है, जिनके अनुसार कृन्तन किए जाने से ही उपर्युक्त उद्देश्य पूरे होते हैं -

1 जो शाखाएं एक दूसरे से रगडत्रती हों या अधिक समीप हो उन्हें काट देना चाहिए।ऐसा करने से छोड़ी हुई शाखा का पूर्ण विकास होता है और वृक्षों को अधिक सूर्य प्रकाश तथा वायु प्राप्त होती हे।

2 एक दूसरे को पारकर जाने वाली शाखाओं मे से एक को काट देना चाहिए जिससे कि ऊपर वाली शाखा का बोझ नीचे की शाखा पर न पड़े।

3 कलमी पौधे के मूलवृन्त से निकलने वाली शाखओं को काटते रहनाचाहिए। मूलवृन्त से निकलने वाली शाखाएं तेजी से बढ़ती है, और सांकुरडाली की वृद्धि को रोक देती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मूलवृन्त से शाखाएं बढ़ जाती है ओर सांकुरडाली सूख जाती है, इस प्रकार पौधा मूलवृन्त के गुण वाला हो जाता है जो कि उचित नहीं है। आम, सन्तरा, मौसम्बी, चीकू, आंवला, अमरूद आदि फलों के पौधों में विशेष सावधानी रखने की आवश्यकता होती हैं।

4 शाखाओं को काटतेसमय यह ध्यान रखें कि वह फट न जाएं और न ही उसकी छाल अलग होने पाए। कुल्हाड़ी से मोटी शाखा को रस्सी से वृक्ष से बांध देना चाहिए जिससे वह काटते समय अचानक गिर न पड़े। फटे हुए और छाल निकले हुए अवशेषों(ठूंठ) पर रोग ओर कीड़ों का आक्रमण शीघ्र ही होता है। मोटी शाखाओं को आरी से एक तरफ से ही आरी न चलाकर चारों तरफ से चलानी चाहिए, ऐसी करने से चारों तरफ की छाल पहले ही कट जाएगी।

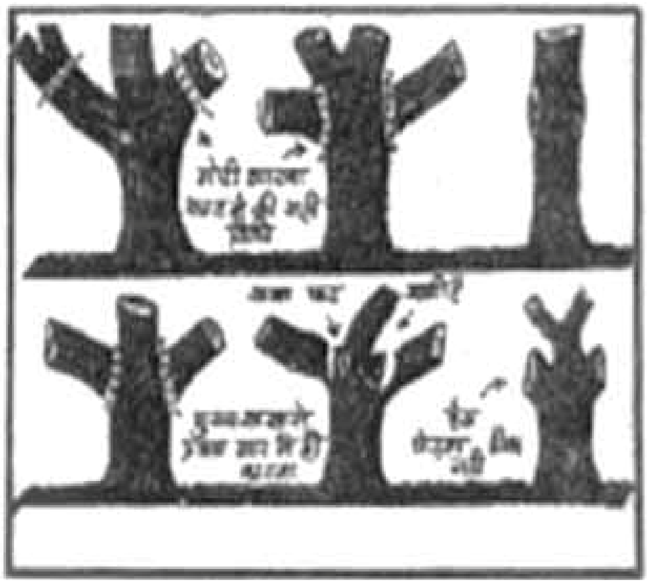

5 कृन्तन के पश्चात् कटे हुए स्थान पर बोर्डों पेस्द चैपटिया पेस्ट या कोलतार लगा देना आवश्यक है, जिससे कि कटे हुए भाग मे रोग या कीड़ों का आक्रमण न हो सकें। वर्षा के दिनों में ऐसे स्थान सड़ने भी लगते है।

6 शाखाओं को काटने से पहले यह देख ले कि शेष शाखाएं कमजोर कांच या क्रोच से नहीं बना रही हैं। कमचोर क्रोच बनाने वाली शाखाओं को पहले काटना चाहिए। मुख्य तने से जब शाखाएं निकलती है, तो उससे एक निश्चित कोण बनाते हुए निकलती है, इस कोण को क्रोच माना जाता है। यदि कोण कम होता है तो कमजोर क्रोच माना जाता है तथा अधिक होने पर मजबूत क्रोच माना जाता है। अतः ऐसी कटाई करनी चाहिए कि मजबूत क्रोच अधिक बने अर्थात् मुख्य तना शाखाएं अधिक अन्तर से विफल कर ऊपर न बढ़कर समतल दिशा में बढ़े।

7 कटाई - छंटाई यद्‌यपि एक महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य क्रिया है यद्‌यपि वृक्षों की अधिक कटाई - छंटाई उनको कमजोर बना देती है। अधिक मोटी शाखओं को तभी काटना चाहिए तब उनका काटना अनिवार्य हो गया हो। अच्छा हो यदि पौधे के आरम्भ से हल्की कटाई करते रहें जिससे कि अवांछनीय शाखाएं मोटी न हो पाएं।

काट-छांट की विधियाँ -

1 विरलन - वृक्षों की अनावश्यक शाखाओं कोउनके मूल स्थान से काअ देने की विधि को विरलन कहते हैं। ऐसी काट - छांट की तब आवश्यकताहोती हैं जब वृक्ष अधिक घना हो या रोगग्रस्त हो गया हो।

2 छांगना या छंगाई - इस विधि में शाखाओंके अग्रभाग को काटकर अलगकर दिया जाता है। हल्की काट - छांट के लिए यह विधि अपनाई जाती है।

3 जड़ों की छंटाई - वृक्ष में फूल लाने की दृष्टि से कुछ जड़ों को काट दिया जाता है जिससे कि शक्ति स्थानान्तरित होकर फूल आ जाते हैं।

आ) कषर्ण क्रियाएँ -

कषर्ण क्रियाओं से तात्पर्य, उद्यानों में जुताई करना, थाला में गुड़ाई करना और खरपतवारों का नियंत्रण करना है।

आदर्श उद्यान व्यवस्था तो वह है, जिसमें जुताई - गुड़ाई कम से कम की जाय, खरपतवार या नींदा का नियंत्रण नींदानाशकों दवाओं का उपयोग करके किया जाय तथा उर्वरक हल्की सिंचाई के पानी में घोलकर दिया जाए। ऐसी व्यवस्था प्रायः सम्भव नहीं हो पाती है, अतः परिथिति के अनुसार निम्न कर्षण क्रियाएं की जानी चाहिए:

1 जुताई तथा गुड़ाई - उद्यान की भूमि को भूरभूरी बनाने तथा खरपतवार नष्ट करने के उद्देष्य से की जाती है। भूमि में उगी हुई घास आदि भूमि में दबकर सड़ जाय और उद्यान साफ-सुथरा दिखाई देने लगे । उद्यान में अधिक जुताई तथा गहरी जुताई नहीं करनी चाहिए। ऐसा करने से वृक्षों की उथली जड़ों को हानि पहुंचती है और वृक्ष कमजोर हो जाते हैं। थाले वाले स्थान में जुताई करना सम्भव नहीं हो पाता, अतः उस स्थान के खरपतवार को नष्ट करने के उद्देष्य से गुड़ाई की जाती है। गुड़ाई अत्यन्त ही हल्के रूप से की जानी चाहिए अन्यथा थाली में फैली हुई सतही पोषक जड़ों को हानि पहुंचती है। तने के 1/2 से 1/3 मीटर स्थान में गुड़ाई आदि न करें, इस स्थान को सामन्य स्थान से थोड़ा ऊँचा कर दें। सन्तरा फल के वृक्षों के थालों में गुड़ाई कदापि न करें। जड़ों को क्षति पहुँचने से गमोसिस नाम की बीमारी हो जाती है और वृक्ष में अन्ततः सूखने की बीमारी या डॉय बैक लग जाती है। इससे वृक्ष सुख जाता है।

2 खरपतवार नियंत्रण - उद्यान में खरपतवार या घास अधिक मात्रा में होते हैं। इनको नष्ट करने के लिए बार-बार जुताई करना उद्यान के हित में नहीं होता। अतः इनका नियंत्रण नींदानाशक दवाओं का उपयोग करके किया जाता है। सिमाजिन 2-5 किला प्रति हेक्टर, डालापौन 2.3 प्रति हेक्टर तथा 2,4 डी, 475 किलो प्रति हेक्टर छिड़काव करना चाहिए।

3 थाला बनाना - वर्षा ऋतु के पश्चात् प्रतिवर्ष वृक्षों के थाले बनाना चाहिए, जिससे खाद तथा सिंचाई देने में सुविधा हो। थाला वृक्षों के आकार के अनुसार बनाना चाहिए।

इ) खाद एवं उर्वरक देना - अधिकाशंत उद्यानों में खाद और उर्वरक नियमित रूप से नहीं दिए जाते हैं। वर्तमान समय में इसकी उपयोगिता महसूस की जा रही है और कुछ फलों के उद्यानों जैसे - अंगूर, केला, पपीता, सन्तरा, अनन्नास,सेब, नींबू आदि में खाद और उर्वरक नियमित और निश्चित मात्रा में दिए जाते हैं। अन्य फलों के उद्यानों में ऐसीनहीं किया जाता है। यह निश्चित सत्य है कि किसी भी फल के वृक्ष को यदि निश्चित मात्रा में खाद और उवैरक दिए जाएंतो उसका फलन या उपज बढ़ जाती है। अतः किसी प्रकार के फल के वृक्ष को खाद और उर्वरक देना आवश्यक है। वृक्षों से खाद और उर्वरक की मात्रा उसके उम्र के अनुसार निश्चित की जाती है। खाद और उर्वरक वृक्ष के लिए बनाए गए थालों में बराबर फैलाकर दिए जाते है। विस्तृत विवरण ''पोधे पोषण'' के अन्तर्गत देखें।

(ई) सिंचाई - खाद और उर्वरक के समान ही सिंचाई के सम्बन्ध में भी धारणा है। सिंचाई भी उद्यान में एक अनिवार्य क्रिया है। कम उम्र वाले वृक्षों में जैसे केला, पपीता, अनन्नास

आदि में सिंचाई करना आवश्यक है। विस्तृत वर्णन 'उद्यान जल व्यवस्था' के अन्तर्गत देखें।

(उ) पौध संरक्षण - फल वृक्षों को तथा फलों को रोग तथा कीड़ों से हानि होती है। इसका सामयिक नियंत्रण भी आवश्यक है। इस विषय का विस्तृत विवरण 'पौध संरक्षण' के अन्तर्गत देखें।

(ऊ) फलों की तुड़ाई - फलों का विक्रय मूल्य अधिक हो तभी फलोत्पादन व्यवस्था में उचित लाभ हेताहै। फलों के गुण उनके पकने की अवस्था के ऊपर निर्भर करता है, अतः फलों को ऐसी अवस्था में आने पर तुड़ाई की जानी चाहिए जब वे पूर्णतया गुणों से परिपूर्ण हों। फलों को कच्ची अवस्था में या अधिक पक जाने की अवस्था में तोडत्रने से उनके गुणों में हीनता आ जाती है। वृक्षों को हिलाकर फल भूमि पर गिराकर तोड़ने की विधि अच्छी नहीं है। फलों की परिपक्वता का ज्ञान महत्वपूर्ण है। फलों की परिवक्तता के आधार पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) क्लाइमैक्ट्रिक फल - फल श्वसन या साँस लेना की क्रिया के फलस्वरूप पकते है, जिसके अन्तर्गत फल शर्करा में परिवर्तन होता है। ऐसे फल जो पूर्णतया विकसित होने पर जब वृक्ष से तोड़े जाते हैं तो उनमें श्वसन की क्रिया में वृद्धि हो जाती है और फल पकने आरम्भ हो जाते हैं। जब श्वसन की क्रिया अधिकतम होती रहती है तब फल स्वादिष्ट होता है। यही सही अवस्था है जब फलों का विक्रय किया जाना चाहिए। इस अवस्था के पश्चात फल खराब होना आरम्भ हो जाता है, जिसे सामान्य भाषा में उत्तर जाना या फीका हो जाना कहते हैं। ऐसे फलों में आम, केला, पपीता, सीताफूल, खजूर आदि है अतः इन फलों को पूर्ण विकसित होने पर तोड़ना चाहिए, वृक्ष पर नहीं पकने देना चाहिए। ऐसे फल अधिक समय तक रखे जा सकते हैं।

(2) नॉन - क्लामैक्ट्रिक फल - इस प्रकार के फलों में श्वसन क्रिया की अधिकतम सीमा तोड़ने के पश्चात नहीं होती। अतः ऐसे फल विकसित होने पर यदि वृक्षों से तोड़ लिये जाएं तो ये पक नहीं सकते और स्वादिष्ट नहीं होते। इसलिए ऐसे फलों को वृक्ष से तोड़ना चाहिए। इसी अवस्था में ही ये फल स्वादिष्ट होते हैं। ऐसे फल अंगूर, सन्तरा, माल्टा, मौसम्बी, अमरूद, अनन्नास, आंवला, बैर, फालसा ,अनार तथाकरौंदा आदि है।

सामान्य रूप से फल तोड़ने का नियम यह होना चाहिए कि तोड़ने और उपभोक्ता तक पहूँचाने के समय के बीच फल में कोई खराबी न आने पाये और फल में स्वाद और सुवास का पूर्ण विकास हो। फलों के पकने की दशा तथा तोड़ने के समय अनुभव का अधिक महत्व है। फलों का विक्रय - स्थल अर्थात् स्थानीय बाजारों में या दूरस्थ बाजारों में है, तुड़ाई कासमय निर्धारित करता है। दूरस्थ बाजारों के लिए फलों को पकने से कुछ पहले तोड़ना आवश्यक है

यदि पौधों को उनकी प्रकृति के अनुसार बढ़ने दिया जाये तो वे कुछ दिनों में जंगली रूप धारण कर लेते है तथा पर्याप्त फल नहीं आते। इसलिए ऐसे पौधों की कांट-छांट जरूरी है जिससे उनका वांछित आकार और कद बना रहे तथा फसल भी अच्छी आये। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कुछ पोधों की कटाई -छटांई केवल आरम्भ में सधाई के लिए की जाती है जबकि पर्णपाती वृक्षों में जैसे अंगूर, सेब, आड़ू आदि की कांट-छांअ उचित फसल के लिए की जाती है।

साधना का तात्पर्य है कि पौधे की अवांक्षित शाखाओं या भाग को काटकर इसे एक वांछित शक्ल देना। साधना और कांट - छांअ में अन्तर सिर्फ इतना है कि साधना पौधे की आरम्भिक अवस्था में कांट - छांअ द्वारा की जाती है। जिससे पौधेका वांछित आकार बन जाये जबकि कांट - छांट पौधे की फलत अवस्था में की जाती हैं जिससे फलोत्पादन नियमित रूप से मिले और अच्छे गुण वाले फल प्राप्त हो।

पौधे के आकार और शक्ल को नियमित करना भी कांट- छांअ का उद्देश्य है। पौधे के आकार नियमित होने से फल तोड़ने और पौधे के ऊपर दवा छिड़कने में आसानी होती है।

कांट-छांअ करने का समय विभिन्न कारकों पर आधारित है जैसे - समय की उपलब्धता, वांछित प्रभाव, जाति तथा प्रजाति। फलधारी पौधों की काट-छांट का सबसे बढ़िया समय वह होता है जब वे सुषुप्ता अवस्था में होते है। इसको सुषुप्ता कांट-छांअ कहते है। ग्रीष्म ऋतु में की गई कांट-छांअ ग्रीष्मकालीन कांट-छांट कहलाती है।

वायु अवरोध

वाय अवरोध या ऊँचे-ऊँचे वृक्ष बाग की पश्चिम दिशामे लगाकर पौधों और वृक्षों को लू और गर्म हवाओं से होने वाली हानि से कुछ हद तक बचाया जा सकता है।

पाले तथा आतपदा से सुरक्षा

वायुरोधक वृक्षों को लगाकर फलधारी वृक्षों को पाले के नुकसान से कुछ हद तक बचाया जा सकता है। ये वायुरोधक पौधे बाग के उत्तर पश्चिम दिशाओं में लगाने चाहिए। ये पौधे गर्म व ठंडी हवाओं से बाग की रक्षा करते है।

गर्मी में गर्म हवाओं का जोर हो, उस समय बाग की सिंचाई करके फलों और वृक्षों दोनों के नुकसान से बचाया जा सकता है।

पेड़ के मुख्य तने पर सफेदी करके पोधे को धूपदाह से बचाया जा सकता है।

4.12 सारांश

रोपण प्रणाली की प्रमुख विधियों में वर्गाकार, आयताकार, क्विकक्स, त्रिभुजाकार, समोच्च रेखा एवं षष्ट आकार है। भारत में अधकतर आयाताकार विधि का प्रयोग किया जाता है। फंल पोधे लगाने का उत्तम समय वर्षा ऋतु में जुलाई - अगस्त माह है। पौधे को लगाते समय गढ़ढा उसकी आवश्यकतानुसार बनाया जाता है। पौधों का पाले से बचाने के लिए सिंचाई करना, बाड़ लगाना आदि प्रमुख बाते हैं। फल वृक्षों की सधाई किया जाना भी एक आवश्यक कार्य है। फल उद्यानों में फल वृक्षों की प्रवृति के अनुसार आते है अतः इसके मध्य रिक्त स्थानों का उपयोग अन्तरा शस्य या बीच की फसल उगा कर दिया जाता है।

4.13 बोध प्रष्न

1 बाग लगाने की प्रमुख विधियां का वर्णन कीजिए।

2 कांट छांट में आवष्यक नियम बताइये।

3 निम्न में से कौनसा क्लाइमैट्रिक फल है?

अ आम   ब अमरूद

स अंगूर   द आंवला

4 निम्न में कौनसा बाग लगाने की विधि सबसे सरल एवं उत्तम है?

अ आयताकार विधि ब वर्गाकार विधि

स त्रिभुजाकर विधि द षट्भुजाकार विधि

5 निम्न में से कौनसी सब्जियों से उर्वराषक्ति बढ़ती है?

अ मटर ब बरटी

स मूंग द उपरोक्त सभी

4.14 संदर्भ सामग्री

8 Singh, Ranjit, 1992, *Fruits*, national Book Trust.

9 Katyal, S.L. and Chandha, K.L.L 1995, Vegetable Growing in India, Oxford and IBH Publishing Company, pp.157

10 Bose, T.K., 1985, Fruits of India : Tropical and Sub-tropical, naya Prokash, pp.637

11 Singh, S.P., 1989, Production Technologies of vegetable Crop, ARCC, pp.380.

12 National Horticulture Data Base, National Horticulture Board Agriculture Ministry, Government of India

13 शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.

14 श्रीवास्तव, एस. एस., उद्ययान विज्ञान, 2013, सेंट्रल बुक हाउस, रायपुर.

इकाई 5

पेड़, झाड़ी, आरोही पौधे

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 पेड़
5.3 झाड़ी
5.4 पौधे
5.5 पौध प्रवर्धन
5.6 सारांश
5.7 बोध प्रश्न
5.8 संदर्भ सामग्री

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पष्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि -

- पेड़, झाड़ी एवम् पौधे में अंतर एवम् उनके उदाहरण
- वनस्पति प्रवर्धन की विधियां
- वनस्पति प्रवर्धन का सही समय एवम् तकनीक

5.1 प्रस्तावना

उद्‍यान विज्ञान की दृष्टि से वनस्पति को मुख्यतः पेड, झाड़ी एवम् पौधों में बांटा गया हैं। पौधों में प्रवर्धन की क्रिया जनन या वृद्धि का ही परिणाम हैं। जनन की क्रिया परागण और निषेचन के परिणामस्वरूप होती हैं। इसके साथ पौधों की कुछ प्रजातियां ऐसी भी है जो बीज उत्पन्न नहीं करती हैं या कम मात्रा में करती हैं। ये प्रजातियां अपने अंगों जैसे तना, जड़, पत्तियां, कलिकाएं आदि से प्रवर्धन की क्रिया सम्पन्न करती है।

5.2 पेड़

पेड़ों की उपयोगिता तथा इनका महत्व सर्वविदित है, इनसे उद्‍यान मे रौनकता तो आती ही है, परन्तु जब ये खिलते हैं, तब इनके फूलों की छटा देखते ही बनती है।

पेड़ों को उनके आकार के अनुसार तीन भागों में बांटा गया है - बड़े आकार, मध्यम आकार तथा छोटे आकार के पेड़।

(1) बड़े आकार के पेड़

(1) नीम

(2) सेलम

(3) अशोक

(4) कोलिविलिया

(2) मध्यम आकार के पेड़

(1) गुलाब

(2) जावा कैशिया

(3) तनु

(4) गुलमोहर

(3) छोटे आकार के पेड

(1) आस्ट्रेलियन बबूल

(2) गुलाबी कैशिया

(3) गुल-ए-चीन

(4) स्पेथोडिया

(4) सुगंधित पेड़

(1) एल्स्टोनिया स्कोलैरिस

(2) मैगनोलिया ग्रैंडिफ्लोरा

(5) छायादार पेड़

(1) फाइक्स इन्फेक्टोरिआ

(2) फाइक्स रेट्रूजा

(3) किजेलिया पिनेनटा

(6) सुन्दरता के लिए पेड़

(1) फेलिएलथिआ लोंगिफोलिआ

(2) रोयम पॉम

(3) पोलिएलथिआ पेड्रंला

(4) ग्रेवलिया रोबस्टा

5.3 झाड़ी

उद्यान में झाड़ियों का स्थान काफी महत्वपूर्ण है।यह लॉन में दो या तीन पौधों के झुण्ड में लगाई जाती है। रंग, ऊँचाई या फूल आने के समय के अनुसार क्यारी में लगाने से झाड़ियाँ बहुत ही शोभा देती है। झाड़ियों को इस प्रकार से लगाने को शरबरी बोर्डर कहते है।

अधिक ऊँचाई वाली झाड़ियाँ

पौधे का नाम	फूल का रंग
हिमेलिआ पेन्टस	नारंगी
टिकामास्टेंस	पीला
मुराया एक्जोटिका	सफेद
बुडलीआ लिंडलेयाना	लाल, बैंगनी

मध्य ऊँचाई वाली झाड़ियाँ

एकलीफा मेकेफिकाना	लाल
रूजेलिआ फ्लोरीबंडा	लाल
मिनिआ	बैंगनी
प्लमबेगो केपेंसिस	गुलाबी
क्रोसेन्ड्रा	कई रंग (पील, लाल)
इरेनथिमम	पत्तियों का रंग, गहरा गुलाबी

सुगंधित झाड़ियाँ

चांदनी रात की रानी, मिचेलिआ चमपाका, इक्जोरा, पर्विफ्लोरा आदि।

5.4 पौधे

एकवर्षीय पौधे

''एक वर्षीय या मौसमी फूल वाले पौधें उन्हें कहते हैं, जो कि अपना जीवन चक्र एक वर्षया एक मौसम में पूरा कर लेते हैं।''इनमें से अधिकांश पौधे ऐसे हैंजो अपना समस्त जीवन केवल 3 से 6 महीनों में पूरा कर लेते है।

क्यारियों में मुख्यतया एस्टर, बरबीना, फ्लॉक्स, नस्ट्रेशियम, सालिविया, पैजी, स्वीट विलियम,जीनिया आदिको उगाया जाता है।

गामलों में निम्नलिखित पोधों को उगाया जाता है - एस्टर, जीनिया, कॉक्स, कोम्ब, स्टाॅक, गेंदा, बरबीना, कैलेन्डूला, पैंजी, फ्लॉक्स, कार्नेशन, पिटुनिया, कैन्डीटफ्ट आदि।

बाड़ के रूप में लगाने हेतु पौधे - हॉली हॉक, निकोटियाना, स्वीट पी, लार्क स्पर, गेंदा, गुलदाऊदी, डहेलिया, सूरजमुखी, कॉसमोस आदि।

बहुवर्षीय पौधे

बहुवर्षीय पौधे उन्हें कहतेहै जो एक वर्ष से अधिक समय तक अपना जीवन चक्र चलाते हैं। इनमें प्रमुख है - गुलाव, कचनार

आरोही

आरोही लताओं में प्रमुख है - बिगोनिया लेनसुस्टा, टिमोका ग्रेंडिफ्लोरा, बोगनवेनिया आदि।

5.5 पौध प्रवर्धन

बीज प्रवर्धन

पैदावार बढ़ाने में उन्नत किस्मों में अच्छे गुणों के बीजों को बहुत बड़ा महत्व है। स्वयं परागण वाली सब्जियां जैसे मटर, मैथी, सेम, बाकला, टमाटर, बैंगन, मिर्च, ग्वार, जैसी सब्जियों की उन्नत किस्मों के बीज थोड़ी सी जानकारी के साथ लगभग सभी किसान स्वयं बना सकते है। पर-परागण वाले सब्जियों जैसे कद्दूवर्गीय सब्जियां (लौंकी, तुरई, करेला, खीरा, ककड़ी, खरबूजा, तरबूज, टिंडा आदि) फूलगोभी, पत्तागोभी, गांठगोभी, मूली, शलगम, गाजर, प्याज आदि तथा

संकर किस्मों के बीज पढ़े लिखे युवक किसान थोड़ी सी जानकारी व प्रशिक्षण के साथ सफलतापूर्वक पैदा कर सकते है।ऐसा करने से सब्जियां की खेती से मिलने वाली कुल आमदनी से बढ़ोतरी होगी।

नर्सरी का विन्यास

नर्सरी के प्रमुख कार्य - पौध प्रवर्धन के लिए निमन अंग आवश्यक है

1. निवास, कार्यालय, भण्डार, पशु गृहआदि,
2. सड़क एवं रास्ते
3. मातृ वृक्ष
4. क्यारियाँ
5. गमला स्थल
6. कार्य स्थल
7. पैकिंग स्थल
8. सिंचाई व्यवस्था
9. खाद के लिए गड्ढ़े

बीज द्वारा पौधे तैयार करना -पौधे तैयार करने के लिए बीज उन्नतिशील किस्म के विश्वसनीय, शुद्ध तथा रोग के आक्रमण से मुक्त होने चाहिए। कम से कम 60-80 प्रतिशत अंकुरण क्षमता वाला हो। क्यारियों में बीज बोने से पहले उनकी अंकुरण क्षमता का प्रतिशत ज्ञात कर लेना चाहिए। प्रत्येक प्रकार के बीज की अंकुरण क्षमता समय के अनुसार घटती है, अतः पुराना बीज नहीं लेना चाहिए। कुछ फलों एवं सब्जियों के बीजों की अंकुरण क्षमता की अवधि, सारणी में दी गई है।

सारणी - फल सब्जियों के बीजों की अंकुरण क्षमता की अवधि

आम - शीघ्र समाप्त होती है।	अमरूद - 1 वर्ष	प्याज - 1-2 वर्ष
करौंदा	पपीता - 1 वर्ष	बरबटी, गाजर, भिंडी - 2वर्ष
नींबू	जम्भीरी - 1 माह	मूली, मटर, मिर्च- 2वर्ष
कटहल	सीताफल - 1वर्ष	सेम, टमाटर, कद्दूवर्गीय
फालसा	आंवला -- 1वर्ष	सब्जियाँ - 2 से 4 वर्ष मिर्च - 2 वर्ष सेम - 2-4वर्ष फूल व पत्ता गोभी - 2वर्ष

अंकुरण क्षमता की अवधि इस बात पर भी निर्भर करती है कि बीज का संग्रहण किस प्रकार से किया जाता है। अधिक नगी वाले बीज यदि उच्च तापक्रम पर संग्रहित किये गये तो उनकी अंकुरण क्षमता शीघ्र ही कम होने लगती है। आम, नीबू, करोंदा, फालसा, कटहल आदि बीज की अंकुरण क्षमता शीघ्र ही घटने लगती है, अतः इनहें फलों से निकालने के तुरन्त बाद ही क्यारियों में बुवाई कर दिया जाना चाहिए।

क्यारियाँ तैयार करना -नर्सरी के ऊँचे स्थान पर जहाँ कि पानी की संभावना न हो, बीज बोने के लिए क्वारियाँ बनानी चाहिए। ऐसी क्वारियाँ छोटी लगभग 1 ग 1 मी. लम्बी चैड़ी आकार की तथा भूमि के धरातल से 15-20 सेमी ऊँची बनानी चाहिए। क्यारियाँ बनाने से पहले भूमि की जुताई पर मिट्टी अच्छी तरह भुरभूरी बना लेती चाहिए। क्यारियाँ तैयार कर इनमें 15 किलो अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद प्रति क्वारियाँ मिलकर हल्की गुड़ाईकर समतल कर लेनी चाहिए। एक हैक्टर क्षेत्र पर सब्जी पौधेलगाने के लिए लगभग 1/200 हेक्टर भूमि 2 ग 1 मी. आकार की 15 क्वारियाँ में कंकड़ तथा घास आदि बीज नहीं होना चाहिए। सब्जियों, फूलों तथा फूलों के बीज सदैव कतारों में बुवाई करें। बीज बोने के बाद बीजों को खाद की पर्त से ढक दें। धूप की अधिक तीव्रता से हानि होने की संभावना में क्यारियों को चटाई या घास से ढक देना चाहिए। ऐसा करनेसे धूप से तो बचत होती है, चिड़ियों आदि से भी बचत होती है। सिंचाई नित्य प्रति हजारे से हल्के रूप् में प्रातः काल करना आवश्यक है। महीन आकार के बीजों की क्वारियों मे न बुवाई कर गमले में बोना चाहिए। यदि इन्हें क्वारियों में बोना पड़े तो बीज का रेत के साथ मिलकार बोना चाहिए। बीज बोने से पहले बीजों को एग्रोसन, कैप्टान, थाइरम, ब्रॉसीकाल आदि दवाओं से उपचारित कर लेना चाहिए। क्वारियों में उपस्थित जीवाणुओं को नष्ट करने के लिए भूमि उपचार भी आवश्यक है। भूमि उपचार 1:1 100 या 1 प्रतिशत बोर्डो मिश्रण या 0.2 प्रतिशत फाइटोलान या 3 प्रतिशत फार्मेलिन आदि दवाओं से किया जाता है। बीज उपचार और भूमि उपचार का विस्तृत वर्णन पौध संरक्षण के अन्तर्गत दिया गया है। बीज जमने के पश्चात् क्वारियों से घास आदि निकालते रहना चाहिए। यदि पौधे कमजोर दिखाई दे तो 0.5 प्रतिशत यूरिया का छिड़काव कर देना चाहिए। सामान्यता 1 से1.6 माह में खेत में लगाने योग्य हो जाते है। क्वारियों में हल्की सिंचाई करके पौधों का उखाड़ना चाहिए। एक बार जिस क्यारी में किसी सब्जी के पौधे लगाए हो, उसमें दूसरी बार सब्जी बदलकर या फूल के पौधे उगाने चाहिए। एक ही क्वारी में एक ही प्रकार की सब्जी के बीज नहीं बोने चाहिए।

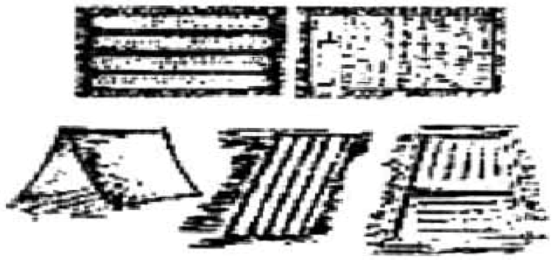

चित्र - बीज पौध तैयार करने की विधि

पॉलीथीन की थैलियों में पौधे तैयार करना - पॉलीथीन की थैलियों में फल तथा शोभायामान वृक्ष एवं झाडियों के पौधे तैयार किये जाते हैं। इस तरह से तैयार पौधों के स्थानान्तरण में सफलता होती है तथा उद्यान में लगाने पर मृत्यु संख्या भी कम होती है। पॉलीथीन में तैयार पौधे किसी भी ऋतु में उद्यान में लगाये जा सकते हैं। पॉलीथीन मोटे किस्म के होनी चाहिए। थैलियों का आकार 25 ग 10 सेमी, 30 ग15 सेमी या अन्य आकार में रखा जा सकता है जो कि पौधों के अनुसार होता है। इन थैलियों में नीचे की ओर महीन छेद कर देना चाहिए जिससे कि आवश्यकता से अधिक जल तो निकल जाए किन्तु मिट्टी न निकल पाए। थैलियों में मिट्टी 2 भाग,रेत - 1

भाग तथा पत्ती की खाद - 2 का मिश्रण भरना चाहिए। थैलियों में एक या दो बीज बोनाचाहिए। जब पौधे 5 सेमी के हो जाएं तब एक स्वस्थ पौधा रखकर अन्य को निकाल देना चाहिए।

5.5.2 वानस्पति प्रवर्धन की विधियाँ

वानस्पतिक प्रवर्धन में पौधों की प्रकृति के अनुसार उसकी जड़, पत्तियां तथा शाखाओं का उपयोग पौधे तैयार करने के लिये किया जाता है। इसी के अनुरूप अनेक विधियाँ विकसित की गई है। इन विधियांे का संक्षिप्त रूप दिया गया है।

(अ) विभाजन

कुछ पौधों में यह विशेषता होती है कि प्राकृतिक रूप् में अपने आप या अनेक पौधे विकसित करते रहते है। अतः इन विकसित पौधों का मूल पौधे से अलग कर लेने को विभाजन करते है। इनका विभाजन निम्न रूप् में होता है -

प्रकंद - जब तना परिवर्तित होकर, भोजन संग्रह करने लगता है तो उसे प्रकंद कहते है। इस प्रकंद में कलिकाएं होती है जिससे पौधा तैयार होता है, जैसे कैला, अदरक, घुइयाँ, बैजन्ती, बॉस, हल्दी, एम्पैरेगस जल-लिलि तथा लोट्स आदि।

घनकंद - यह भी तने का रूपान्तरण है। घनकंद मेंतने काअक्ष का आधार फूल जाता है और उसमें भोजन संग्रहित रहताहै। घनकंद प्रकंद की तरह समतल रूप में वृद्धि नहीं करता है। आकार में बड़ा होता है। जैसे - जिमीकंद, ग्लैडियोलस, क्रोकस, स्टेवर्जिया आदि।

आकंद - यह भी परिवर्तित तथा या जड़ होता, जिसका उपयोग प्रवर्धन के लिए किया जाता है, जैसे आलू, इहेलिया, आर्टीचोक, कैलेडियम, मेंगों जिंजर, मिरान्टा आदि।

अन्तः भूस्तरी - ऐसी शाखाएँ जो तने के ऐसे भाग से निकलती हैं,जो भूमि के अंदर होता है, अन्तः भूस्तरी कहलाते हैं, जैसे अनन्नास, केला, पुदीना, मीठी, नीम, बेल बॉस आदि।

उप -भूस्तरी - ये तने होते हैं, जो भूमि पर लेअकर बढ़ते हैं, तथा इनमें प्रत्येक पर्व संधि या गाँठ से जड़े विकसित होती है, जैसे दूब, स्ट्राबेरी, वुड सोरेल आदि।

शल्क कंद - यह भी भूमिगत तना है,जो सबसे छोटा होता है। इसमें तना छोटी - सी कन्द या तरतरी के रूप में होता है, जैसे प्याज, लिली, लहसून, रजनीगंधा, डैफोलिया आदि।

शिखर - तनों के ऊपर मुकुट के रूप् में रहता है जैसे अन्नसार, फ्लाक्स आदि।

प्रकलिका -तनों के कण कणों में विशेष प्रकार की कलिकाएँ होती है जो भोजन संग्रह करके मोटी तथा मांसल बन जाती है, जेसे सीसल या रामबॉस, डाइआस्कोरिया आदि।

धूस्तरी - यह पाश्र्व (बगल) शाखा लम्बी तथा पतली आदि है, जो तने के आधार से उत्पन्न होती है। पहले यह तिरछा ऊपर की ओर बढ़ती है और बाद में भूमि की ओर मुड़कर अन्तिम छोर पर जड़े उत्पन्न करती है और कलिकाएँ भी उत्पन्न करती है, जैसे बरमूदा, घास, पुदीना, जंगली स्ट्रोबेरी आदि।

भूस्तरी शाखा - यह अधिकाशतः गुलाबवत् पौधों में पाई जाती है। यह शाखा मुख्य तने से पाश्र्विक शाखा के रूप् में कलिका के अक्ष से विकसित होकर समतल रूप में बढ़ती है। यह छोटी और मोटी होती है। जलकुम्भी, जल लेट्यूसआदि।

(ब) कलम एवं दाब कलम

इस विधि में पौधों की जड़,पत्ती या शाखा को प्रवर्धन के लिए उपयोग किया जाता है। यह विधि दो तरह से की जाती है।

(1) **कलम** - तना, जड़, मूलवन्त और पत्ती का वह भाग जिसेयदि काटकर अनुकूल माध्यम एवं वातावरण में लगा दिया जाय तो वह नई जड़े और कलिकाएँ उत्पन्न कर पैतृक पौधा बन जाता है, कलम कहलाता है।

इस विधि में प्रयासकिया जाता है कि उस भाग में जड़े शीघ्रता से आ जाएँ। कटे हुए भाग में शीघ्रता से जड़े आने के लिए यह आवश्यक है -

(1) वातावरण का तापक्रम कम हो तथा भूमि का तापक्रम अधिक हो।

(2) वातावरण की वायु नमी अधिक हो।

(3) स्थान छायादार हो।

(4) उचित माध्यम हो अर्थात् जहाँ कलम उगाई जाय उस भूमि में या माध्यम में वायु का परिभ्रमण, अधिकाधिक हो। इसके साथ ही उस माध्यम में नमी स्थिर रह सकें।उचित माध्यम के रूप् में रेत, स्फैग्नम काई तथावर्माक्यूलाइट (जैविक पदार्थ) आदि का उपयोग किया जाता है। अलग - अलग प्रकार की कलमों के लिए अलग-अलग माध्यम का उपयोग किया जाता है।

(5) कलम नवीन हो, जिसकी कैम्बियम क्रियाशील हो तथा संचित खाद्य पदार्थ हो, जिससेकि जड़े सरलता से निकल सकें।

(6) अधिक पुरानी शाखाओं की कलमें नहीं लेनी चाहिए।

(7) शाखा कलम की लम्बाई 10 से 20 सेमी, जिसमें कि 4 या 5 गांठें हो मोटाई पेन्सिल के समान हो (0.05 सेमी) लेनी चाहिए।

(8) कलम लगातेसमय यह ध्यान रखें कि कम सेकम दो गांठें भूमि के अन्दर ओर दो गांठे बाहर हो।

(9) वर्षा ऋतु कलम से पौधा तैयार करने का उत्तम समय है, क्योंकि इसऋतु में वायु की आर्द्रता अधिक रहती है।

तीन तरह की शाखाएंकलम से पौधे तैयार, करने के लिए उपयोग की जाती है, कठोर या काष्ठीय , मध्यम कठोर तथा मुलायम। इनका उपयोग पौधों की प्रकृति के अनुसार किया जाता है। कठोर कलम का उपयोग - अंगूर, गुलाब, गुड़हल आदि में किया जाता है, मध्य कठोर कलम - कनेर, मेंहदी, रातरानी आदि में तथा मुलायम कलम का उपयोग गुहहदाउदी तथा डहेलिया आदि में किया जाता है।

यद्यपि जड़े और पत्तियों से भी कलम की विधि से पौधे तैयार किए जा सकते है, किन्तु इनका उपयोग कम होता है।जड़ कलम विधि से परवल, कुंदरू तथा बेल आदि के पौधे तैयार किए जाते हैं, जबकि ब्रायोफिलम आदिकी पत्तियों से पौधे तैयार किए जा सकते हैं।

(2) **दाब कलम** - मूल वृक्षो की शाखाओं पर ही जडे उत्पन्न होने के पश्चात उस भाग को काटकर भूमि में लगाये जाने की विधि को दाब कलम या लेंयरिग कहते है।

वृक्ष की शाखा जो पेन्सिल की मोटाई की हो के एक भाग में 2.5 सेमी स्थान से छाल अलग कर उस स्थान को मिट्टी या अन्य मिश्रण से ढ़क दिया जाता है तो उस स्थान से जड़े निकल जाती है। तद्पश्चात जड़ सहित उस डाली को काटकर भूमि पर लगा दिया जाता है और पौधा तैयार हो जाता है। टहनी की छाल निकाल देने से फ्लोयम कोशिकाओं द्वारा नीचे जाने वाला खाद्यय पदार्थ उस स्थान पर एकत्रित हो जाता है। और जब ऐसे स्थान पर मिट्टी या नमी युक्त अन्य माध्यम लगा दिया जाता है तो उस स्थान पर जड़े निकल आती है। खाद्य पदार्थो के अलावा हार्मोन का भी नीचे जाना रूक जाता है। और वह कटे हुए स्थान पर इकट्ठा हो जाता है। दाब कलम विधि इन्हीं सिद्धान्त पर आधारित है। जड़े गांठों से निकलती है अतः गांठ वाला भाग मिट्टी या अन्य माध्यम से अवश्य ढ़का हुआ होना चाहिए।

दाब कलम की विधियाँ

1. साधारण दाब - शाखा के एक स्थान पर 2.5 सेमी लम्बी छाल निकालकर उस स्थान को भूमि में दबा दिया जाता है तथा नियमित रूप् से पानी दिया जाता है। शाखा भूमि में दबी रहे इसके लिए उसे भूमि में खूटी गाड़ कर रस्सी से बांध दिया जाता है। ऐसे वृक्षों की नीचली शाखाओं में ही किया जाता है। शाखा को अधिक झुकाने से टूट जाने का भय रहता है। उदाहरण अमरूद, नींबू आदि।
2. मिश्रित या सर्पाकार दाब- शाखा के दो या तीन स्थानों पर 2.5 सेमी लम्बी छाल निकालकर उन स्थानों को मिट्टी से दबा दिया जाता है। दबाये गये स्थानो पर नियमित पानी दिया जाता है। इन स्थानों से जड़े निकल आती है। और इन्हें अलग - अलग काटकर भूमि में लगा दिया जाता है। उदाहरण स्ट्रोबेरी
3. सिरा दाब - इस विधि में शाखा के अग्र भाग से 2.5 सेमी छाल निकालकर उसे मिट्टी में दबा दिया जाता है दबाये हुए स्थान पर नियमित पानी दिया जाता है। उदाहरण सेव, नाशपती आदि।
4. खाई दाब - इस विधि में सम्पूर्ण शाखा को भूमि में दबा दिया जाता है। भूमि में 5 या 10 सेमी गहरा दबाया जाता है। इस शाखा को कई स्थानों में भूमि में खूटियां गाड़ कर बांध दिया जाता है।जिससे कि वह ऊपर ना उठ सकें। इस शाखा की गाठों में जड़े निकल आती है। उदाहरण अमरूद, सेव, चेरी।
5. ढेरी दाब - इस विधि में वृक्षों को भूमि की सतह से काट दिया जाता है। ऐसा करने से वृक्ष से अनेक छोटी छोटी शाखाएं निकलती है। इन शाखाओं को मिट्टी में दबा दिया जाता है। इन शाखाओं में जड़े निकल जाती है। और पौधा तैयार हो जाता है। इस विधि को स्टूलिंग विधि भी कहते है। इसमे वृक्ष को हानि पहुचंती है। उदाहरण लीची, अमरूद, आम आदि।
6. गूठी दाब - यह विधि सर्वाधिक अपनायी जाती है शाखा के एक भाग से 2.5 सेमी छाल निकाल कर उस स्थान पर मिट्टी और खाद्य का मिश्रण या काई लेपटकर तथा पॉलीथिन से ढंककर सुतली से बांध दिया जाता है। कुछ समय बाद जड़े निकल आती है। और शाखा को काटकर भूमि में लगा दिया जाता है। पॉलीथिन के स्थान पर कले का पत्ता या बोरा लेपटा जा सकता है। किन्तु इसमें पानी सिंचने की आवश्यकता होती है। उदाहरण अमरूद, नींबू, गूलाब, लीची आदि।

कलम बंधन या ग्राफ्टेज -

केवेली का उद्यान विश्वकोश के अनुसार ''ग्राफ्टिंग ऐसी क्रिया है जिसके अन्तर्गत एक पौधे के एक भाग या दूसरे पौधे याउसके एक भाग में इस आशय से जोड़ देना कि वह एक पौधे के रूप् में वृद्धि कर सकें और अपने आकार उत्पन्न कर हो सकें।'' तद्नुसार ग्राफ्टिंग की क्रिया तथा उसके कारण परिणाम और महत्व से सम्बन्ध सम्पूर्ण उद्यानकीय कलम बंधन या ग्राफ्टेज कहलाता है। कलम बंधन, पौध प्रदर्शन की वह विधि है जिसके अन्तर्गत एक पौधे के मूलतंत्र को दूसरे पौधे के शाख से जोड़ दिया जाता है और नया पौधा बन जाता है। इस विधि में विशेषता है कि दो पौधों के दो अंग आपस में मिलकर नया पौधा विकसित करते है अर्थात् कलम बंधन की विधि तैयार किये गये पौधे का मूलतंत्र और प्ररोह तंत्र दो अलग अलग पौधे के होते है किन्तु उसके गुण उसी पौधे के होते है जिससे प्ररोह तंत्र बनता है। जैसे यदि देशी आम के पौधों में दशहरी आम पौधे की शाखा या कली जोड़ दी जाये तो पौधा दशहरी का होगा, तथा उसके गुण दशहरी आम की तरह होंगे। खिरनी पौधों में यदि चीकू की शाखा लगा दी जाये तो पौधा चीकू का तैयार होगा और चीकू फल प्राप्त होंगे।

इस विधि में दो स्वतंत्र अंग एक दूसरे से जुड़ते है और इन दोनों का अपना ही महत्व होता है।

मूल वृन्त या मूल काण्ड या स्टॉक - कलम बंधन में जो भाग जड़ों का विकास करता है अर्थात् मूल तंत्र विकसित कतर है उसे मूल वृन्त कहते है। यह छोटे पौधे के रूप् में होता है। तथा कलम बंधन के समय या बाद में इसके तने वाला भाग या प्ररोह तंत्र अलग कर दिया जाता है।

सांकुर डाली या सायन - कलम बंधन में जो भाग तना, पत्ती, पृष्प तथा फल का विकास करता है अर्थात प्ररोह तंत्र विकसित करता है उसे सांकुर डाली या सायन कहते है। यह शाखा के रूप या कली के रूप में होता है। इन्ही कलिकाओं से प्ररोह तंत्र का निर्माण होता है।

इस विधि से तैयार किये गये पौधों से उपरोपित पौधा कलमी पौधा, या ग्राफ्टेंड प्लांट या ग्राफ्ट कहते है। मूल वृन्त और सांकुर डाली के मिलन बिन्दु को देखकर इसकी पहचान की जाती है।

कलम बंधन की सफलता के लिए आवश्यकताएं -

1. मूल काण्ड और सांकुर डाली - एक वंश के होने चाहिए अलग अलग वंश पौधों में ग्रफ्टिंग या बडिंग सफल नहीं होगा। अपवादस्वरूप, कुछ उदाहरण अलग बात है।
2. उचित मूल वृन्त का चुनाव करना चाहिए उचित मूल वृन्त के निम्न लक्षण

   अ एक ही किस्म के बीजों से तैयार किया गया हो अलग अलग किस्म के बीजों से तैयार मूल वृन्त लेने से फल वृक्ष से विभिन्नता आ जाती है।

   ब पूर्णतया विकसित हो अर्थात कम से कम एक वर्ष का होना आवश्यक है जिससे की उसकी जड़े आदि पूर्णतया विकसित होकर भूमि से पोषक तत्व खींच सकें।

   स सक्रिय अवस्था में हो जिससे की आवश्यक वृद्धि तेजी हो सकें। सक्रिय अवस्था से तात्पर्य है उसमें कोशिका घोल या रस का बहाव हो रहा हो ।

   द किसी बीमारी से प्रवाहित ना हो।

   इ ओजस्वी अर्थात तेजी से बढ़ने और फैलने वाला हो।

   फ भूमि और जलवायु के परिवर्तन को सह सकें। अर्थात उसमें कठोरता हो जिससे कि विपरित स्थितियों में वृद्धि कर सकें।

3. उपरोपण या ग्राफ्टिंक के लिए उचित डाली या शाक का चुनाव करें, जिनके निम्न लक्षण है -
   अ एक वर्ष पुरानी शाखा हो इससे अधिक उम्र की शाखा लेने में उसमें केम्बियम सक्रिय नहीं रहती है। काष्ठ की मात्रा अधिक रहती है।
   ब शाखा पूर्णतयाः सुषुप्तावस्था में होनी चाहिए सुषुप्तावस्था से तात्पर्य है कि शाखा में वृद्धि ना हो रही हो इसमें उपस्थित सुप्त कलिकाओं को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है।
   स शाखा सीधी हो टेढ़ी मेढ़ी शाखाओं में चीरा लगाने तथा बांधने में कठिनता होती है और पौधा भी टेढ़ा हो जाता है।
   द अन्य शाखा साथ न लगी हुई हो।
   ई रोग आदि से अक्रमित न हो।
4. कली कायन या बडिंग के लिए उचित कलिका चुने जिसके निम्न लक्षण है -
   अ कलिका ऐसी शाखा से ले जो कि परिपक्त हो और उसमें नई वृद्धि हुई हो।
   ब शाखा के निचले भाग से कलिका ले।
   स कलिका सुषुप्तवस्था में होनी चाहिए बडिंग के पश्चात उसकी वृद्धि हुई हो।
5. उपरोपण चापी में मूल वृन्त और सांकुर डाली एक समान मोटाई की होनी चाहिए जिससे कि उनकी केम्बियम कोशिकाऐं आपस में मिलकर सफल पौधा बना सकें। अन्य विधियों में यह आवश्यक नहीं है।
6. कलम बंधन में मूल काण्ड और सांकुर डाली या कलिका के कटे हुए भाग को आपस में मिलकर अच्छी तरह बांध देना चाहिए। इससे केम्बियम अच्छा रहता है तथा उनमें बीच में हवा तथा पानी नहीं जाने पाता।
7. इस तरह से बांधे हुए स्थान का अर्थात् मिलन बिन्दु को तेज धूप तथा वर्षा से बचाना चाहिए।
8. सांकुर डाली या कलिका उपचार - सांकुर डाली या कलिका में खाद पदार्थ संचित करने की दृष्टि से उपचार किया जाता है। इस उपचार के अन्तर्गत जिस शाखा में सांकुर डाली या कली लेना हो उसकी पत्तियां 10 दिन पूर्व काट देनी चाहिए। ऐसा करने से शाखा की वृद्धि रूक जाती है और उसमें खाद पदार्थ संचित हो जाता है।
9. कलम बंधन द्विबजीपंत्री में ही सफल होता है एक बीज पत्री पौधों में नहीं ऐसा इसलिए होता है।? द्विबीजपत्री में केम्बियम कोशिकाएं अूंगठी के आकार में व्यवस्थित रहती है।

सांकुर डाली का संग्रहण -

स्थानीय रूप मे सांकुर डाली को संग्रहित करने के लिए कम तापक्रम पर अर्थात 32 से 36 थ् पर रखना चाहिए कुछ ही अवधि के लिए यदि संग्रहित करना हो तो गीले बोरे में रखा जा सकता है। दूरस्थ स्थानों में भेजने के लिए या अधिक दिनों तक संग्रहित रखने के लिए (3 से 5 दिनों तक) सांकुर डाली को स्फैगनम मॉस या नारियल के रेशे में लेपटकर या गीला कर पॉलीथिन की थैलियों में बंध कर दिया जाता है। स्फैगनम मॉस के साथ लकड़ी का बुरादा मिला देना अच्छा रहता है। इससे नमी अधिक दिनों बनी रहती है। सांकुर डाली को स्फैगनम मॉस में लेपटने से पहले किसी फफूंद नाशक दवा जैसे कैप्टान या बोर्डो मिश्रण से उपचारित कर लेना चाहिए अर्थात कटे हुए सिरे दवा में डुबो लेना चाहिए।

1. कलिकायन या चस्मा लगाना या मुकुलन - जब सांकुर डाली के रूप् में एक कली का उपयोग कलम बंधन में किया जाता है तो उस विधि को कलिकायन कहते है। इसे कलिका उपरोपण भी कहते है।
2. उपरोपण - जब सांकुर डाली के रूप् में एक टहनी या शाखा जिसमें कई कलिकाएं होती है का उपयोग किया जाता है तो उपरोपण या शाक उपरोपण कहते है।

कलिकायन की विधियां

1. 'टी 'या ढाल कलिकायन - मूल वृन्त के नीचले भाग में जितना की सम्भव हो 3 - 4 सेमी लम्बा चीरा लगाकर चीरे के शीर्ष स्थान पर आडा चीरा लगाये इस तरह चीरा अंग्रेजी के अक्षर टी का आकार बन जायेगा। चीरे के आधार पर आडा चीरा लगाने से उल्टा टी का आकार बन जायेगा। इस तरह छाल को ढीला कर ले इस चीरे के अनुरूप सांकुर डाली से एक कलिका ले और उसका आकार इस तरह बनाये जिससे कि वह चीरा लगाये गये स्थान में ठीक से लग सकें कलिका के अन्दर लगी हुई लकड़ी को अलग कर दे चीरे वाले स्थान पर कलिका को अन्दर करके बाहर से पालीथिन की पट्टीयों का बडिंग टेप या सुतली या केले की पत्तियों से अच्छी तरह बांध दे कलिका अंकुर खुला रहना चाहिए इसी प्रकार जब आई आकार के आकार का चीरा लगाया जाता है तो उसे आई कलिकायन कहते है।
2. पैबन्दी कलिकायन - मूल काण्ड या मूल वृन्त के नीचले भाग से 1.5 से 2.0 सेमी वर्गाकार छाल सावधानी से अलग करें इसी आकार में सांकुर डाली से कलिका अलग करें कलिका को मूल काण्ड के कटे हुए स्थान पर लगा कर पालीथिन की पट्टियों या बडिंग टेप से बांध दें।

   कलिका का अंकुर खुला रहना चाहिए जब मूल वृन्त से छाल उसके चारों से निकाल दी जाती है मात्र एक पतला भाग लगा रहने दिया जाता है तो छाल के ऊपर और नीचे के भाग को जोड़े रहता है। तो इस विधि को वंशी कलिकायन कहते है जब चीरा न लगा कर विप के समान लकड़ी सहित छाल अलग कर दी जाती है। तो उसे चिप्पी कलिकायन कहते है।
3. छल्ला या रिंग कलिकायन - मूल वृन्त के शीर्ष भाग को काट दे तथा कटे हुए भाग से अंगूठी छल्ला के आकार में छाल निकाल दें सांकुर डाली कलिका भी अंगूठी के आकार में तैयार करें। कलिका निकलने में यह ध्यान रखें की कलिका की छाल कटने ना पायें। कलिका युक्त छल्ला इतना मोटा होनाचाहिए कि वह मूल वृन्त में सरलता से पहनाया जा सकें। मूल वृन्त भी अधिक मोटा नहीं होना चाहिए पेन्सिल की मोटाई पर्याप्त होती है। छल्ले को मूल वृन्त पहना दें। इस विधि में बांधने की आवश्यकता नहीं होती है। छल्ला मूल वृन्त में चिपक जाता है।
4. फार्कर्ट कलिकायन - यह विधि पैबन्दी कलिकायन से मिलती जुलती है मूल वृन्त में 2 सेमी चीरे जो की 1/2 सेमी के अन्तर पर हो लगायें इनके शीर्ष पर आडा चीरा लगाकर छाल को नीचे की तरफ लटका दें कलिका को आयताकार के रूप् में तैयार कर लें खुले

हुए स्थान में कलिका रखकर लटकी हुई छाल से ढ़क कर ऊपर से बांध दें। इस तरह पूरी कलिका ढक जायेगी। एक सप्ताह पश्चात् ढकी हुई छाल काटकर अलग कर देनी चाहिए।

उपरोहण की विधियाँ

1. चापी उपरोपण या भेट कलम - इस विधि में मूलवृन्त को गमले या पॉलीथीन की थैलियों में तैयार किया जाता है और जब वहएक वर्ष का हो जाता है, तब उपरोपण किया जाता है सांकुर डाली को वृक्ष से अलग न करें बल्कि मूलवृन्त की मोटाई की शाखा चुनें। मूलवृन्त और चुनी हुई डाली में 3-4 सेमी लम्बा चीरा लगाएँ, जिससे कि कुछ लकड़ी भी काटकर अलग हो जाय। कटाव ढलवादार होना चाहिए। मूलवृन्त को वृक्ष तक ले जाकर तथा दोनों के कटे हुए भाग को मिलाकर सुतली से बांध दे। बांधने में यह ध्यान रखें कि सांकुरडाली टूट न पाए। इस विधि वृक्ष की निचली शाखाअें में अपनाने में सरलता होती है।
2. तराशी उपरोपण - मूलवृन्त को भूमि से 3/4 मी. छोड़कर शीर्ष काट दें और इस कटे हुए स्थान पर ढलावदार 3 सेमी लम्बा चीरा लगाएँ, जिससे कि कुछ लकड़ी भी अलग हो जाये। मूलवृन्त की मोटाई की सांकुरडाली लेकर उसमें भी उसी तरह तथाउतना ही लमबा चीरा लगाएँ और दोनों केटे हुए भागों को मिलाकर बांध सांकुरडाली कम से कम 10 से 15 सेमी लम्बी हो।
3. जीभी उपरोपण - यह विधि तराशी कलम सेमिलजी - जुलती है। तराशी कलम की तरह सांकुरडाली और मूलवृन्त में चीरा लगाएँ।इन चीरों में बीचों - बीच जीभ का आकार दें और दोनों को मिलाकर बांध दें।
4. फन्नी उपरोपण - मूलवृन्त को 3/4 मी. भूमि छोड़कर शीर्ष से काट दें।शीर्ष के स्थन पर अंग्रेजी के अक्षर वी (ट) के आकार का कटाव दें। सांकुरडाली को खूंटे के आकार में इस तरह तैयार करें कि वह 'वी' आकार के कटाव में ठीक से लग सकें और दोनों को मिलाकर बांध दें।
5. काठी उपरोपण - यह फन्नी उपरोपण की उल्टी विधि है। मूलवृन्त को खूंटे की तरह किया जाता है और सांकुरडाली में वी आकार का कटाव बनाया जाता है औरदोनों को मिलाकर बांध दिया जाता है।
6. बगली उपरोपण - मूलवृन्त का शीर्ष नहीं काटा जाता है। मूलवृन्त के मध्य में जो कि भूमि से लगभग 1/2 मी.ऊँचाई पर हो, एक तिरछा कटाव या चीरा लगाएँ। यह कटाव 30 अंश का कोण बनाते हुए 3 सेमी लम्बा होना चाहिए। सांकुरडाली को खूंटे केआकार में तैयार करके इसमें लगा दें और बांध दें। बांधने के लिए ग्राफ्टिंग टेप या सुतली या पॉलीथीन की पट्टियों का उपयोगकियाजा सकता है। यह विधि अत्यन्त ही सरल है।
7. विनियर उपरोपण - इस विधि में मूलवृन्त का शीर्ष नहीं काआ जाता है। बगली उपरोपण की तरह 10 सेमी चीरा या कटाव लगाकर तथा नीचे आड़ा चीरा लगाकर छाल और लकड़ी को अलग कर दें। सांकुरडाली को खूंटे के समान इस तरह तैयार करें कि मूलवृन्त का कआ हुआ भाग पूरी तरह ढका जाए। इन दोनों को मिलाकर बांध दें।

8. छाल उपरोपण - इस विधि में मूलवृन्त की मोटाई 1.5 सेमी से अधिक तथा 10 सेमी से कम होनी चाहिए तथा उसकी छाल सरलता से अलग हो जानी चाहिए। मूलवृन्त के कटे हुए शीर्षसे 2 सेमी मोटी हो सकती है। मूलवृन्त को 1/2 या 1मी. भूमि से छोड़कर काट देना चाहिए।मूलवृन्त के कटे हए शीर्ष स्थान पर दो या तीन-चार स्थानों पर 5 सेमी चौड़ा संकुरडाली की मोटाई के अनुसार चीरा लगाना चाहिए। छाल को ढीला कर लें। संकुरडाली को खूंटी की तरह तैयार कर चीरा लगाएँ गए स्थानों पर लगाएँ तथा छाल से ढककर बांध दें। बांधने के लिए सुतली का उपयोग किया जाता है। बांधने के पश्चात पिघला हुआ उपरोपण मोम लगा दें, जिससे किअन्दर पानी न जा सकें। इस तरह एक ही मुलवृन्त पर तीन या चार संकुर-डालियाँ लगाई जा सकती है। यह विधि पुराने वृक्षों को नया बनाने के लिए उपयोग की जाती है।
9. पौध उपरोपण या बीज पत्रोपकरिक उपरोपण - उपरोपण की तरह इस विधि को जिसके अन्तर्गत एक या डेढ़ माह उम्र के मूलवृन्त (बीज, पौध) का उपयोग किया जाता है। पौध उपरोपण या बीज पत्रोपरिक उपरोपण कहते हैं। बीजपौध में उसकी गुठली लगी रहने के कारण इसे भ्रूण उपरोपण कहते है। इसे शाकीय उपरोपण या नर्स ग्राफ्ंिटक भी कहते है।

इस विधि में पौधे पर तराशी उपरोपण, फन्नी उपरोपण, बगली उपरोपण तथा विनियर उपरोपण की विधि अपनाकार उपरोपण किया जाता है। तराशी और फन्नी उपरोपण की विधि अधिक सरलता देती है। उपरोपण सफल हो जाने के पश्चात पौधे की देखभाल सघन रूप् सेकी जाती है, अन्यथा इनके मरने की सम्भावना अधिक रहती है। तैयार पौधों को अधिक आर्द्रता युक्त वातावरण में रखना आवश्यक है।

उपर्युक्त विधियों के अलावा परिस्थितियों के अनुसार उपरोपण की विधियाँ अपनायी जाती है। ये पौध प्रवर्धन की नहीं, बल्कि वृक्ष सुधार की विधियाँ है। कुछ प्रमुख विधियाँ इस प्रकार है -

1. सेतु उपकरण - वृक्ष के तने की छाल क्षतिग्रस्त हो जाने पर खाद्य सामग्री का स्थानान्तरण ठीक से नहीं हो पाता है। क्षतिग्रस्त स्थल पर सांकुरडाली जोड़कर पुल निर्मित कर दिया जाता है। इसे छाल उपरोपण का परिवर्तित रूप कह सकते हैं।
2. बट्रेसिंग या इनले उपरोपण - यह विधि भेट कलम की रूपान्तरित विधि है, जिसमें क्षतिग्रस्त वृक्ष सांकुरडाली और नवीन पौधा मूलवृन्त माना जाता है। इसे भी सुधार उपरोपण कहते हैं। जब वृक्ष की जड़े क्षतिग्रस्त हो जाती हैं तो वृक्ष के चारों और पौधा लगाकर उन्हें मुख्य तने से जोड़ दिया जाता है।
3. दोहरा यादो तरफा - इस विधि में एक ही पौधें में एक निश्चित समय के अन्तर में दो उत्तरोत्तर कलिकायन या उपरोपण करते हैं।

5.6 सारांश

इनकी उपरोगिता एवं महत्व सर्वविदित है। नीम, सेमल, अशोक आदि को वृक्षों की श्रेणी में रखा गया है। इनमें भी सुरक्षाके लिए, सुगन्ध के लिए, छायादार, सुन्दरता के लिएआदि कार्यों के लिए लगाये जाते हैं। झाड़ियां कई तरह की होती है इनमें चांदनी, चम्पाका, इकजोरा

पार्विफ्लोरा आदि प्रमुख है। एक वर्षीय पौधों में एस्टर बरबीना, फ्लोक्स,नस्ट्रोस्यिम,सालिविया, पैजी, स्वीट विलियम प्रमुख है। आरोही लताओं में वोगनविलिया, लेन-सुस्टा, टिकोमा, ग्रडिफ्लोरा आदि आते है। इनका प्रसारण बीजों, कलमों आदि द्वारा किया जाता है।

5.7 अभ्यास प्रष्न

1. पेड़ की श्रेणी में रखा गया है
   अ नीम ब मिनिआ
   स इरेनथिमम द बरबीना
2. क्यांरियां में उगने वाला पौधा है
   अ रॉयल पॉम ब स्पेथोडिया
   स फ्लाक्स रेट्रूजा द फाइकस रेट्रूजा
3. छायादार पेड़ है।
   अ फाइक्स रेट्रूजा ब स्वीट विलियम
   स बिगोनिया लेनसुस्टा द टिकोमा गे्रन्डिफ्लोरा
4. पांच बड़े पेड़ों के नाम लिखिए।
5. बीजों द्वारा पौधे तैयार करने की विधि लिखिए।

5.8 संदर्भ सामग्री

1. Singh, Ranjit, 1992, *Fruits*, National Book Trust.
2. Katyal, S.L. and Chandha, K.L., 1995, *Vegetable Growing in India*, Oxford and IBH Publishing Company, pp. 157.
3. Bose, T.K., 1985, *Fruits of India : Tropical and Sub-tropical*, Naya Prokash, pp. 637.
4. Singh, S.P., 1989, *Production Technologies of Vegetable Crops*, ARCC, pp. 380.
5. National Horticulture Data Base, National Horticultural Board Agriculture Ministry, Government of India.
6. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.
7. श्रीवास्तव, एस. एस., उद्ययान विज्ञान, 2013, सेंट्रल बुक हाउस, रायपुर.

इकाई 6

आम

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 जलवायु
6.3 भूमि
6.4 व्यवसायिक किस्में
6.5 प्रवर्धन
6.6 वृक्षारोपन
6.7 खाद एवं उर्वरक
6.8 सिंचाई
6.9 निकाई - गुड़ाई
6.10 प्रमुख कीट
6.11 प्रमुख रोग
6.12 फलों की सड़न
6.13 विकार
6.14 तुड़ाई उपरांत प्रौद्योगिकी
6.15 आम के प्रमुख नाशीकीटों व रोगों के समेकित प्रबन्धन के लिए किये जाने वाले कार्य
6.16 सावधानियां
6.17 सारांष
6.18 अभ्यास प्रश्न
6.19 सन्दर्भ ग्रन्थ

6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप यह जान पाएगें

- आम के उत्पादन की उन्नत तकनीक
- आम की उन्नत किस्में
- आम के प्रमुख कीट एवं रोग तथा उनका नियंत्रण

6.1 प्रस्तावना

भारत आम उत्पादन में अग्रणी राष्ट्र है। वर्तमान में निर्यात स्तर की गुणवत्तायुक्त उत्पादन के लक्ष्य की प्राप्ति तथा बागवानी को लाभप्रद व्यवसायबनाने के लिए वैज्ञानिक पद्धति से उन्नत

किस्मों के बागों का स्थापन तथा स्थापित बागों का प्रबन्धन संस्तुत नवीनतम तकनीकी को अपनाकर सुनिश्चित करना अति आवश्यक है।

6.2 जलवायु:

आम की खेती उष्ण कटिबंधीय एवं सम-कटिबंधीय दोनों प्रकार की जलवायु में की जाती है। व्यवसायिक तौर पर समुद्रतल से 600 मीटर की ऊँचाई तक इसकी खेती सफलतापूर्वक की जाती है।

6.3 भूमि:

यद्यपि आम के बागों का स्थापन कई किस्म की भूमि में किया जा सकता है किन्तु अधिक बलुई, पथरीली, क्षारीय तथा जल भराव वाली भूमि में इसे उगाना उपयुक्त नहीं है।

6.4 व्यवसायिक किस्में:

उत्तर भारत	: दशहरी, लगड़ा, चैसा, बाम्बे, ग्रीन, रामकेला
दक्षिण भारत	: नीलम, बैंगलोरा, मालगोवा, बैंगनपल्ली, सुवर्णरेखा
पश्चिम भारत	: अल्फान्जो, केसर, पैरी, गौवा, मनकुराद, जमादार, राजापुरी
पूर्वी भारत	: हिमसागर, फसरी, जरदालू, किशनभोग, गुलाबखास, अश्वनिया

6.5 प्रवर्धन

आम के बीजू पौधे तैयार करने के लिए आम की गुठलियों को जुलाई में बो दिया जाता है। नर्सरी में 8-10 टन प्रति हेक्टेयर के हिसाब से सड़ी गोबर की खाद मिलाना चाहिए। आम के प्रवर्धन की विधियों में से भेंट कलम, वीनियर ग्राफ्टिंग, प्रांकुर कलम तथा बंडिग प्रमुख है। प्रचलित भेंट कलम बंधन में कई कमियां है जिसके कारण इसे प्रोत्साहित नहीं करना चाहिये।

6.6 वृक्षारोपन

वर्षाकाल, आम के पेड़ों को लगाने के लिए सारे देश में उपयुक्त माना गया है। जिन क्षेत्रोंमें वर्षा अधिक होती है वहां आम के बाग वर्षा के अन्त में लगाना चाहिए। लगभग 50 से.मी. व्यास के एक मीटर गहरे गड्ढे मई माह में खोदकर उनमें लगभग 30-40 कि. सड़ी गोबर की खाद प्रति गड्ढ़े मिट्टी में मिलाकर और लगभग 100 ग्रा. क्लोरपाइरीफास पाउडर बुरक कर गड्ढ़ों को तैयार करना चाहिए। गड्ढ़ा खोदने एवं भरने का कार्य मानसून के पहले अवश्य कर लेना चाहिए। गड्ढ़ों की दूरी 10-12 मीटर हो। परन्तु आम्रवाली किस्म के लिए यह दूरी 2.5 - 4.0 मी. होनी चाहिए। बागों में परागी किस्मों को अवश्य लगाना चाहिए - जैसे दशहरी के बाग में बाम्बे ग्रीन।

6.7 खाद एवं उर्वरक

प्रतिवर्ष उम्र के गुणज में 100 ग्राम नाइट्रोजन तथा पोटाश व 50 ग्राम फास्फोरस जुलाई में पेड़ के चारों तरफ तने से 1.5 मी. दूरी पर बनायी गयी नाली में डालना चाहिए। 10 वर्ष के बाद यह मात्रा नहीं बढ़ाई जाती है। इसके अतिरिक्त मृदा की भौतिक एवं रासायनिक दशा में सुधार हेतु 25-30 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद प्रति पौधा डालना उचित पाया गया है। जैविक खेती के

अन्तर्गत 250 ग्रा. एजोस्पीरिलम को 40 कि.ग्रा. गोबर की खाद के साथ मिलाकर जुलाई - अगस्त में थाली में प्रयोग से उत्पादन में आशातीत वृद्धि पायी गई है।

6.8 सिंचाई

बाग लगाने के प्रथम वर्ष पौधों की नियमित सिंचाई करनी चाहिए। जब पोधे फलने लगे तो फल लगने के बाद दो या तीन हल्की सिंचाई करनी चाहिए। यदि नवम्बर व दिसम्बर में मौसम शुष्क है तो हल्की सिंचाई लाभप्रद होगी।

6.9 निकाई - गुड़ाई

बागों को साफ सुथरा रखने के लिए निहाई- गुड़ाई तथा बागों में वर्ष में दो बार गहरी जुताई कर देना चाहिए।

6.10 प्रमुख कीट

1. भुनगा: (इडियोस्कोस क्लाईपीएलिस, इडियोस्कोपस निटीड् यूलस एवं अमरीटोडस एटकिनसोनाई)

इनके बच्चे तथा वयस्क दोनों मुलायम प्ररोहों, पत्तियों तथा फूलों का रस चूसते हैं जिसके प्रभाव से फूल सूखकर गिर जाते हैं। यह एक प्रकार का मीठा रस विसर्जित करते हैं जो पेड़ों की पत्तियों, प्ररोहों आदि पर लग जाता है जिस पर काली फंफुद विकसित होती है। पूरे वृक्ष की पत्तियां काली पड़ जाती है परिणामतः प्रकाश संश्लेषण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

2. गुजिया (डासिका मैंजीफेरी)

इसके बच्चे (निम्फ) तथा मादा वयस्क प्ररोहों, पत्तियों तथा फूलों का रस चूसते हैं। अधिक प्रकोप होने पर इनके रस चूसने के फलस्वरूप पेड़ों के प्ररोह, पत्तियां तथा बौर सूख जाते हैं तथा फल नहीं लगते। यह कीट भी मधु स्राव करता है जिसके ऊपर सूटी मोल्ड विकसित होती है।

3. पुष्पगुच्छ मिज (इरोसोमिया इंडिका)

इसका प्रभाव सबसे पहले पुष्पगुच्छों पर फिर छोटे-छोटे फलों पर और अन्त में नये प्ररोह के अग्र भाग पर होता है। इस कीट से प्रभावित पुष्पगुच्छ व डंठल टेढ़े हो जाते हैं तथा वहां छोटे काले धब्बे दिखायी देते है। प्रभाव से बौर सूख जाते हैं तथा पेड़ों पर फल नहीं लगते हैं।

इसके लार्वा छोटे फलों में घुसकर उसे खाकर खोखला बना देते हैं तथा फल गिर जाते हैं।

4. डासी मक्खी (वैक्ट्रोसेरा) डॉरसैलिस, वै जोनेटस एवं वै. करेक्टस

इस कीट की सूडियां आम के गूदों को खाकर उसे एक सड़े अर्ध-तरल बदबूदार पदार्थ के रूप में परिवर्तित कर देती है। यह कीट आम के निर्यात में बाधक है।

5. जाला बनाने वाला कीट (आरथेगा इवाडूसैलिस)

जाले बनाने वाले कीट की सूंडी अपने लार को रेशम के धागे की तरह उपयोग करके पत्तियों को एक स्थान पर जोड़कर घोसला सा बनाती है। इन्हीं जालों के भीतर रहकर सुडियां डण्ठल को छोड़कर पत्तियों का सारा भाग खा जाती है। कभी - कभी इनका प्रभाव इतना भयानक

देखा गया है कि सारे पेड़ की पत्तियां सूख जाती है और ऐसा लगने लगता है कि पूरा बाग जला दिया गया है।

6. छाल खाने वाली सूंडी (इनडरबेला क्वाड्रिनोटाटा)

यह कीट पुराने व छायादार बागों में अधिक आक्रमण करते हैं। इस कीड़े से प्रभावित पेड़ के तनों और टहनियों पर लम्बे-लम्बे जाले से दिखाई देते हैं जो कि कीड़े द्वारा विसर्जित मल एवं खाये हुए छाल के टुकड़ों से मिलाकर बने होते हैं। सूड़ियां पेड़ की छाल को खाती है तथा बाद में तने व टहनियों में जगह-जगह छेद कर अन्दर सुरंग बना लेती है।

7. तना बेधक (बेटोसेरा रूफोमैक्यूलाटा)

इस कीट की सूडियां तने में नीचे से उपर की और छेद करती है जिसके फलस्वरूप तने एवं मोटी शाखाएं सूख जाती है।

8. शूअ गाल (सिला एपसाइला सिसटेलाटा)

शूट गाल सिला के बच्चे प्ररोहों का रस चूसते हैं जिसमे प्रभाव से पेड़ों के प्ररोहों में नुकीली गांठे बन जाती है जिससे उनमें बौर और फल नहीं लगते हैं।

9. शल्क कीट (क्लोरोपलविनेरिया पालीगोनाटा, एस्पीडियोअस डेसटक्टर, सेरोप्लास्टिस एसपी एवं रस्टोकोकस)

शल्क कीट पौधों की पत्तियों, टहनियों, प्ररोहों, आदि भागों पर पाये जाते हैं और इन भागों का रस चूसते हैं। इनके प्रभाव से पत्तियां पीली पड़ जाती हैं और बाद में सूख कर गिर जाती है। इनका आर्थिक प्रकोप होने पर टहनियां व प्ररोह भी सूख जाते हैं जिससे पौधों की वृद्धि रूक जाती हे और इनकी फल देने की क्षमता क्षीण हो जाती है। इनके द्वारा विसर्जित मधु के कारण पत्ते तथा टहनियां सूटी मोल्ड लगने के कारण काली पड़ जाती है।

6.11 प्रमुख रोग

1. पाउडरी मिल्ड्यू (खर्रा, दहिया) (ओईडियम मैन्जीफेरी)

इस रोग के लक्षण बौरों, पुष्पक्रमों की डंडियों, पत्तियों और नए फलों पर देखे जा सकते हैं। इस रोग का विशेष लक्षण, सफेद कवक चूर्ण के रूप में प्रकट होना है औरउनके उपर अनगिनत कोनिडिया बीजाणु लड़ी में कोनिडियोफोर पर लगे होते हैं।

2. एन्थ्रेकनोज (कॉलिआट्राइकम ग्लीयोस्पोरिआइडिस ग्लोमेरेला सिंगुलाटा)

पंत्तियों, पर्णवृन्तों, टहनियों, मंजरियों और फलों पर यह रोग देखा जा सकता है। पत्तियों की सतह पर पहले गोल या अनियमित भूरे या गहरे भूरे रंग के धब्बे बनते हैं। बाद में पत्तियों पर धब्बे बनते हैं और फिर पूरी टहनी या पर्णवृन्त सलेटी काले रंग की हो जाती है। बौर और खिले फूलों पर छोटे काले धब्बे उभरते है, जो धीरे धीरे फैलते हैं और आपस में जुड़कर फूलों को सुखा देते हैं।

3. गुम्मा रोग (फ्यूजेरियम सबब्लूटिनेन्स)

वानस्पति गुम्मा रोग ज्यादातर नर्सरी पौधों में होता है। प्रभावित पौधों में वानस्पतिक बढ़त विकृत हो जाती है, पर्व संधियां फूल जाती है और पर्व छोटे रह जाते है। ऐसे विकृत

वानस्पतिक गुम्में में पत्तियां छोओी और पतली होती है तथा पौधे के उपरी भाग में गुच्छे का रूप धारण करती है।

पुष्पीय गुम्मे में बौर के मुख्य पर्व छोटे रह जाते हैं तथा पुष्प गुच्छे की गौण शाखाओं की लम्बाई भी कम रह जाती है, जिससे फूल गुच्छों के रूप में दिखते है।

4. उल्टा सूखा रोग (बोंट्रीयोडिप्लोडिया थियोब्रोमी/लेसिओडिपलोडिया थियोब्रोमी)

इसका मुख्य लक्षण है टहनियों का उपर से नीचे की और सूखना तथा इनमें गोद निकलना है। खास तौर पर पुराने पेड़ों में इनके बाद पत्ते सूख जाते हैं जो कि आग से झुलसे हुए से मालूम पड़ते है।

5. फोमा ब्लाइट (फोमा ग्लोमेराटा)

यह रोग आम की पुरानी पत्तियों पर अधिकतर देखा जाता है। शुरूआत में छोओे अनियमितकार पीले भूरे धब्बे बनते हैं जो पूरी पत्तियों पर फैले रहते हैं। जैसे - जैसे ये धब्बे बड़े होते है, आपस में मिलकर बड़ा आकार ले लेते है। पूर्णतया विकसित धब्बों में गहरे भूरे रंग का किनारा होता है और मध्य भाग हल्के भूरे रंग का रहता है।

6. काली फफूंदी (सूटी मोल्ड) (कैपनोडियम मैन्जीफेरी)

इसमें पत्तियों, शाखाओं और फलों पर काली मखमली पपड़ी सी दिखाई पड़ती है। इससे प्रकाश संश्लेषण पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ता है।

7. बैक्टीरियल कैंकर (जैन्थोमोनास कैम्पेस्टिस पैथ वार मैन्जीफेरीइण्डिकी)

यह रोग पत्तियों, पर्णवृन्तों, तनों, टहनियों शाखाओं तथा फलों पर पाया जाता है। प्रारम्भ में संक्रमित सतह पर जलसिक्त धब्बे बनते हैं जो बाद में काले भूरे उभरे से कैंकर बन जाते हैं।

8. रेड रस्ट (लाल रतुआ) (सिफैल्यूरल वाइरेसेन्स)

इसमें पत्तियों, शिरा, पर्णवृन्तों और नयी टहनियों पर काई के बीजाणु बनते हैं जो जंग के धब्बे लाल रंग से प्रतीत होते हैं। प्रारम्भमें ये धब्बे मखमली कुछ हरापन सलेटी रंग लिए होते हैं जो बाद में तांबे के रंग के हो जाते है।

6.12 फलों की सड़न

1. एन्थ्रेकनोज (कालेटोट्राइकम ग्लीयोस्पोरिआइडिस - ग्लोमेरेला सिंगुलाटा)

भंडारित फलों पर काले धब्बे पड़ जाते हैं। प्रारम्भ में ये धब्बे गोल होते हैं जो बाद में बढ़कर बड़े अनियमितकार हो जाते हैं। इस पर गुलाबी फफूंद विकसित होती है।

2. स्टेम एन्ड रॉट (ढ़ेपी विगलन रोग डिपलोडिया नेटेलेन्सिस)

रोग की शुरूआत फल के उस छोर से होती है जहां डंठल लगी होती है। डंठल लगे भाग के पास से फल पर भूरा गोलाकार धब्बा बनना शुरू होकर फल के निचले हिस्से में पहुँचते हुए फल को भूरा, फिर काले रंग का कर देता है।

3. ब्लैक रॉट (काली सड़न) (एस्परजिलस नाईजर)

फलों पर पीले, हल्के सलेटी रंग के अनिमित आकार के धब्बे बनते हैं, जो बाद में काले रंग के हो जाते हैं। काले रंग के धब्बों के उपर फफूंद के बीजाणु दिखाई देते हैं। आम तौर पर फल पर जहां चोट लगी हो वहां यह रोग लगता है।

6.13 विकार

1. ब्लैक टिप/कोयलिया

जैसे ही आम थोड़ा बड़ा होता है इसमें रोग के लक्षण दिखाई देते हैं। फल के निचले हिस्से में पहले निशान दिखाई देता हैं जो धीरे धीरे बढ़ता है, फिर काला पड़ जाता है। फल क वह भाग कड़ा हो जाता है और फल का बढ़ना रूक जाता है।

2. आंतरिक विगलन

सबसे पहले फलों के निचले हिस्से में जलसिक्त सलेटी रंग के धब्बे बन जाते हैं। बाद में यह धब्बे बढ़कर गहरे भूरे रंग के हो जाते हैं। इसमें उत्तक दिखाई देते है, जिसमें सड़न प्रतीत होती है।

6.14 तुड़ाई उपरांत प्रौद्योगिकी

1. परिपक्व फलों की तुड़ाई 8-10 मि.मि. लम्बी डंठल के साथ करनी चाहिये जिससे फलों पर चेप नहीं लगती, साथ ही स्टेम एण्ड रॉट बीमारी भी नहीं लगती। पकने पर फल दाग रहित आकर्षक होते हैं तथा भण्डारण क्षमता 2-3 दिन अधिक हो जाती है। तुड़ाई के समय फलों को चोट व खरोंच न लगने दें तथा मिट्टी के सम्पर्क से बचायें। तुड़ाई प्रातः तथा दोपहर बाद की जानी चाहिए।
2. तुड़ाई के लिए विकसित तुड़ाई यंत्र हारवेस्टर उपयुक्त है। इससे प्रति घण्टे 800-1000 फल तोडक्ष्ऱ जा सकते हैं।
3. फलों का श्रेणीकरण उनकी किस्म, आकार भार, रंग व परिपक्वता के आधार पर करना चाहिये।
4. तुड़ाई के बाद फलों को साफ पानी से धोकर छाया में सुखाने के बाद पेटीबन्दी करनी चाहिये।
5. फलों के पैकिंग हेतु 0.05 प्रतिशत छिद्र युक्त गत्ते के बक्से अधिक उपयुक्त होते है।
6. तुड़ाई के उपरान्त रोगों जैसे एन्थ्रैकनोज, स्टेम एण्ड राट, ब्लैक राट के प्रबन्ध के लिए फलों को 0.05 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम के गुनगने ($52+1^{o}$से) पानी में 5 - 15 मिनट तक डुबोकर रखने के बाद सुखाकर पेटीबन्दी करनी चाहिये।
7. फलों को 750 पी.पी.एम. इथरले ($52+2^{O}$से) सेद्ध के घोल में 5 मिनट तक डुबोकर तदोपरान्त पूर्णतः सुखाकर भण्डारित करें तो सभी फल आकर्षक पीला रंग विकसित कर समान रूप से पकते हैं। इस विधि द्वारा परिपक्वता पूर्व तोड़े गए फलों को भी समान रूप से पकाया जा सकता है।
8. शीत भण्डारण विधि में आम की विभिन्न किस्मों, जैसे दशहरी, मल्लिका एवं आम्रपाली को 120 से लंगड़ा को 14^{0} से तथा चोसा को 80 से तापमान एवं 85-90 प्रतिशत अपेक्षिक आर्द्रता पर 3-4 सप्ताह तक रखा जा सकता है।

9. दशहरी के फलों को 4 प्रतिशत डाई हाइड्रेटेड कैल्सियम क्लोराइड के घोल में 500 मि.मि. वायुमंडल दबाव पर पांच मिनट के लिये उपचाहिरत करके कम तापक्रम (12^0 से) पर 27 दिन तक भण्डारित किया जा सकता है।

6.15 आम के प्रमुख नाशीकीटों व रोगों के समेकित प्रबन्धन के लिए किये जाने वाले कार्य

जनवरी

- बौर निकलने के समय पुष्पगुच्छ, मिज कीट की रोकथाम के लिए फनिट्रोथियान (0.05 प्रतिशत)

  या डायमेथोएट (0.045 प्रतिशत) या मोनोक्रोटोफास (0.04 प्रतिशत) का छिड़काव।
- पाले से बचाव के लिए बागों की सिंचाई एवं नये पौधों को फूस से ढकना चाहिये।
- गुम्मा रोग के नियंत्रण के लिए नई कलिकाओं को तोड़ना चाहिये।

फरवरी

- नीम उत्पाद निम्बीसिडीन (0.02 प्रतिशत का छिड़काव भुनगे के प्रकोप शुरू होने पर करना चाहिये।
- यदि भुनगे का अधिक प्रकोप हो तो कार्बेरिल (0.05 प्रतिशत)या क्वीनालफास (0.05 प्रतिशत) क्लोरपारीफास (0.04 प्रतिशत) या डासमेथोएट (0.0 प्रतिशत) का पानी में घोल बना कर छिड़काव करना चाहिये।
- यदि मिज कीट का प्रकोप दिखाई पड़े तो प्रभावित बौर को काट कर नष्ट कर देना चाहिये।
- गुजिया कीट के लिए लगाई गयी पालीथीन पट्टी को साफ करना। यदि पट्टी के बीच में कहीं दरार खुला हो तो उसे बन्द कर देना चाहिये।
- पिछले वर्ष के गुम्मा बौर तथा पत्तियों को जिस पर खर्रा का प्रकोप हो, को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिये।
- खर्रा/दहिया रोग के नियंत्रण के लिए प्रथम छिड़काव घुलनशील गंधक का 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से करना लाभदायक होता है।

मार्च

- यदि आवश्यता हो तो भुनगा कीट के नियंत्रण के लिए एक और छिड़काव करना चाहिए।
- खर्रा/दहिया रोग केलिए द्वितीय छिड़काव फूल ट्राईडीमार्फ (कैलेक्सीन का 1 मि.ली. /लीटर) पानी में मिलाकर करना।यह छिड़काव फूल खिले के पूर्व करना चाहिए।
- खर्रा के नियंत्रण के लिए तीसरा छिड़काव डाइनोकैप (कैराथेन 1 मि.ली./ली.या ट्रइडीमेफान (बेलेटान 1 ग्राम/ली. पानी में डालकर) करना चाहिये।

अप्रेल

- कलम बांधे गये पौधे की देख रेख तथा पत्ती काटने वाली सूड़ी के नियंत्रण हेतु कार्बेरिल (0.02 प्रतिशत) अथवा मोनोटोफास (0.04 प्रतिशत) का एक छिड़काव लाभदायक होता है।

– फल मक्खी की संख्या जानने एवं उसके नियंत्रण हेतु यौनगन्ध ट्रेप लगाना (मिथाइल यूजिनाल 0.1 प्रतिशत) का घोल चाहिये।
– ब्लासम ब्लाइट या एन्थ्रेक्नोज का प्रकोप होने पर कार्बेन्डाजिम (बाविस्आी 1 ग्राम/ली पानी में डालकर) का छिड़काव। साथ ही रोग से प्रभावित पत्तियों एवं टहनियों को तोड़ कर जला देना चाहिये।
– कोयलिया और आन्तरिक विगलन के नियंत्रण के लिए 1 प्रतिशत बोरेक्स का छिड़काव लाभदायक होता है।

मई

– यदि यौनगन्ध ट्रैप में फलमक्खियों की संख्या बढ़ती हुई पायी जाये तो हर सप्ताह इस माह में भी टैप को लटकाना और दसमें द्रव्य को बदलना चाहिये।
– इस कीट के नियंत्रण के लिए कार्बरिल 0.02 प्रतिशत एवं प्रोटीन हाइड्रोलाइजेट को मिलाकर भी छिड़काव किया जा सकता है।
– कोयलिया और आन्तरिक विगलन के नियंत्रण के लिए 1 प्रतिशत बोरेक्स का छिड़काव करना चाहिये।
– तुड़ाई उपरान्त लगने वाले रोगों से बचाव के लिए दो छिड़काव कार्बेन्डाजिम या थायोफनेट मिथाईल बाविस्टीन या टापसीन एम. 1 ग्राम /लीटर से करना चाहिये।
– काली फफूंदी का प्रकोप होने पर घुलनशील गंधक, मोनोक्रोटोफास तथा गोंद 0.02, 0.05 और 0.03 क्रमशः का मिश्रण बनाकर छिड़काव करना चाहिये।
– बैक्टीरियल कैंकर की संभावना होने पर स्टैप्टोसाइक्लीन 200 पी.पी.एम. 200 मि.ग्रा. /ली. पानी का छिड़काव लाभदायक होता है।,
– खेत की सफाई तथा रोगग्रस्त टहनियों तथा पत्तियों को निकाल कर जला देना चाहिये।

जून

– फलमक्ख्यिों के नियंत्रण हेतु यौनगन्ध टैप से गन्ध द्रव्य को सप्ताहवार बदलना तथा एकत्रित मक्खियों को निकालकर फेंक देना चाहिये।
– प्रभावित फलों को एकत्र कर नष्ट कर देना चाहिये।
– फल मक्खी से प्रभावित गिरे हुए फलों को एकत्र कर नष्ट कर देना चाहिये।
– फलों को समय से तोड़ना चाहिये।
– निर्यात किए जाने वाले आम के फलों को वेपर हीट द्वारा उपचारित करना लाभदायक होता है।
– बैक्टीरियल कैंकर का प्रकोप होने पर स्टेप्टोसाइक्लीन 200 पी.पी.एम. 200 मि.ग्रा/ली. का दूसरा छिड़काव करना चाहिये।

जुलाई

– फलों का समय से जोड़ना
– माह के दूसरे पखवाड़े से शल्क कीट जिसका अधिक प्रभाव होता है, कि नियंत्रण के लिए मोनोक्रोटोफास 0.04 प्रतिशत या डायमेथोएट 0.06 प्रतिशत में किसी भी एक दवा का

पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। यदि कीट का प्रभाव फिर भी रहता है तो दूसरी दवा बदल कर छिड़काव करें।

- प्ररोह भेदक से प्रभावित प्ररोहो को काट कर कीड़े सहित नष्ट कर दें। आवश्यता हो तो कीटनाशक रसायन की छिड़काव उसी प्रकार करें जैसा कि अप्रेल माह में बताया जा चुका है। यह प्ररोह भेदक एवं पत्ती काटने वाली सूड़ियों दोनों को नियंत्रित करेगा।
- फलों की तुड़ाई समाप्त होने के उपरान्त रेड रस्ट तथा एन्थेकनोज के नियंत्रण के लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का 0.3 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।
- नर्सरी क्यारी में सड़न फफूंद की रोकथाम के लिए नर्सरी की मिट्टी को फारमलडिहाइड से उपचारित करना चाहिये।
- गुठलियों को बोने से पूर्व थीरम अथवा कैप्टन के घोल में 0.3 प्रतिशत 5 मिनट डुबोकर उपारित करना चाहिये।

अगस्त

- तराई वाले क्षेत्रों में आम के मुख्य कीट शूट गाल सिला से बचने के लिए 15 अगस्त के आस पास किसी एक कीटनाशी जैसे क्वीनालफास 0.05 प्रतिशत या मोनोक्रोटोफाश 0.05 प्रतिशत या डायमेथोएट 0.06 प्रतिशत का पहला छिड़काव करना लाभदायक होता है।
- जाला बनाने वाले कीट का प्रकोप होते ही प्रभावित टहनियों को काट कर नष्ट करना।
- यदि प्रकोप अधिक हो तो आवश्यकता होने पर कीटनाशकों जैसे कार्बरिल 0.05 प्रतिशत या मोनोक्रोटाफास 0.04 प्रतिशत या क्वीनालफास .05 प्रतिशत में से किसी भी एक दवा का छिड़काव उपयोगी होता है।
- रेड रस्ट तथा एन्थ्रेक्नोज के नियंत्रण के लिए कॉपर आक्सीक्लोराइड का 0.03 प्रतिशत की दर से मिट्टी को भिगों कर उपचारित करना चाहिये।
- नर्सरी से पानी के निकास की अच्छी व्यवस्था रखनी चाहिये।
- रेड रस्ट या एन्थ्रेक्नोज का अधिक प्रकोप होने पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का एक और छिड़काव उपयोगी होता है।

अक्टूबर

- शूट गाल सिला एवं जाला बनाने वाले कीटों से प्रभावित शाखाओं की छटाई कर उन्हें नष्ट करना।
- बागों में पानी देना जिससे गुजिया, मिज, फलमक्खी कीटों की वे अवस्थायें जो जमीन के अन्दर रहती है, नष्ट कर देना चाहिये।
- खर - पतवारों को निकाल कर नष्ट करना।
- उल्टा सूखा रोग डाई बैक रोग से ग्रसित टहनियों को नीचे 2-3 इंच हरें हिस्से से काट कर एक छिड़काव कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.03 प्रतिशत का करना चाहिये। यह फोमा ब्लाइट के नियंत्रण के लिए भी लाभकारी है।
- यदि पौधों में गोंद निकलने की समस्या हो तो पौधों की जड़ों के पास 200-400 ग्रा. प्रति वृक्ष कॉपर सल्फेट का प्रयोग करना चाहिये।

– गुम्मा रोग की रोकथाम के लिए नेपथिलिक एसिटिक एसिड 200 पी.पी.एम. का एक छिड़काव दूसरे सप्ताह में कर देना चाहिए।
– आवश्यक पोषण भी पौधों को इस समय देना चाहिए जिससे पौधे स्वस्थ हो तथा उनमें रोग का प्रकोप न हो।

नवम्बर

– उल्टा सूखा रोग तथा फोमा ब्लाइट के नियंत्रण के लिए दूसरा तथा तीसरा छिड़काव कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.03 प्रतिशत का करना चाहिये।

दिसम्बर

– गुजिया कीट को पेड़ पर चढ़ने से रोकने के लिए इस माह के दूसरे - तीसरे सप्ताह में पेड़ के तने के चारों ओर 25 से.मी. चैड़ी 400 गेज मोटी पालीथीन की पट्टी को लपेटकर सुतली से बांध देना चाहिये।
– यदि गुजिया की संख्या अधिक होे तो माह के अन्तिम दिनों में क्लोरपाइरीफास चूर्ण 1.5 प्रतिशत 250 ग्राम/पेड़ की दर से तने के चारों और गुड़ाई कर मिट्टी में मिलाना एवं पॉलीथिन पट्टी के नीचे तने पर भी डालना चाहिये।
– यदि किसी कारणवश उपर्युक्त उपाय समय सेन किया गया हो एवं गुजिया पेड़ पर चढ़ चुकी होतो कीटनाशकों जैसे कार्बरिल 0.02 प्रतिशत या मोनोक्रोटोफास 0.06 प्रतिशत का छिड़काव करना लाभदायक होता है।
– छाल खाने वाले कीटों एवं तनाभेदक कीटों के नियंत्रण के लिए पहले जालों एवं छिद्रों को साफ करना। फिर छिद्रों में मोनोक्रोटोपास 0.05 प्रतिशत कीटनाशक का घोल डालना एवं उन्हें मिट्टी से बन्द कर देना चाहिये।
– यदि पाले के प्रकोप की संभावना हो तो जनवरी माह में बताए गए उपायों द्वारा पाले की रोकथाम करना।
– गुम्मा बौर की रोकथाम के लिए नई बौर कलिकाओं को तोड़ना उपयोगी रहता है।

6.16 सावधानियां

– आम में बौर निकलने पर बराबर बागों में रोगों व कीड़ों की संख्या का आंकलन कर उनके नियंत्रण के लिए उपाय करना चाहिये तथा आवश्यकता होने पर ही कीटनाशकों व फफूंदनाशकों का प्रयोग करना चाहिए।
– कीटनाशी रसायनों का बदल-बदल कर छिड़काव में प्रयोग करना चाहिए।
– जिस समय आम में बौर खिल रहे हो उस समय छिड़काव नहीं किया जाना चाहिए।
– कीटनाशी व फफूंदनाशक रसायनों के स्थान पर अन्य विधाओं को प्राथमिकता देनी चाहिए।
– परभक्षी कीट, परजीवी फफूंद, मकडियां आदि नाशीकीटों की संख्या में कमी लाले में सहायक है। इसलिए इनको नहीं मारना चाहिए।
– सही समय पर सही दवा का सही मात्रा में सही विधि अपनाकर प्रयोग करना चाहिए तथा सिन्थेटिक पाइरोथ्राइड्स का छिड़काव नहीं करना चाहिए।
– बागों में परागण करने वाले कीटों का संरक्षण करें। मधुमक्खियों की कॉलोनी रखें।

– कीट एवं रोगों के नियंत्रा हेतु तीनों छिड़काव में फफूंदीनाशक एवं कीटनाशक दवाओं को मिलाकर छिड़काव कर सकते हैं।
– कॉपर ऑक्सीक्लोराइड अन्य दवाओं के साथ न मिलाये।
– दवा के घोल में साबुन टीपी अवश्य मिलायें जिससे दवा अधिक प्रभावकारी हो।

6.17 सारांश

आम को फलों का राजा कहाँ जाता हैं। यह हमारे राष्ट्र का प्रमुख फल हैं। अलग-अलग राज्यों में आम की विभिन्न प्रजातियाँ प्रचलित है, जिनकी अपनी विशेषताएँ हैं। आम एक महँगा फल है, इसलिए इसकी खेती के समय काफी सावधानियों का ध्यान रखना पड़ता है, अन्यथा किसान को आर्थिक हानि हो सकती हैं। आम में विभिन्न तरह के कीट एवम् रोग पाऐ जाते है, जिनका समय पर नियंत्रण आवश्यक हैं।

6.18 अभ्यास प्रश्न

1. आम के उत्पादन की उन्नत तकनीक समझाइए?
2. आम के मुख्य कीट एवम् उनका नियंत्रण समझाइए?
3. आम के प्रमुख रोग तथा उनका नियंत्रण बताइए?
4. निम्न मे से कौनसी आम की किस्म उत्तर भारत में प्रचलित है?

   (द) दशहरी (ब) लंगड़ा

   (स) रामकेला (द) उपरोक्त सभी
5. निम्न में से कौनसा कीट आम मे पाऐ जाते हैं?

   (अ) गुजिया (ब) डासी मक्खी

   (स) तना बेधक (द) उपरोक्त सभी

6.19 सन्दर्भ ग्रन्थ

22. Singh, Ranjit, Fruits, 1992, National Book Trust.
23. Katyal, S.L.. and Chadha, K.L., Vegetable Growing in India, 1995, Oxford and IBH Publishing Company, pp.157.
24. Bose, T.K., Fruits of India: Tropical and Sub-tropical, 1985, Naya Prokash, pp. 637.
25. Singh, S.P., Production Technologies of Vegetable Crops, 1989, ARCC, pp. 380
26. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.
27. श्रीवास्तव, एस. एस., उद्ययान विज्ञान, 2013, सेंट्रल बुक हाउस, रायपुर.

इकाई 7

अमरूद

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देष्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 भूमि
7.3 जलवायु
7.4 उन्नत किस्में
7.5 प्रवर्धन
7.6 पौध रोपन विधि
7.7 खाद व उर्वरक
7.8 सिंचाई
7.9 कटाई- छटाई और सिंचाई
7.10 अन्तरा-षस्य क्रियाऐ
7.11 फसल नियमन के लाभ
7.12 प्रमुख व्याधियाँ
7.13 प्रमुख कीट - फल मक्खी
7.14 प्रकोप के लक्षण
7.15 उपज
7.16 परिपक्वता एवं फल तुड़ाई
7.17 पेटीबंदी
7.18 सारांश
7.19 अभ्यास प्रश्न
7.20 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.0 उद्देष्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप जान पाएगेंः

- अमरूद के उत्पादन की उन्नत तकनीक
- अमरूद की उन्नत किस्में तथा उनकी विशेषताएँ
- अमरूद की प्रवर्धन, रोपन विधि, खाद व उर्वरक, सिंचाई, आदि
- अमरूद की प्रमुख व्याधियाँ एवम् कीट तथा उनका निवारण

7.1 प्रस्तावना

अमरूद बहुतायत में पाया जाने वाला एक आम फल है तथा यह मिरटेसी (Myrataceae) कुल का है। इसकी बागवानी भारतवर्ष के सभी राज्यों में की जाती है। उत्पादकता, सहनशीलता, जलवायु के प्रति सहिष्णुता के साथ-साथ विटामिन 'सी' की मात्रा की दृष्टि से अन्य फलों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। राजस्थान में अमरूद का कुल क्षेत्रफल 2120 हैक्टर है। उत्पादन 21684 मैट्रिक टन है। जिसमें बून्दी 6129 मैट्रिक टन, कोटा 2206 मैट्रिक टन, सवाई माधोपुर 266 मैट्रिक टन, चित्तोड़गढ़ 2171 मैट्रिक टन उत्पादन करता है। इण्डियन होर्टिकल्चर डाटाबेस 2011। इसमें विटामिन 'सी' प्रचुर मात्रा 150-35मि.ग्रा./100 ग्राम में पाया जाता है। जो सन्तरे से 2-5 गुणा तथा टमाटर से 10 गुणा अधिक होता है। अन्य फलों की अपेक्षा अमरूद कैल्शियम, फास्फोरस व लौह तत्वों का एक बहुत अच्छा स्रोत है। फलों को हरा परिपक्व तथा पक्का जब इसमें सुवास आ जाता है। दोनों ही अवस्थाओं में खाया जाता है। इसका मुख्य रूप से व्यावसायिक उपयोग कई प्रकार के विनिर्मित उत्पाद जैसे जली, जैम, चीज, गूद्दा, जूस, पाउडर, नेक्टर इत्यादि बनाने में किया जाता है।

7.2 भूमि

उष्ण तथा उपोषण कटिबंधीय फलों में अमरूद एक ऐसा विरल फल है। जिसकी बागवानी कम उपजाउ तथा लवणीय परिस्थितियों में भी बहुत कम देखभाल द्वारा आसानी से की जा सकती है। यद्यपि यह 4.5 से 9.5 पी.एच. मान वाली भूमि में पैदा किया जा सकता है। परन्तु इसकी सबसे अच्छी बागवानी दोमट बालू वाली मिट्टी में की जाती है। जिसका पी.एच.मान 5- के मध्य होता है।

7.3 जलवायु

अमरूद विभिन्न प्रकार की जलवायु में आसानी से पैदा किया जा सकता है। हालांकि उष्णता अधिक गर्मी इसे प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है, किन्तु उष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों की अपेक्षा यह स्पष्ट रूप से सर्दी व गर्मी वाले क्षेत्रों में प्रचुर व उच्च गुणवत्तायुक्त फल देता है। इसका पौधा सूखें की दशा से प्रभावित नहीं होता है लेकिन यह पाले से शीघ्र ही प्रभावित हो जाता है।

7.4 उन्नत किस्में

अमरूद की बहुत सी ज्ञात किस्में है किन्तु इलाहाबाद सफेदा और सरदार एल - 49 ही वे प्रमुख किस्में है जो व्यावसायिक दृष्टि से बागवानी के लिए महत्वपूर्ण है।

1) इलाहाबाद सफेदा

इसके पौधे बड़े आकार वाले मध्यम ऊँचाई, घने अधिक फसल देने वाले तथा लम्बी टहनियों वाले होते है। ये सघन चैड़ा व छतरीनुमा आकार बनाते है। यह उच्च कोटि का अमरूद है। इसके फल मध्यम आकार के गोल होते है। इसका छिलका चिकना और चमकदार गूद्दा सफेद

मुलायम स्वाद मीठा तथा सुवास अच्छा बीजों की संख्या कम होती है तथा बीज मुलायम होते है। फलों का भण्डारण क्षमता भी अच्छी होती है।

2) सरदार एल 49

इसके पेड़ उतने उंचे नहीं पर छितरे होने के साथ साथ भारी टहनियों वाले होते हैं। ये अत्यधिक फलन देने वाले होते है तथा इसके फल उच्चकोटि के होते है। फल का आकार बड़ा अण्डाकार व हल्के पीले रंग का होता है। गूदा सफेद बीज मुलायम परन्तु अधिक मात्रा में होता है।

3) पन्त प्रभात

यह पन्तनगर द्वारा चयनित की गयी है। इसकी सीधी वृद्धि व चैड़ी पत्ती वाले पौधे अधिक उत्पादन 100-125 कि.ग्रा. प्रति पौधा देते है। इसके फल गोल आकृति व मध्यम आकार 150-172 ग्राम के चिकनी सतह वाले पीले रंग के होते है, गूदा सफेद मीठा व खूशबूदार होने के साथ-साथ इसका बीज किस्म सरदार के मुकाबले मुलायम और छोटा होता है। विटामिन सी शीत ऋतु में 300 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्रा. फलभार व वर्षा ऋतु में 125 मि.ग्रा. प्रति 100 या फलभार वर्षा ऋतु में 125 मि.ग्रा. 100 ग्राम फलभार होता है । फल का टी.एस.एस. 10.5 से 13.5 ब्रिक्स होता है।

4) अर्का मृदुला

यह आई.आई.एच.आर. बैंगलोर द्वारा इलाहाबाद सफेदा किस्म के बीजू पौधों से चयनित किस्म है। इसके फल चिकने मध्यम आकार 180 - 200 ग्राम गूदा सफेद तथा मीठा टी.एस.एस. 12.5 ब्रिक्स होता है। इसमें पैक्टिन की मात्रा 1.04 प्रतिशत होती है तथा भण्डारन क्षमता अच्छी होती है। इसके अलावा धारीदार, अर्का अमूल्या सीडलैस ग इलाहाबाद सफेदा सफेद जैसे इलाहाबाद सफेदाग कोहिर अमरूद की उन्नत किस्में है।

5) श्वेता

- यह एप्पल कलर से चयनित अमरूद उन्नत प्रजाति है।
- यह अधिक उत्पादकता देने वाली अमरूद की किस्म है, जिसका वृक्ष मध्यम आकार का होता है।
- लगभग 6 वर्ष की अवस्थ में प्रति वृक्ष 90 कि.ग्रा. फल का उत्पादन होता है।
- फल का आकार मध्यम, गोल तथा औसत वजन 225 ग्राम होता है। इसके बीज मुलायम एवं बीजों की संख्या कम होती है।
- इसके फल का रंग हल्का पीलापन लिये हुये सफेद होता है। जिसमें लाल धब्बे होते है। इसका गूदा बर्फीला सफेद होता है।
- फलों का टी.एस.एस. 12.5 से 14.0 ब्रिक्स होता है। इसके 100 ग्राम गूदे में विटामिन सी की मात्रा 300 मिग्रा. होती है।-
- इसकी भण्डारण क्षमता अच्छी होती है।
- फल आकर्षक तथा उच्च पोषक तत्वों वाले होते है।

6) ललित -

- यह एप्पल कलर से चयनित अमरूद की उन्नत प्रजाति है जिसकी अधिक स्वीकार्यता के साथ-साथ अच्छी उत्पादकता है।
- कटाई छंटाई एवं सघन बागवानी के लिए उपयुक्त है।
- लगभग 6 वर्ष की अवस्था वाले वृक्ष सेप्रति पौध प्रति वर्ष 100 कि.ग्रा. फल उत्पादन होता है। यह उत्पादन किसी भी अन्य व्यावसायिक किस्म से ज्यादा होता है।
- फलों का रंग लाल आभायुक्त केसरिया पीला होता है।
- फलों का औसतन वजन 185-200 ग्राम होता है।
- गूदा सख्त तथा गुलाबी रंग का होता है जिसमें मिठास और अम्ल का उपयुक्त मिश्रण होता है।
- टी.एस.एस. 12 ब्रिक्स तथा प्रति 100 ग्राम गूदे में विटामिन सी की मात्रा 250 मिग्रा. होता है।
- ताजे उपभोग एवं परिरक्षण के लिए उपयुक्त
- इस प्रजाति द्वारा निर्मित उत्पादों का रंग एक वर्ष तक बना रहता है।

7.5 प्रवर्धन

अमरूद का प्रवर्धन बीज तथा वानस्पतिक दोनों तरीकों से किया जाता है। बीज से तैयार किये गये पौधों के फलों में आकृति, अकार व गुणवत्ता में भिन्नता आ जाती है। बीजू प्रवर्धन की अपेक्षा वानस्पति प्रवर्धन से अधिक समानता पायी जाती है तथा साथ ही पौधे जल्दी ही फल देना आरम्भ कर देते है। इसलिए वानस्पतिक प्रवर्धन मुख्य रूप से इनार्चिंग, ग्राफटिंग फोरकर्ट चश्मा, लेयरिंग व स्टुलिंग आदि का प्रयोग होता है।

7.6 पौध रोपन विधि

पौधे लगाने के लिए 75X75X75 से.मीत्र अकार के 6X6 मीटर दूरी पर गड्ड़े बना लिये जाते है। इन गड्ड़ों में 20-25 किलों सड़ी हुई गोबर की खाद 1 किलो सिंगल सुपर फास्फेट व 50-100 ग्राम मिथाइल पेराथियान का चूर्ण उपरी मिट्टी में मिलाकर गड्ड़ों को भर देते है। पौधे - लगाने का उचित समय जुलाई - अगस्त है जहां सिंचाई के सुविधा हो वहां फरवरी के अन्त में भी पौधे लगाये जा सकते है।

7.7 खाद व उर्वरक

	मात्रा किलोग्राम प्रति पौधा			
पेड़ की आयु वर्ष में	**गोबर की खाद**	**यूरिया**	**सुपर फास्फेअ**	**म्यूरेट ऑफ पोटाश**
1-3	10-25	0.05-0.25	015-150	0.20-0.40
4-6	25-40	0.30-0.60	0.50-2.00	0.40-0.80
7-10	40-50	0.75-100	2.00	0.80-1.20
10 से अधिक	50	100	2.50	1.20

वर्षा ऋतु वाली फसल के लिए देशी खाद, सुपर फास्फेट, म्यूरेट आफ पोटाश की पूरी मात्रा तथा यूरिया की आधी मात्रा दिसम्बर में तथा बची हुई यूरिया की आधी मात्रा मार्च - अप्रेल

में देनी चाहिए। इसी प्रकार शरद ऋतु की फसल के लिये देशी खाद, सुपर फास्फेट, पोटाश व यूरिया की आधी मात्रा जून तथा शेष यूरिया की मात्रा सितम्बर माह में दे देनी चाहिए। सर्दी की फसल लेना अधिक लाभप्रद है क्योंकि फल मीठे व कीट व्याधि मुक्त होते है।

7.8 सिंचाई

गर्मी में 7-10 दिन में सर्दी में 15-20 दिन के अन्तर में सिंचाई करनी चाहिए।

7.9 कटाई- छटाई और सिंचाई

आरम्भ में सघाई क्रिया पेड़ों के उत्पादन में वृद्धि सुन्दर और मजबूत ढांचा प्रदान करने के लिए की जाती है। प्रारम्भ में यह देखना आवश्यक है कि मुख्य तने तक से लगभग 90 से.मी. तक कोई शाखा न हो। इस ऊँचाई पर मुख्य तने से तीन चार प्रमुख शाखाऐं बढ़ने दी जाती है। इसके बाद प्रति दूसरे या तीसरे साल, उपर से टहनियाँ को काटते रहना चाहिये। जिस पेड़ की ऊँचाई अधिक न बढ़ जाये। यदि जड़ में कोई फुटाव निकले तो इसे भी हमेशा काटते रहना चाहिए।

7.10 अन्तरा-षस्य क्रियाऐ

बाग को हमेशा साफ-सुथरा रखने के लिए अन्तर शस्य क्रियाऐं आवश्यक है। इससे भूमि की भौतिक दशा ठीक रहती है व भूमि की उपरी परत टुटने से मृदा में वायु का आवागमन बना रहता है। साथ ही खरपतवार जो मृदा नमी व पोषक तत्वों का ह्रास करते है पर नियंत्रण किया जा सकता है। नये बाग में खाली पड़े स्थान पर फसल व सब्जियाँ उगाकर अतिरिक्त आय ली जा सकती है।

बरसात के दौरान व दूसरी जाड़े के मौसम में हालांकि बरसात के दौरान व दूसरी जाड़े के मौसम में हालांकि बरसात के दौरान प्राप्त उपज अपेक्षाकृत अधिक होती है। परन्तु फल निम्न गुणवत्ता वाले होते है और इसके अलावा फल छेदक कीट के साथ-साथ बीमारियों को प्रकोप बहुत होता है। अतः व्यवसाय की दृष्टि से बागवानों को केवल जाड़े को ही फसल लेनी चाहिए। इसके अन्तर्गत यूरिया 10 प्रतिशत (100 ग्राम/ली.पानी) इलाहाबाद सरदार सफेद 15 प्रतिशत (150 ग्राम/ली. पानी) सरदार किस्मों में अप्रेल - मई (पुष्पण की अवस्था में) में दो छिड़काव 8 से 10 दिन के अन्तराल पर किया जाता है। इस तकनीक को अपनाने से जाड़े के मौसम में 3-4 गुणा अधिक फसल प्राप्त होती है।

7.11 फसल नियमन के लाभ

1 कम धन खर्च

2 अधिक आर्थिक लाभ

3 फल-मक्खी/भेदक, एन्थ्रेवनोज व फल गलन का प्रभावी आर्थिक नियंत्रण

4 आसानी से अपनाई जाने वाली विधि

5 अच्छी गुणवत्ता वाली अधिक फसल

7.12 प्रमुख व्याधियाँ

उकठा रोग (प्लानी, मुरझान, सुखा या विल्ट): यह रोग बहुत भयावह है और एक बाग में संक्रमण होने से कुछ सालों में पूरा बाग नष्ट हो जाता है। इस बीमारी से शाखाएँ और टहनियाँ एक-एक करके उपरी भाग से सुखने लगती है और नीचे की तरफ सूखती चली जाती है। बाद में पूरा पेड़ सूख जाता है।

उपाय -

1 जैसे ही रोग का लक्षण दिखलाई दे, उस पेड़ को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

2 बाग को साफ सुथरा रखना चाहिए।

3 बाविस्टीन एक ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर 20-30 लीटर घोल प्रति पेड़ या आवश्यकतानुसार भूमि की डेचिंग करने से लाभ होता है।

4 बाग में अधिक पानी न लगने पाये और पानी का निकास भी अच्छा रहे।

5 हरी खाद एवं कार्बनिक खाद का प्रयोग करना उपयोगी होता है।

श्याम वर्ण, फल गलन या टहनी मार - फलों में संक्रमण होने के फलस्वरूप बनते हुए फल छोटे कड़े और काले रंग के होते है। इस रोग के लक्षण प्रायः वर्षा काल में पकते हुए फलों पर अधिक दिखाई पड़ते है। पेड़ों के सिरे से रोगी कोमल शाखायें नीचे की तरफ सूखने लगती है। ऐसी शाखाओं की पत्तियां झड़ने लगती है और उसका रंग भूरा हो जाता है।

रोकथाम - रोग ग्रस्त डालियों को काटकर 0.3 प्रतिशत कॉपर ऑक्सी क्लोराइड या मैन्कोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर 10-15 दिन के अन्तराल छिड़काव करें।

7.13 प्रमुख कीट - फल मक्खी

बरसाती फसल पर इन मक्खियों का प्रकोप अधिक होता है। मादा मक्खी फलों में छेद करके छिलके के नीचे अण्डे देती है

उपचार -

1 मक्खी ग्रसित फलों को प्रतिदिन इकट्ठा करके नष्ट कर दें।

2 जहां तक सम्भव हो बरसाती फसल न लें।

3 शीरा या शक्कर 100 ग्राम को 1 लीटर पानी के घोल में 10 मि.ली. मेलाथियान मिलाकर मिश्रण को 100 मि.ली. की मात्रा में प्रति प्याला प्रति पौधा लटका देवें।

4 मैलाथियान 50 ई.सी. का एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर छिड़काव करें।

छाल भक्षक कीट - यह कीट अमरूद के वृक्ष की छाल को खाता है तथा छिपने के लिये अन्दर डाली में गहराई तक सुरंग बना डालता है जिससे कभी-कभी डाल/शाखा कमजोर पड़ जाती है।

नियंत्रण -

1 संक्रमित शाखाओं में कीट द्वारा बनाये गये छिद्र में डाईक्लोरोवास (नुवान) में डुबोये रूई के फोहों को किसी तार की सहायता से डाल देवे और सुराख को गीली मिट्टी से ढक देवें।

2 एण्डो सल्फान 35 ई.सी. 2 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर शाखाओं /डालियों पर छिड़क देवें।

3 सूखी शाखाओं को काटकर जला देवें।

फल भेदक -

1 अनार तितली

अनार तितली (ड्यूडोरिक्स आइसोक्रेट्स) अनार का प्रमुख नाशी कीट है, किन्तु हाल में इस कीट का प्रकोप उत्तर प्रदेश में अमरूद की पैदावार वाले क्षेत्रों और उत्तर भारत के और दूसरे स्थानों में बढ़ता हुआ पाया गया है। इस नाशी कीट का प्रकोप अमरूद में बरसाती और शीत ऋतु दोनों फसलों में होता है। बैगनी-भूरी सी मादा तितली, एक-एक कर चमकदार, सफेद अण्डे फूलों के कैलिक्स और फलों पर देती है। लार्वे फल को भेदते है और गूदे एवं बीज को खा कर इसे अन्दर से खोखला कर देते हैं ये मजबूत शरीर वाले चपटे, छोटे बालों से ढ़के हुए लगभग 2 से.मी. तक लम्बे होते हैं। पूर्ण विकसित लार्वा बाहर आकर बाहरी छेद के पास या अन्दर ही प्यूपा में परिवर्तित हो जाता है। इस कीट के द्वारा फल खराब हो जाते हैं तथा हानि होती है। कैपरपिलर के अन्दर घुसने और बाहर आने वाले छिद्रों द्वारा विभिन्न रोगाणुओं का संक्रमण भी हो जाता है।

2 कैस्टर कैप्सूल भेदक

यह एक दूसरा बहुभक्षी कीट है जिसके लार्वे अमरूद के फल को हानि पहुंचाते हैं। यह प्राथमिक तौर पर अण्डी का नाशी कीट है। किन्तु अमरूद और दूसरे फलों व वन वृक्षों पर भी आक्रमण करता है और कभी-कभी गम्भीर हानि पहुंचाता है। इस मोथ के लार्वे फल भेदक हैं लेकिन ये कलियों और मुलायम प्ररोहों को भी भेदते हैं। इसके पूर्ण विकसित लार्वे गुलाबी रंग के होते हैं जिस पर छोटे काले धब्बे होते हैं। ये लम्बाई में लगभग 1.5 से.मी. के होते है। लार्वे बढ़ते हुए फल के गूदे और बीजों को खाते हैं, जिससे फल पकने से पहले ही गिर जाते हैं। फल के निचले हिस्से में प्यूपा - कोष्ठ में प्यूपा बनता है। इस नाशी कीट का प्रकोप बरसाती अमरूद में होता है।

7.14 प्रकोप के लक्षण

अमरूद के प्रभावित फल का रूप लार्वे के अन्दर जाने वाले छिद्र के पास से खराब हो जाता है। लार्वे द्वारा छिद्रों से विसर्जित मल निकलता हुआ देखा जा सकता है। ऐसे फल कमजोर हो जाते हैं, सड़ जाते है और अंत में गिर जाते हैं।

प्रबन्ध

अमरूद के बाग के पास अनार का बाग नहीं लगाना चाहिए, क्योंकि यह इस नाशी कीट का सबसे अधिक पसंद का परपोषी है।

ग्रसित फलों को नियमित रूप से एकत्र कर नष्ट करना चाहिए, जिससे इनके प्रकोप को और फैलने और आगे बढ़ने से रोका जा सके।

इस कीट की रोकथाम के लिए फल के मौसम के प्रारम्भ में और फलों के पकने से पहले 0.2 प्रतिशत कार्बेरिल या 0.04 प्रतिशत मोनोक्रोटोफॉक्स या इथौफेन्प्रोक्स 0.05 प्रतिशत कीट नाशी का छिड़काव करना चाहिए। प्रकोप की अधिकता होने पर दुबारा छिड़काव 15 दिनों के

अन्तराल पर किया जा सकता है। अन्तिम छिड़काव के बाद कम से कम 15 दिनों के प्रतीक्षा के बाद ही फलों की तुड़ाई की जानी चाहिए।

जस्ते की कमी - इसकी कमी से पत्तियाँ अत्यधिक छोटी व चर्मिल हो जाती है और उनकी शिराओं के बीच का भाग पीला पड़कर ताम्र हो जाता है। ग्रसित पेड़ों का रूक जाता है और वे उपर से नीचे की और धीरे-धीरे मरने लगते है। फल सख्त होकर सुख कर गिर जाते है।

नियंत्रण - जिंक सल्फेट 6 ग्राम व बुझा हुआ चूना 4 भाग एक लीटर पानी में अलग-अलग घोलकर घोल आपस में मिलाकर अप्रेल व जून माह में छिड़काव करना चाहिए।

7.15 उपज

एक परिपक्व पेड़ से लगभग 40 से 60 किलोग्राम फल प्राप्त हो जाते है।

7.16 परिपक्वता एवं फल तुड़ाई -

फलों की गुणवत्ता एवं भण्डारन क्षमता तुड़ाई के समय उसकी परिपक्वता निर्भर करती है। अतः फलों की तुड़ाई उसके पूर्ण परिपक्व होने पर ही करनी चाहिए, जिससे फलों की उपलब्धता तो बढ़ेगी ही, साथ में किसानों को भी लाभ मिलेगा। उत्तरी भारत में अमरूद की दो सफलें होती है एक वर्षा ऋतु में एवं दूसरी शीत ऋतु में। शीतकालीन फसल के फलों में गुणवत्ता अधिक होती है। फलों की व्यापारिक किस्मों के परिपक्वता मानक स्थापित किए जा चुके हैं, जो फलों के रंग बदलने, विशिष्अ घनत्व, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ, खटाश विटामिन सी आदि की मात्रा पर निर्भर करते हैं। आमतौर पर फूल लगने के लगभग 4-5 महिने में अमरूद के फल पक कर तोड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं। इस समय फल का गहरा हरा रंग पीले-हरे या हल्के पीले रंग में बदल जाता है। परिपक्वता की अवधि किस्म विशेष मौसम के तापमान पर भी निर्भर करती है। तुड़ाई के समय फलों का विशिष्ट घनत्व यदि 1 से कम है, अर्थात् फल पानी में डूब जाते हैं, अर्थात् उनका विशिष्ट घनत्व 1 से उपर है तो वे फल लम्बी दूरी के परिवहन के लिए अधिक उपयुक्त होते हैं, क्योंकि उनकी भण्डारण क्षमता तैरने वाले फलों के अधिक होती है। 1.02 से अधिक वाले फल अपरिपक्व होत हैं।

अमरूद के फल अधिकतर हाथ द्वारा ही तोड़े जाते हैं। वर्षा ऋतु की फसल प्रत्येक दूसरे या तीसरे दिन तोड़ने की आवश्यकता रहती है, जबकि जाड़े की फसल 4-5 दिनों के अंतराल पर तोड़नी चाहिए। यदि फलों को तुरंत ही बाजार में बेचना हो तो उन्हें एक या दो पत्ती के साथ तोड़ना अधिक उपयोगी पाया गया है। फलों को तोड़ते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उनमें किसी प्रकार की खरोंच अथवा चोट न लगे और वे जमीन पर न गिरने पाएं। तथा तोड़े हुए फलों को प्लास्टिक क्रेट में छायादार स्थान पर रखना चाहिए। अपरिपक्व चोटिल एवं व्याधिग्रस्त फलों को छांट कर अलग कर देना चाहिए।

7.17 पेटीबंदी -

फलों के भण्डाण, परिवहन एवं विपणन के लिए पेटी बंदी अति आवश्यक है। साधारण तौर पर फल जूट के बोरों, बांस की टोंकरियों व लकड़ी की पेटी में फलों को रखने से पूर्व यदि पेटी में अखबार की तह लगा दी जाए और कागज की कतरनें रखी जाएं तो फलों को रगड़ से बचाया जा

सकता है। लकड़ी की दिन प्रतिदिन कम होती उपलब्धता के कारण फलों की पेटीबंदी हेतु वैकल्पिक व्यवस्था की आवश्यकता महसूस की गई। इस संदर्भ में गत्ते की पेटियां (सी.एफ.बी. बक्से) अमरूद के फलों को पैक करने के लिए उचित पायी गयी हैं। इन पेटियों में 0.5 प्रतिशत छिद्र वायु संचार के लिए उपयुक्त होते हैं। प्रत्येक फल को अखबारी कागज में लपेट कर (यूनीपैक) भी पैटीबंदी की जा सकती है, जिससे फल एक दूसरे से रगड़ न खाएं। नए शोधों से ज्ञात होता है कि फलों को 0.5 प्रतिशत छिद्रयुक्त पाॅलीथीन की पैकिंग में भी रखा जा सकता है।

7.18 सारांश

अधिक पोषक महत्व के अलावा अमरूद बिना अधिक संसाधनों के भी हर वर्ष अधिक उत्पादन देता है। जिससे पर्याप्त आर्थिक लाभ मिलता है। इन्हीं सब कारणों से अनेकों किसान अमरूद भी व्यावसायिक बागवानी करने लगे है। इसकी बागवानी अधिक तापमान, गर्म हवा, वर्षो, लवणीय या कमजोर मृदा कम जल या जल भराव की दशा से अधिक प्रभावित नहीं होती है, किन्तु लाभदायक फसल प्राप्त करने के लिए समुचित संसाधनों का सही तरीके से उपयोग करना आवश्यक है।

7.19 अभ्यास प्रश्न

1. अमरूद की प्रमुख व्याधियाँ तथा उनका नियत्रंण बताइए?
2. अमरूद की पाँच उन्नत किस्मों की विशेषताएँ बताइए?
3. अमरूद में प्रकोप के लक्षण तथा उनका प्रबंध समझाइए?
4. अमरूद के एक परिपक्व पेड़ से लगभग कितने किलोग्राम फल प्राप्त हो जाते हैं?

   (अ) 10-20 कि.गो. (ब) 20-30 कि.ग्रो.

   (स) 40-60 कि.ग्रो. (द) 70-80 कि.ग्रो.
5. निम्न में से कौनसी अमरूद की उन्नत किस्म हैं?

   (अ) श्वेता (ब) ललित

   (स) पन्त प्रभात (द) उपरोक्त सभी

7.20 सन्दर्भ ग्रन्थ

28. Singh, Ranjit, Fruits, 1992, National Book Trust.
29. Katyal, S.L. and Chadha, K.L. Vegetable Growing in India 1995, Oxford and IBH Publishing Company, pp. 157.
30. Bose, T.K., Fruits of India : Tropical and Sub-tropical, 1985, Naya Prokash, pp. 637.
31. Singh, S.P., Production Technologies of Vegetable Crops, 1989, ARCC.

32. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.

इकाई 8

नींबू वर्गीय फल

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 भूमि
8.3 जलवायु
8.4 व्यवसायिक किस्में
8.5 प्रवर्धन
8.6 बाग स्थापना
8.7 सिंचाई
8.8 खाद एवं उर्वरक
8.9 खरपतवर नियंत्रण
8.10 अन्तराषस्य फसलें
8.11 फलो की समस्या
8.12 फलों की तुड़ाई
8.13 उपज
8.14 भण्डारण
8.15 प्रमुख कीट एवं नियंत्रण
8.16 प्रमुख रोग एवं नियंत्रण
8.17 सारांश
8.18 बोध प्रश्न
8.19 सन्दर्भ ग्रन्थ

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पाएगें

- नींबू वर्गीय फलों के उत्पादन की उन्नत तकनीक
- नींबू वर्गीय फसलों की उन्नत किस्में तथा उनकी विषेषताएं
- नींबू वर्गीय फसलों में पोषक तत्वों की सही मात्रा
- इनके कीट एवं रोग तथा उनका रोकथाम

8.1 प्रस्तावना

नींबू वर्गीय फल उपयोग की दृष्टि से महत्वपूर्ण फल है। यह वाणिज्य की दृष्टि से भी अन्तराष्टीय बाजार में महत्वपूर्ण स्थान रखता है, इसका विश्व में उष्ण एवं उपोष्ण क्षेत्रों में 50

से भी अधिक देशों में उत्पादन होता है। क्षेत्रफल एवं उत्पादन के अनुसार भारत में उगाये जाने वाले समस्त फलों मे इनका क्रमशः दूसरा एवं तीसरा स्थान है। वर्तमान समय में इनका उत्पादन 63.26 लाख टन तक पहुंच गया है। भारत में इन फलों की बागवानी मुख्य रूप से महाराष्ट्र आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात, मध्य प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, हरियाण, असम, मेघालय, पश्चिम, मिजोरम, त्रिपुरा, नागालैण्ड, उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखण्ड में की जाती है।

8.2 भूमि:

नींबू वर्गीय फलों की बागवानी सावधानीपूर्वक करनी चाहिए। इनको ऐसी किसी भी मृदा में उगाया जा सकता है, जिसका जल निकास अच्छा होने के साथ-साथ ही उसमें वायु संचार उचित हो तथा जो मूसला जड़ों को उचित गहराई तक जाने में कोई अवरोध उत्पन्न न करें। मृदा की आंतरिक परतों का 2 मीटर की गहराई तक सावधानीपूर्वक अध्ययन कर लेना चाहिए। इसलिए इन फलों के लिए गहरी, उचित जल निकास व वायु संचार वाली मृदा जिसमें 30-200 से.मी. की गहराई तक कोई अवरोध परत उपलबध न हो, उपयुक्त होती है। इसके साथ ही साथ पूरे वर्ष भर आन्तरिक जलस्तर 1.5 मीटर के बीच बने रहने से नींबू वर्गीय फल वृक्ष अधिक वृद्धि करते है, अन्यथा आन्तरिक जल स्तर अधिक ऊपर आ जाने से जड़ सड़ने जैसे रोग की गंभीर समस्या उत्पन्न हो जाती है तथा पौधे सूखने लगते है। नींबू वर्गीय फलों का उत्पादन 6.0 से 8.0 पी.एच. मान तक की भूमियों में लिया जा सकता है।

8.3 जलवायु:

नींबू वर्गीय फल सामान्यतः उपोष्ण जलवायु के है, परन्तु इनका उत्पादन नम उष्ण से शुष्क उष्ण क्षेत्रों में भी हो रहा है। उष्ण जलवायु में उपोष्ण जलवायु की तुलना में उत्पादन कम होता है। इन फलों के लिए मध्यम गर्मी और सर्दी का होना उत्तम रहता है।

8.4 व्यवसायिक किस्में:-

सफल बागवानी हेतु क्षेत्र के अनुसार ही उपयुक्त किस्मों का चयन करना चाहिए। नींबू की उनके विभिन्न वर्गो के अनुसार उपयुक्त किस्में कुछ इस प्रकार है:-

1. संतरा, श्रीनगर, हिल संतरा, नागपुर संतरा
2. नारंगी: मुसम्मी, हैमलिन, पाइन, एपिल, वैलेन्सिया लेट, ब्लड रेड, माल्टा
3. लेमन: पंत लेमन-1, गलगल, नेपाली लम्बा
4. कागजीनींबू: चक्रधर, रसराज, साई शरबती, जयदेवी, विक्रम

8.5 प्रवर्धन:

नींबत वर्गीय फलों का प्रवर्धन कागजी नींबू को छोड़कर मुख्य रूप से कायिक विधियों से ही करते है। बीज प्रवर्धित पौधों में फल देर से आते है, परन्तु वे विपरीत परिस्थितियों के प्रति अधिक सहिष्णु, दीर्घजीवी एवं विषाणु जनिक रोगों से मुक्त होते है। अतः बीजू पौधों को मुख्यतया मूलवृन्तों के रूप में प्रयोग करते है। चूँकि इनके बीजों की भण्डारण क्षमता कम होती है, इसलिए यथाशीघ्र ही उठी हुई क्यारियों में बुवाई कर देनी चाहिए। बुवाई से पहले बीजों को

0.2 प्रतिशत थाईरम (2 ग्राम/लीटर पानी) नामक कवकनाशी से उपचारित कर लेना चाहिए। इससे नर्सरी से जड़ विगलन व आद्र्र विगलन नामक बीमारी नहीं लगती है। बीज की बुआई के लिए बसन्त ऋतु (फरवीर-मार्च) का समय अच्छा रहता है। परन्तु इसके लिए यादहे कि बीज पूरी तरह से पके हुए फल से लिय गये हो ताकि उनका नर्सरी में जमाव अच्छा रहे। इस तहर से तैयार पौधे जब 9-10 से.मी. के हो जाएं तो उन्हें दूसरी क्यारियों में 30x15 से.मी. की दूरी पर रोपित कर देना चाहिए। एक वर्ष में ये पौधे चश्मा बांधने के लिए तैयार हो जाते है। चश्मा बाँधने से पहले उन मूलवृन्तों को जिनकी बढ़वार कम हो तथा पीले पड़ रहे हो, नर्सरी से अलग कर देना चाहिए।

कायिक प्रवर्धन:

कलम द्वारा:

लेमन तथा कागजी नींबू को इस विधि द्वारा प्रवर्धित करते है। इसके लिए 20 से.मी. लम्बी एक वर्ष पुरानी परिपक्व स्वस्थ शाखाओं का चुनाव करना चाहिए। इसके बाद इन कलमों को पहले से तैयार क्यारियों में कुछ इस तरह से रोपित किया जाये तो जडों का फुटा षीघ्र एवं अधिक होता है। इसको रोपने का उचित समय मार्च-अप्रेल व जून-जुलाई होता हैंरोपण के एक माह के अन्दर जड़ें विकसित हो जाती है, इसके बाद इनको किसी अर्ध छाया वाले स्थान पर बनी नर्सरी से स्थानान्तरित करके हल्की सिंचाई कर देते है।

गूटी बांधना:-

लेमन तथा कागजी नींबू को गूटी द्वार तैयार किया जा सकता है। इस विधि में 1 वर्ष पुरानी शाखा पर 2.-25 से.मी. चैड़ी छाल-छल्ले के आकार में निकाली ली जाती है एवं वहां की परत को हटाने के बाद नम मास घास से कस कर एल्काथीन की पट्टी से बांध देते है। गूटी बांधने का उचित समय जून-जुलाई माह है। जड़े भली-भांति विकसित हो जाने के बाद इनको मातृ वृक्ष से अलग कर दिया जाता है। इस तरह से अलग बसन्त ऋतु में पौधे रोपण के लिए तैयार हो जाते है।

चश्मा चढ़ाना:

मीठी नारंगी, संतरा एवं लेमन को व्यावसायिक रूप से 'टी' व ढाल चश्मा द्वारा प्रवर्धित किया जाता है। उत्तरी भारत में चश्मा चढ़ाने का उचित समय मार्च-अप्रेल एवं अगस्त-सितम्बर माह है। इस विधि में 1-2 वर्ष पुराने मूलवृंत पर लगभग 3 से.मी. लम्बा चीरा देते है। मातृ वृक्ष से कली को 3.0 लम्बे छिलके सहित, जो कि ढाल के आकार का हो, शाखा से अलग कर देते हैं। इसके पश्चात् कली को मूलवृंत में दिये गये चीरे के बीचों-बीच ठीक से बैठा देते हैं। इसके पश्चात् कली के ऊपर और नीचे एल्काथीन से बांध देते हैं। यदि दो सप्ताह तक कली हरी रहे, तो चश्ता सफल समझना चाहिए। इस विधि में पौधे 6-9 महीने में रोपण हेतु तैयार हो जाते हैं।

मूलवृंत का चुनाव:-

पौधे का जीवनकाल, प्रतिकूल, जलवायु के प्रति सहनशीलता, कुल उपज तथा फलों की गुणवत्ता आदि अनेक बातें, मूलवंत की जाति पर निर्भर करती है। भारत में मुख्य रूप से गहरी मृदाओं के लिए जम्भीरी, रंगपुर लाइम आरैर क्लियोपैट्रा मैन्ड्रिन का प्रयोग सर्वाधिक किया जाता है। मध्यम गहरी व उथली मृदाओं के लिए सिट्रेन्ज मूलवृन्त जड़ विगलन व गमोसिस एवं

ट्रिस्टेजा नामक बीमारियों के प्रति सहिष्णु है। इसके साथ ही साथ ट्रायर सिट्रेन्ज एवं ट्राइफोलिएट ओरेन्ज मूलवृंत सिट्रस नेमेटोड के प्रति अच्छी सहिष्णु पाये जाते है, परन्तु ये दोनों मूलवृंत मृदा लवणता एवं सूख जैसी स्थितियों के प्रति संवेदनशील है जब कि अन्य सभी ऐसी परिस्थितियों के प्रति सहिष्णु है।

8.6 बाग स्थापना:

गड्ढों की खुदाई एवं भराई:

प्रायः गड्ढों की खुदाई पौध लगाने से लगभग एक महीने पहले कर लेते है। गड्ढों का आकार 75 घन से.मी. का होना चाहिए। ऊपरी सतह की खुदी हुई मिट्टी में 25-30 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद, 2.0 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट एवं 150 ग्राम फालीडाल धूल मिलाकर गड्ढों को भर देते है। गड्ढे भरत समय मिट्टी को दबाकर 15-20 से.मी. ऊपर तक भरना चाहिए। गड्ढों के भराव के बाद यदि वर्षा नहीं होती तो एक दो सिंचाई कर देनी चाहिए, जिससे गड्ढों की मिट्टी अच्दी तरह से बैठ जाये।

पौध लगाने का समय:

पादप रोपण का उपयुक्त समय जून-जुलाई होता है। जिन क्षेत्रों में वर्षा अधिक होती है, उन क्षेत्रों में पौध लगाने का कार्य वर्षा ऋतु के अंत में करना चाहिए। सिंचाई की अच्छी सुविधा उपलब्ध होने पर पादप रोपण का कार्य बसन्त ऋतु में भी किया जा सकता है।

पौध लगाने की दूरी:

पौध लगाने की दूरी, लगायी जाने वाली जाति, भूमि की उर्वराशक्ति, प्रक्षेत्र प्रबन्ध एवं मूलवृंत पर निर्भर करती है। नींबू वर्गीय फलों की पौध रोपण दूरी निम्न प्रकार से रखी जाती है।

वर्ग का नाम	दूरी (मीटर)	पौधों की संख्या (प्रति है0)
मीठी नारंगी	8x8	156
संतरा	8x8	156
लेमन	5x5	400
कागजी नींबू	5x5	400

पौधा लगाने की विधि:

पिण्डी के आकर के गड्ढे बनाकर उसके मध्य में पिंडी को रखकर अच्दी तरह से दबा देना चाहिए। पौधे को गड्ढे में सीधा रखना चाहिए तथा चश्में का जुड़ाव मृदा तल से लगभग 20 से.मी. ऊपर रखना चाहिए। पौध लगाने के बाद पानी देना आवश्यक है।

8.7 सिंचाई:

सिंचाई जल की मात्रा एवं संख्या, मृदा के प्रकार, पादप एवं फल विकास पर निर्भर करती है। बलुई किस्म की मृदाओं की जल धारण करने की क्षमता कम होती है अतः कम समय के अंतराल पर सिंचाई करनी पड़ती है। चिकिनी मटियार मृदाओं की जल धारण करने की क्षमता अधिक होने के कारण सिंचाई का अंतराल लम्बा होता है। तीव्र वृद्धि, पुष्पन और फल लगते समय जलापूर्ति बाधित नहीं होनी चाहिए, अन्यथा इसके हानिकारक परिणाम सामने आते है। उत्तर

भारत में गर्मियों के महीने (मार्च-जून) में एक सप्ताह के अंतराल पर और जाड़े के महीने में 10-12 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते है। वर्षा ऋतु में यदि अधिक समय तक वर्षा न हो तो 1-2 सिंचाई कर देनीचाहिए।

8.8 खाद एवं उर्वरक:

नींबू वर्गीय फलों का अच्छा उत्पादन करने के लिए संतुलित पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इन फल वृक्षों द्वारा अधिक मात्रा में पोषक तत्व भूमि से लिए जाता है। इसलिए उत्पादन स्थिर बनाये रखने के लिए इन तत्वों को पुनः जमीन में देना आवश्यक होता है।

पोषक तत्वों की मात्रा एवं देने का स्थान:

नींबू वर्गीय फलों को विशेष रूप से नाइट्रोजन एवं पोटेशियम की आवश्यकता होती है। इसके साथ ही साथ उचित मात्रा में सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे जिंक, मैगनीज, लोहा, तांबा एवं बोरान की पूर्ति भी की जानी चाहिए। पोषक तत्वों का संतुलित प्रयोग, उत्पादन एवं फलों की गुणवत्ता को बढ़ाता है, साथ ही साथ फलोत्पादन क्षमता को लम्बे समय के लिए बनाये रखता है अन्यथा सिट्रस डिकलाइन नामक रोग इन फल वृक्षों को बहुत कम समय में ही प्रभावित कर सकती है। इस रोग के कारण कभी-कभी पूरा का पूरा बगीचा सूख जाता है। नींबू वर्गीय फलों के लिए उनके उम्र के अनुसार खाद एवं उर्वरक की मात्रा इस प्रकार है:-

खाद एवं पोषक तत्वो की मात्रा प्रति वृक्ष

गोबर की खाद (कि0ग्रा0) नाईट्रोजन (ग्राम) फास्फोरस (ग्राम) पोटाश (ग्राम)

1	10	150	50	100
2	20	300	100	200
3	30	450	450	300
4	40	600	200	400
5	50	750	250	500
6	60	900	300	600

खाद एवं उर्वरक प्रयोग का समय एवं प्रयोग विधि:

सड़ी गोबर की खाद व कम्पोस्ट तथा फास्फोरस की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन एवं पोटाश की आधी मात्रा फरवरी-मार्च में फल लगने के बाद अप्रेल-मई में देनी चाहिए। अधिक घुलनशील पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन और पोटाश को पेड़ के फैलाव में छिड़क देने के बाद हल्की गुड़ाई कर थालों में मिला देन चाहिए। फास्फोरस को लेमन तथा कागजी नींबू में मुख्य तने से 60 से.मी. व मीठी नांरगी एवं संतरे में मुख्य तने से 120 से.मी. की दूरी पर 15 से.मी. गहरी और चैड़ी नाली बनाकर डालना चाहिए। प्रयोग के बाद नालियों को मिट्टी से ढक दिया जाता हैं सूक्ष्म तत्वों की आवश्यकता पड़ने पर 2-3 पर्णीय छिड़काव मार्च तथा सितम्बर माह के बीच में करा चाहिए। जब एक से अधिक पोषक तत्वों की कमी के लक्षण दिखाई पड़े तो निम्न उर्वरकों का एक साथ 10 ली. पानी में घोल कर छिड़काव करना चाहिए।

जिंक सल्फेट	50 ग्राम
फेरस सल्फेट	20 ग्राम

मैग्नीशियम सल्फेट	20 ग्राम
मैगंनीज सल्फेट	20 ग्राम
बोरिक एसिड	10 ग्राम
यूरिया	100 ग्राम
चूना	60 ग्राम

जिन क्षेत्रों में जिंक की कमी एक गंभीर समस्या है उन क्षेत्रों में मुख्य पोषक तत्वों के साथ जिंक सल्फेट 100 ग्राम प्रति वृक्ष की दर से थालों में मिला देना चाहिए।

8.9 खरपतवर नियंत्रण:

खरपतवार नियंत्रण के लिए एकीकृत तरीका अपनाना चाहिए। सितम्बर माह में हल्की जुताई के बाद ग्लाइफोसेट 1.0 कि.ग्रा. क्रियाशील पदार्थ प्रति हेक्टेयर और एक निराई, खरपतवार को 90 दिनों तक अच्छी तरह से नियंत्रण में रखती है।

8.10 अन्तराषस्य फसलें:-

पौध लगाने के शुरू के वर्षो तक अन्तराशस्य फसलें ली जा सकती है। अन्तराशस्य फसलों में मुख्यतया दलहनी फसलों के लगाने से खरपतवार की वृद्धि रूक जाती है एवं भूमि की उर्वराशक्ति भी बढ़ जाती है। अन्तराशस्य फसलों से अतिरिक्त लाभ भी प्राप्त होता है। मुख्य अन्तराशस्य फसलें इस प्रकार है :-

दलहनी फसलें	:	उड़द, मूंग, मटर, चना, मूँगफली एवं सोयाबीन
सब्जियाँ	:	गाजर, टमाटर, प्याज, आलू, मिर्च एवं पत्तागोभी
कंद वाली फसलें	:	अदरक, हल्दी

8.11 फलो की समस्या

फलों के गिरने की समस्या:

नींबू वर्गीय फलों का अपरिपक्व अवस्था में गिर जाना एक गंभीर समस्या है, इसकी निम्न अवस्थाऐं है - (1) पहली अवस्था में फल लगने के एक माह तक फल गिरते है। (2) दूसरी अवस्था में फल मई-जून में गिरते है। (3) तीसरी अवस्था में फलों की तुड़ाई से कुछ दिन पहले फल गिरते है, जिस तुड़ाई पूर्व फल पतन कहते है। इस समस्या से निजात पाने के लिए 2.4-डी (10 पी.पी.एम.) के घोल का तीन बार छिड़काव क्रमशः फूल आने के समय, फल लगने के 15 दिन बाद एवं फल तुड़ाई से दो महा पूर्व करना चाहिए। इससे फल कम गिरते है एवं फल उपज में लगभगब 35 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है। कभी-कभी फल कवक जनित रोगो के कारण भी गिरते है, इसकी रोकथाम के लिए अगस्त महा में ब्लाईटाक्स (0.3 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए एवं इसके तीन सप्ताह बाद फिर से इसका छिड़काव करना चाहिए।

फलों का फटना:

लेमन में फलों के फटने की समस्या अधिक है, कभी-कभी क्षति 45 प्रतिशत तक भी पहुंच जाती है। इसकी रोकथाम के लिए बाग में फल लगने के बाद एक सी नमी बनाये रखनें

तथा आवश्यकता पड़ने पर जिब्रेलिक अम्ल (10 पी.पी.एम.) या पोटेशियम सल्फेट 4 प्रतिशत के तीन छिड़काव करें।

8.12 फलों की तुड़ाई:

नींबू वर्गीय फलों की तुड़ाई उचित परिपक्वता पर ही करनीचाहिए, अन्यथा इनके फल तुड़ाई के बाद नहीं पकते है। फलों में जब किस्म के अनुसार रंग, सुवास व मिठास विकसित होने लेगे तो उसकी तुड़ाई प्रारम्भ कर देनी चाहिए। कागजी, नींबू के फल अपना उचित आकार विकसित कर लें तो उन्हें हरी अवस्था में भी तोड़ सकते है, क्योंकि इनके फल भण्डारण में पीला रंग विकसित कर लेते है। नींबू वर्गीय फलों मे पुष्पन के लगभग 8-9 महीने में संतरे तथा मीठी नारंगी के फल पक कर तैयार हो जाते है, जबकि लेमन तथा कागजी नींबू 5-6 माह में पककर तैयार हो जाते है।

8.13 उपज:

नींबू वर्गीय फल वृक्ष 4-5 वर्ष में फल देना आरम्भ कर देते है, उचित देख-रेख की स्थिति में 500-600 फल मीठी नांरगी के एक पेड़ से प्राप्त हो सकते है। संतरे के एक पेड़ से 1000 से 1500 तक फलों की पैदावार होती है। कागजी नींबू और लेमन में क्रमशः 1000-1500 और 600 फल प्रति पेड़ उपज प्राप्त होती है।

8.14 भण्डारण :

नींबू वर्गीय फलों को निम्नलिखित सारणी में दिये गये तापमान एवं सापेक्ष आर्द्रता पर अधिक समय के लिए भण्डारित किया जा सकता है।

वर्ग	तापमान (डिग्री सैल्स्यिस)	सापेक्षआद्र्रता(%)	भण्डारणअवधि (महीनों में)
मीठी नारंगी	6-6.5	85-90	4-4.25
संतरा	4.4	85-90	4-4.25
लेमन	7.2	85-90	2-3.0
कागजी नींबू	10	85-90	1.5-2.0

8.15 प्रमुख कीट एवं नियंत्रण:

नींबू वर्गीय फलों का उत्पादन एवं उत्पादकता विभिन्न कीटों के कारण सीमित हो रही है, इसमें नींबू का माहू एवं सिट्रस सिला कीट प्रमुख है। ये कीट सभी नींबू वर्गीय फल उत्पादक क्षेत्रों में प्रभावी है।

1. नींबू का माहू :

यह कीट नयी पत्तियों एवं पुष्पों का रस चूसते है। ये एक विशेष प्रकार का मधु द्रव भी स्त्रावित करते है। जो पत्तियों पर एक परत के रूप मं जमा हो जाता है। ये दिसम्बर से मार्च

तक अधिक सक्रिय रहते है। इसके नियंत्रण के लिए 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मेटासिस्टाक्स का घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

2. सिट्रस सिला:

कीट के शिशु और वयस्क नयी पत्तियों का रस चूसते है। इससे प्रभावित फल वृक्षों के पुष्प गिर जाते है। और फल कम लगते है। यह कीट भी मधु द्रव स्त्रावित करता है, जिस पर सूटी मोल्ड नामक कवक फैलती है। यह कीट ''सिट्रस ग्रीनिंग'' नामक जीवाणु का प्रसारण भी एक बाग से दूसरे बाग में करता है। रोगोर का 2 मि.ली./ली पानी की दर से छिड़काव नयी बढ़वार पर करना चाहिए और दूसरा छिड़काव 15 दिन बाद करना चाहिए।

3. व्हाइट फ्लाई (सफेद मक्खी):

इस कीट के शिशु एवं वयस्क पत्तियों, नई कोपलों तथापुष्प कलिकाओं से रस चूसते है, जिसके फलस्वरूप छोटे फूल व फल गिर जाते है। जुलाई-अगस्त में इस कीट का प्रकोप अधिक होता है। इसके नियंत्रण हेतु अप्रेल के पहले पखवाड़े में मोनोक्रोटोफास 1.5 मि.ली./ली. पानी में, जुलाई के दूसरे पखवाड़े में फास्फोमिडासन 0.7 मि.ली./ ली. पानी में और दिसम्बर के पहले पखवाड़े में फॉसालान 1.5 मि.ली./ली. पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से कीट नियंत्रण हो जाता है।

4. पर्ण सुरंगी:

यह कीट पौधशाला और नये बागों की कोमल, पत्तियों को अत्यधिक हानि पहुंचाता है। इस कीट के शिशु कोमल पत्तियों पर सर्पाकार सुरंग बनाते है। जिससे पत्तियाँ मुड़ जाती है तथा सूख कर गिर जाती है। मोनोक्रोटोफास 1.5 मि.ली. व रोगोर 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर बनाकर एक सप्ताह के अंतर पर छिड़काव करना चाहिए। कीटनाशकों का छिड़काव नयी वृद्धि पर करना प्रभावी रहता है।

5. लेमन की तितली:

यह कीट पूरे वर्ष भर सक्रिय रहता है एवंकीट के गिडार द्वारा पत्तियों को खाने से पौधा पर्णहीन हो जाता है। यह कीट पौधशाला में अधिक हांनि करता है। अधिक प्रभाव होने पर मोनोक्रोटोफास 1.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर पर्णीय छिड़काव उपयोगी रहता है।

6. फलसूचक पतंगा:

इस कीट के वयस्क पके फलों में छेद करके रस चूसते है। बाद में इस स्थान पर कवक या जीवाणु का अतिक्रमण होने से फल सड़ने लगते है एवं बाद में गिर जाते है। इसके नियंत्रण हेतु गिरे हुए फलों को तुरन्त इकट्ठा करे जमीन में गाड़ देना चाहिए। विषाक्त भोजन (15 ग्राम लेड आर्सिनेट+1 क्रि.ग्रा. गुड का शीरा+5 ली. पानी+थोड़ा सिरका) द्वारा भी इनको नियंत्रित किया जा सकता है।

7. सूत्रकृमि (नेमेटोड) :

नींबू नेमेटोड देश के लगभग सभी भागों में पाया जाता है। यह धीरे-धीरे फैलने वाला पश्चमारी सूखा रोग फैलाता है। इसके संक्रमण से पौधों की बढ़वार कम होती है। उत्पादन कम हो जाता है तथा संक्रमण अधिक होने पर पौधे मर भी जाते है। प्रभावित पेड़ों की पत्तियों पीली पड़ने

लगती है, टहनियाँ सूखने लगती है तथा फल समय से पूर्व ही पक जाते है। इससे बचाव के लिए प्रतिरोधी मूलवृंत जैसे ट्राइफोलिएट ओरेन्ज का प्रयोग करना चाहिए। गेंदा को अन्तराशस्य के रूप में प्रयोग करने से नेमेटोड की संख्या बढ़ती नहीं है। इसके साथ ही साथ यदि आवश्यक हो तो थीमेट 10 जी (4 कि.ग्रा./है.) को मिट्टी में मिला देना चाहिए ।

8.16 प्रमुख रोग एवं नियंत्रण:

1. फाइटोफ्थोरा जड़ विगलन/गमोसिस:

यह रोग फाइटोफ्थोरा सिट्रोफ्थोरा, फाइटोफ्थोरा पैरासिटिका और फाइटोफ्थोरा निकोटिनी द्वारा फैलता है। पेड़ के प्रभावित भागों पर भूरे रंग के धब्बे बन जाते है, जिससे काफी मात्रा में गोंद जैसा पदार्थ निकलता है। इसके प्रकोप से जड़ें सूख जाती है, जिससे पौधे की शाखायें सूखने लगती है। यह कवक फलों को भी प्रभावित करता है, जिसे फल विगलन कहते है। भारी मिट्टी जिसमें जल निकास की सुव्यवस्था नहीं होती है, इसके फैलाव में सहायक सिद्ध होती है। अतः अच्छी जल निकास वाली मृदाओं में ही नींबू वर्गीय फल वृक्षों को लगाना चाहिए। प्रकोप की अवस्था में प्रभावित भाग को खुरच कर 10 प्रतिशत बॉर्डेक्स पेस्ट लगा देना चाहिए एवं 200 ग्राम कैप्टान को 100 ली. पानी में घोल कर जड़ों में भी डाल देना चाहिए।आवश्यकता पड़ने पर का ॅपर आक्सी क्लोराइड 300 ग्राम को 100 लीटर पानी में घोल कर फल वृक्षों पर छिड़काव करना चाहिए।

2. कैंकर:

यह रोग अत्यधिक रूप से कागजी नींबू को प्रभावित करता है। यह एक जीवाणु जनित रोग है। इसके लक्षण पत्तियों एवं फलों परगहरे भूरे रंग के धब्बों के रूप में दिखाई पड़ते है। इसके नियंत्रण हेतु 1 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन को 10 ली. पानी मंे घोल बनाकर 15 दिन के अंतराल पर वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होते ही छिड़काव करना चाहिए। ब्लाइटोक्स-50 का 0.25 प्रतिशत छिड़काव 15 दिन के अंतराल पर करना चाहिए।

3. ट्रिस्टेजा विषाणु:

इस रोग के कारण पेड़ की पत्तियाँ गिरने लगती है, टहनियाँ ऊपर से सूखने लगती है एवं जड़ें सड़ने लगती है। प्रभावित पेड़ों पर पुष्प कलिकायें अधिक संख्या में आती है और वृक्ष फूलों से लदकर सूख जाते है। इस रोग का प्रसार प्रभावित मूलवृन्त, सांकुर डाली एवं माहू (टोक्सोप्टेरा सिट्रीसिडा) से हो सकता है। इस रोग का नियंत्रण रासायनिक विधियों से संभव नहीं है। इसका नियंत्रण इस प्रकार हो सकता है-

1. स्वस्थ और प्रमाणित सांकुर डाली का प्रयोग कलिकायन हेतु करना।
2. प्रतिरोधी मूलवृन्तों जैसे - ट्राइफोलिएट ओरेन्ज, जट्टी-खट्टी, रंगपुर लाइम एवं क्लिओप्टेरा संतरा आदि का प्रयोग करना चाहिए।
3. न्यूसेलर सीडलिंग का प्रयोग करना चाहिए।
4. माहू का उचित समय पर नियंत्रण करना चाहिए।

5. ट्रिस्टेजा के क्षीण प्रभेदों द्वारा प्रति संरक्षित पौध के उपयोग से तीव्र विषाणु प्रभेदों के प्रकोप से बचाया जा सकता है।

4. हरितन रोग:

यह रोग एक जीवाणु जनित रोग है जो कि सिट्रस सिला नामक कीट द्वारा फैलाया जाता है। यह रोग मुख्य रूप से मीठी नांरगी, कागजी नींबू एवं संतरा को अधिक प्रभावित करता है। इससे प्रभावित पत्तियां छोटी, सीधी और जिंक की कमी के समान पीलापन लिए हुए होती है। प्रभावित पत्तियों के शिरों का मध्य भाग पीला एवं शिरायें हरी बनी रहती है। इसके साथ ही साथ पत्तियों के पीले भाग पर हरे धब्बे भी पाये जाते है। इससे बचाव के लिए पौधों को नष्ट कर देना चाहिए तथा सिला कीट का नियंत्रण करना चाहिए। ग्रसित पौधों पर टेट्रासाइक्लिन (500 मि.ग्रा./ली.) का छिड़काव भी किया जा सकता है।

5. स्ट्रिस डिकलाइन:

यह रोग कई कारकों का मिलाजुला प्रभाव है। इसके मुख्य कारक है - पोषण की कमी (मुख्यतया सूक्ष्म पोषक तत्व), फाइटोफ्थोरा फुट रॉट, ट्रिस्टेजा विषाणु, हरितन रोग, कीट का प्रकोप, कैंकर का प्रकोप, उचित जल निकास का न होना, उचित बाग प्रबन्ध का न होना इत्यादि। इनके प्रभाव से टहनियाँ ऊपर की तरफ से सूखने लगती है तथा उनका विकास बिल्कुल रूक जाता है, फलस्वरूप फल उत्पादन कम हो जाता है। इसकी रोकथाम के निम्न उपाय है:

1. अच्छी जल निकास वाली मृदा का चुनाव।
2. रोग रहित पौधों का चुनाव।
3. प्रतिरोधी मूलवृन्त जैसे - रंगपुर लाइम एवं जड़ी-खट्टी का प्रयोग।
4. कीट, रोग एवं नेमेटोड से बचाव।
5. अनुमोदित खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग।
6. उचित बाग प्रबन्धन।

8.20 सारांश

नीबू वर्गीय फलों में मुख्यतः संतरा, नारंगी, लेमन एवं कागजी नीबू शमिल है। इनकी प्रवर्धन प्रक्रिया बड़ी महत्वपूर्ण है। इनको सही मात्रा में पोषक तत्व देने से तथा कीट एवं रोगों से रोकथाम करने से इसकी उपज बढ़ोतरी संभव है।

8.21 बोध प्रश्न

1. नींबूवर्गीय फलों के उत्पादन की उन्नत तकनीक बताइए?
2. नींबूवर्गीय फलों की प्रवर्धन प्रक्रिया समझाइए?

8.19 सन्दर्भ ग्रन्थ

33. Singh, Ranjit , 1992, Fruits, National Book Trust.
34. Katyal, S.L and Chadha, K.L., 1995 Vegetable Growing in India, Oxford and IBH Publishing Company, pp. 157.

35. Bose, T.K., 1985 Fruits of India : Tropical and Sub-tropical, Naya Prokash, pp. 637
36. Singh, S.P., 1989 Production Technologies of Vegetable Crops, ARCC, PP.380.
37. National Horticulture Data Base, National Horticulture Board Agriculture Ministry, Government of India.
38. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.
39. श्रीवास्तव, एस.एस., उद्ययान विज्ञान, 2013, सेंट्रल बुक हाउस, रायपुर.

इकाई 9

पपीता

इकाई की रूप रेखा

9.0 उद्देष्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 उपयोगिता

9.3 पपीता उत्पादन के मुख्य स्थानः

9.4 जलवायु

9.5 भूमि

9.6 किस्में

9.7 प्रवर्धन

9.8 पॉलिथिन की थैलियों में बीज बुवाई की विधि

9.9 बुवाई के लिए बीज का चुनाव

9.10 खेत की तैयारी व पौध की रोपाई

9.11 लिंग - भेद

9.12 खाद व उर्वरक

9.13 सिंचाई

9.14 फलों का उतारना व उपज

9.15 पेपेन निकालना

9.16 उत्पादन विधि

9.17 पपीते में लगने वाले कीट व नियंत्रण

9.18 बीमारियाँ व उन पर नियंत्रण

9.19 सारांष

9.20 बोध प्रष्न

9.21 संदर्भ ग्रंथ

9.0 उद्देष्य

इस इकाई के पढ़ने के पश्चात आप जान पाऐगें कि

- पपीता उत्पादन की उन्नत तकनीक
- पपीते की उन्नत किस्में
- पपीते की प्रवर्धन की विधि, बुवाई, फूलों में लिंग भेद आदि
- पपीते की खाद व उर्वरक उसके कीट व रोग तथा उनका नियंत्रण

9.1 प्रस्तावना

पपीते का वानस्पतिक नाम कैरिका पपाया ;बंतपबं चंचंलंद्ध है। यह कैरिकेयी कुल का पौधा है। इसका मूल स्थान मैक्सिको रहा है। भारत में सोलहवीं सदी से इसकी खेती का इतिहास मिलता है, किन्तु पपीता सरलता से उगाया जाने वाला तथा कम समय में फल उत्पादन देकर अधिक आमदनी देने वाला फल है। यह सर्वसुलभ एवं अत्यन्त गुणकारी फल है।

9.2 उपयोगिता

इसका फल अत्यन्त स्वादिष्ट तथा पौष्टिक होता है। यह एक औषधीय गुणों वाला फल है। यह विटामिन 'ए' तथा 'सी' का अच्छा स्रोत है। पपीता के सेवन से पाचन शक्ति बढ़ती है तथा कब्ज दूर होती है, जठराग्नि ठीक रहती है, गरिष्ठ पदार्थों को पचाता है। वात एवं कफ प्रधान व्यक्तियों के लिए लाभकारी है। बवासीर के रोगी को अपने आहार में पपीता अवश्य ही शामिल करना चाहिए।यह शुद्धिकरण करने में सहायक होता है। औद्योगिक स्तर पर इसके कच्चे फलों से प्राप्त लेटेक्स से पेपेन नामक औषधि (एंजाइम) बनाया जाता है। अतः पपीता फल के रूप में ताजा सेवन तथा औद्योगिक रूप में पेपेन करने के लिए उगाया जाता है।

9.3 पपीता उत्पादन के मुख्य स्थानः

क्षेत्रफल की दृष्टि से देश में इस फल का पाँचवाँ स्थान माना जाता है। यह एक अल्प आयु (4-5 वर्ष) वाला पौधा होने से इसका निश्चित क्षेत्र ज्ञात नहीं है, परन्तु लगभग 10,000 हैक्टेयर क्षेत्र में इसकी खेती का अनुमान है। बिहार कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, राजस्थान एवं उत्तरप्रदेश इसकी खेती का प्रमुख स्थान हैं। राजस्थान में थोड़ा बहु त सभी जगह तथा जयपुर जिले में विशेषकर जयपुर के आसपास के क्षेत्र आमेर, सांगानेर एवं जयपुर तहसील के गाँवों में इसकी अच्छी खेती होती है। फिर भी इसकी इतनी माँग रहती है कि यहाँ की पूर्ति के लिए जयपुर के बाहर से हैदराबाद, पोरबंदर, आनन्द (गुजरात) से बिक्री हेतु पपीता आता है। वैसे वर्ष भर इसकी माँग रहती है।

9.4 जलवायु

पपीता उष्ण एवं उपोष्ण दोनों ही क्षेत्रों में उगाया जाने वाला फल है। इसके लिए गर्म एवं नम जलवायु अधिक अनुकूल है, परन्तु शीत लहर एवं पाला नुकसानप्रद हैं। इसके लिए खुली धूप से झुलस जाते हैं। अधिक वर्षा वाले स्थानों में इसकी जड़े एवं तना गल जाता है।

9.5 भूमि

पपीते की जड़े मूसला होते हु ए भी काफी नाजुक होती हैं अतः इसके लिए 45 से.मी. गहरी, काफी, भुरभूरी मिट्टी होनी चाहिए तथ जिसमें वायु संचार पर्याप्त रूप में हो सकें। पपीते का तना खोखला होता है। जड़े एवं पौधे की प्रकृति को देखते हु ए जल निकास वाली भूमि होनी चाहिए। पपीते के लिए जैविक तत्वों से सम्पन्न दोमट मिट्टी अच्छी रहती है। कमजोर जमीन में भी खाद एवं उर्वरक देकर इसकी खेती की जा सकती है, परन्तु फलों का उत्पादन एवं गुणवत्ता कम रहती है।

9.6 किस्में

पपीते के पौधे बीज से तैयार होते हैं, अतः अच्छी किस्म के बीज से ही पौध तैयार कर रोपाई की जाती है। इसकी कुल अच्छी किस्मों की विशेषताओं एवं गुणों का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

1. हनी ड्यू

इस किस्म के पौधों की ऊँचाई मध्यम, फल लम्बे बढ़े हुए आकार के, गुदा मुलायम, मीठा तथा अच्छी महंक वाला होता है। फलों में बीज बहुत कम होते हैं। इसे मधु बिन्दु कहते हैं। फल कम ऊँचाई पर लगते हैं। नर पौधों की संख्या कम होती है। राजस्थान के लिए उपर्युक्त किस्म है।

2. कुर्ग हनी ड्यू

यह किस्म भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान के चेताली केन्द्र द्वारा हनी ड्यू किस्म से चयनित कर निकाली गई है। इस किस्म में कोई नर पौधा नहीं होता है। इस किस्म के पौधे या तो उभयलिंगी होते हैं या फिर मादा। फल लगभग बीजरहित तथा उत्तम किस्म के होते हैं। यह किस्म राजस्थान के लिए उपयुक्त है। पौधे कम ऊँचाई के फल मीठे एवं लंबोदर तथा बड़े आकार के होते हैं।

3. वांशिगटन

इस किस्म में ओज बहुत अच्छा होता है। इसके फल अण्डाकार व बड़े होते हैं। बीज बहुत कम होते हैं। गुदा मीठा व महक लिए होता है। पत्तियों के पीटिओल तथा तने बैंगनी रंग लिए होते हैं। यह दक्षिण भारत में होता है।

4. सोलो

यह हवाई द्वीप से लाई गयी सुप्रसिद्ध किस्म है। फल छोटा, कलियाँ दर्शाने वाले गहरी धारीनुमा, गूदा नारंगी पीले रंग का होता है तथा इसकी भण्डारण क्षमता अच्छी है। इस किस्म में केवल मादा एवं उभयलिंगी पौधे प्राप्त होते हैं। यह किस्म दक्षिण भारत की जलवायु में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है।

5. कोयंबटूर - 2 (सी.ओ.2)

यह किस्म कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान संस्थान, कोयम्बटूर द्वारा विकसित की गई है। पौधे मध्यम ऊँचाई के तथा फल हरे व बड़े आकार के होते हैं। यह किस्म पेपेन बनाने के लिए बहुत उपयुक्त है। गूदे का रंग नारंगी तथा खाने में स्वादिष्ट व रसदार होता है।

6. राँची किस्म

यह पेपेन उत्पादन हेतु उपयुक्त किस्म है। इसके अतिरिक्त पपीते की उन्नत खेती के लिए विभिन्न इच्छित गुणों को विकसित करने की दृष्टि से भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा में पपीते की चार उन्नत किस्में विकसित की गई है:

7. **पूसा डेलीशियम -**

इसके पौधे उभयलिंगी और मादा फूल वाले होते हैं, इसमें नर पौधे नहीं होते। पौधों एवं फलों का आकार मध्यम से बड़ा होता है। फल गूदेदार व स्वादिष्ट होते हैं। फल आखिर में गोलाई

लिए हुए लंबी शक्ल का होता है। पकने के बाद फल का रंग नारंगी हो जाता है। इसमें शर्करा की मात्रा अधिक होने से मिठास अधिक होती है। फलों की औसत संख्या 50 प्रति पेड़ होती है।

8. **पूसा मैजेस्टी -**

इस किस्म में अधिकांश मादा फूल होते हैं। फल मध्यम आकार के गोलाकार होते हैं। फलों का गूदा पीला होता है तथा फल लंबे समय तक रखे जा सकते हैं। परिवहन में फल कम खराब होते हैं, इसलिए इनका आसानी से परिवहन किया जा सकता है। यह बीमारियों से प्रतिरोधक है एवं पेपेन निकालने के लिए उपयुक्त किस्म है। पैदावार व गुण दोनों की दृष्टि से यह किस्म अधिक अच्छी है। पकने के बाद फल जल्दी खराब नहीं होते, अतः शहरों से दूर रहने वाले किसान भी इस किस्म को लगा कर अच्छा लाभ ले सकते हैं एवं निर्यात कर देश हेतु विदेशी मुद्रा का अर्जन कर सकते हैं।

9. **पूसा जॉइन्ट -**

इसमें एक मीटर ऊँचाई पर ही फल लगना शुरू हो जाता है। यह भी उभयलिंगी किस्म है। पौधों को तूफान और तेज आँधी में कम नुकसान होता है। यह बड़े आकार के गोलाकार तथा आखिरी भाग नुकीला होता है। यह किस्म पेठा बनाने के लिए काफी उपयुक्त होती है।

10. **पूसा ड्वार्फ -**

यह किस्म पूसा डेलीशियम से गामा किरणें से विकसित की गई है। यह भी उभयलिंगी किस्म है। इसके पौधे कद में छोटे होते हैं तथा अधिक पैदावार देते हैं। फल मध्यम आकार के गोल या अण्डाकार होते हैं। पौधे की ऊँचाई कम होने के कारण तुड़ाई में आसानी रहती है। भूमि की सतह से 25-30 से.मी. की ऊँचाई पर ही इसमें फूल व फल लगते हैं। फल 1-2 किलो वजन के छोटे एवं गोल होते हैं। यह किस्म गृह वाटिका के लिए उपयुक्त है।

9.7 प्रवर्धन -

पपीते में प्रवर्धन बीज द्वार होता है, परन्तु इनके बीजों को सीधा खेत में नहीं लगाकर पहले नर्सरी में लगाते हैं इसलिए पौधे तैयार करने के लिए पौधशाला की अच्छी तरह खुदाई करके खाद मिला कर 3ग 1मीटर आकार की क्यारियाँ बना लेनी चाहिए । 15ग 5 से.मी. की कतार एवं पौधे की दूरी रखते हुए एक से.मी. गहराई पर बीज की बुवाई करें। एक हैक्टेयर के लिए 250 से 500 ग्राम बीज लेना चाहिए। बीज को हल्की मिट्टी की तह से ढँक देते हैं तथा हजारे की फुहार से सिंचाई करते रहते हैं।

बीज बुवाई का उपयुक्त समयमानसून आने के 1-2 माह पूर्व अप्रेल से जून के मध्य का अच्छा रहता है ताकि वर्षा ऋतु में पौध का खेत में रोपन किया जा सके। पौध गर्मियों में तैयार की जाती है अतः धूप तथा लू से पूरा बचाव किया जाना चाहिए। इसके लिए फूस की टाटियाँ या पोलिथीन शीट से इनकी सुरक्षा करें, साथ ही सिंचाई की पूरी व्यवस्था रहनी चाहिए। रोज सुबह-शाम आवश्यकतानुसार झारे से पानी दें। जब पौध 20 से.मी. की हो जाये तो खेतों मेंरोपाई कर दें। इस समय तक पौध दो माह के 4-5 पत्तियों वाले हो जाते हैं।

एक अन्य तरीके में जब पौध 5 से 7 से.मी. बड़े तो उन्हें गमलों व पाॅलीथिन की थैलियों में बदल देना चाहिए तथा 15 से 20 से.मीत्र के हो जाने पर उन्हें खेत में निश्चित स्थान पर लगा देना चाहिए।

9.8 पॉलिथिन की थैलियों में बीज बुवाई की विधि

पॉलीथिन की दोनों तरफ से खुली थैलियों से पौध तैयार करने की विधि प्रचलित है, जो उत्तम साबित हुई है। इसमें 22ग 14 से.मी. आकार की 150 गज मोटाई की थैलियाँ काम में ली जाती हैं। इन थैलियों में एक तिहाई भाग बारीक कम्पोस्ट, एक तिहाई भाग बालू तथा एक तिहाई भाग मिट्टी मिला कर भर दें। फिर इनमें 2-3 बीज एक से.मी. की गहराई पर बो दें और प्रतिदिन पानी देते रहें। जब पौधे तैयार हो जायें तब थैलियों को हटा कर पौधों को सीधा खेत में लगा दें।

9.9 बुवाई के लिए बीज का चुनाव

विश्वस्त स्थान से उन्नत किस्मों के बीज प्राप्त कर बुवाई करें या फिर स्वयं के खेत में एक बार इन उन्नत किस्मों के पौधे तैयार कर लगा लें तथा फिर हर वर्ष इन उन्नत किस्मों के फलों से बीज लेकर नर्सरी तैयार करें। बीज लेते समय निम्नांकित बातों पर ध्यान रखें

1. वांछित शक्ल के बड़े आकार के फल होने चाहिए।
2. इन फलों में गूदा खूब होना चाहिए।
3. फल के बाहर व अंदर के भाग का रंग चमकीला व सुनहरा हो।
4. स्वाद मीठा हो तथा खुशबू भी अच्छी हो।
5. पपीते से निकाले हुए बीजों को पहले छाया में सुखाकर ताजा ही काम लेना उपयुक्त रहता है।

यदि 4-5 साल तक इन्हीं फलों में से पुनः अच्छे फल छाँट कर काम में लें तो स्वयं के पास अच्छी किस्म के बढ़िया बीज हो सकेंगे।

9.10 खेत की तैयारी व पौध की रोपाई

खेत का चुनाव ऐसी जगह करें जहाँ पानी का जमाव नहीं होता हो। जुताई करके अच्छी तरह खेत तैयार कर लें। गर्मी में खेत में हल चला कर धूप में खुला छोड़ देना चाहिए तथा फिर भुरभुरा कर खेत का समतल कर लेना चाहिए। जून के अंतिम सप्ताह में 45ग 45 से.मीत्र आकर के 2ग 1मीटर की दूरी पर गड्ढे खोद कर प्रत्येक गड्ढे में 10 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद 300 ग्राम सुपर फाॅस्फेट व 50 ग्राम क्लोरोपाइरिफास का 1.5 प्रतिशत मिट्टी में मिला कर भर देना चाहिए।

नर्सरी में जब पौधे दो माह के हो जायें तथा लगभग 15-20 से.मी. तक बढ़ जायें तो गड्ढ़ों में रोपाई कर दें। एक गड्ढ़े में तीन पौधे त्रिकोण विधि से लगायें। पौधे लगाने के बाद हल्का पानी देना बहुत आवश्यक है। पौधों की रोपाई शाम के समय करनी चाहिए तथा रोपाई के तुरन्त बाद सिंचाई करनी चाहिए। रोपाई के जुलाई - अगस्त माह उपयुक्त रहता है। अधिक ऊंचाई

तक जाने वाले तथा फैलने वाले बड़े वृक्षों के बगीचों में, इन वृक्षों के बीच प्रारम्भिक अंतरावर्ती या पूरक फसल के रूप में पपीता ले सकते हैं। उदाहरणार्थ - आम, अमरूद, नीबू वर्गीय फलों के मध्य पपीता ले सकते हैं।

9.11 लिंग - भेद

पपीते में तीन तरह के पौधे होते हैं नर, मादा और उभयलिंगी। नर व मादा फूल अलग-अलग पौधों पर लगते हैं। पौधों में मई से फूल आना शुरू होता है, अतः लिंग भेद शुरू होते ही इन गड्ढ़ों में से नर पौधों को उखाड़ देना चाहिए तथा केवल एक एक स्वस्थ मादा या उभयलिंगी पौधा छोड़ देना चाहिए। मानसून आते ही सभी पौधे फल देना शुरू कर देते हैं। पपीते में लिंग की समस्या इसकी खेती के लिए बाधक है अतः 10 प्रतिशत नर पौधे छोड़कर शेष पौधे उखाड़ देने चाहिए। कभी कभी उभयलिंगी पौधों को भी नर पौधे समझ कर निकाल दिया जाता है जबकि इनमें बढ़िया किस्म के फल बनते हैं। अतः इनकी ठीक से पहचान करने के लिए इनके फूलों की प्रमुख-प्रमुख विशेषताएं नीचे दी जा रही है ताकि पौधों के फलों की पहचान कर अनावश्यक पौधों को बाहर निकाला जा सके। इसलिए पहले गडढ़े में एक त्रिभुज रूप से 20-20 से.मी. की दूरी पर 2-3 पौधे लगाये जाते हैं ताकि बाद में फल आने पर इनको पहचान कर नर पौधे को उखाड़ने पर भी सही दूरी पर पौधों की पूरी संख्या प्राप्त हो सकें। फल केवल मादा एवं उभयलिंगी पेड़ों पर ही आते हैं। नर पौधे परागण (निषेचन) का कार्य करते हैं परन्तु उन पर फल नहीं आते हैं, परन्तु सभी नर पोधों को उखाड़ने से परागण की समस्या हो सकती है। अतः नर पोधों को एक उचित संख्या (10 प्रतिशत) में रखा जाना चाहिये।

मादा फूल

ये पत्तियाँ के कक्ष से छोटे डण्ठलों पर निकालते हैं। इनकी लंबाई एक से तीन इंच तक होती है। इनका आकार बड़ा तथा नीचे से चकरीनुमा होता है। इनमें पुंकेसर नहीं होता ओर डिंबग्रन्थि स्पष्ट दिखाई देती है। यह ग्रंथि बाद में विकसित होकर अण्डाकार या गोल हो जाती है और पपीते के फल के रूप में आती है।

नर फूल

लंबी टहनियों पर यह पुष्पगुच्छे लटके हुए होते हैं। फूल छोटे ओर पूर्ण रूप से विकसित होते हैं। ये फूल पत्तियों के कक्ष से अकेले या गुच्छे में छोटे डण्ठलों पर लगते हैं। इन फूलों में फल नहीं बनते। ये फूल मादा फूल से पतले तथा छोटी छोटी नलिकाओं की तरह होते हैं।

उभयलिंगी फूल

इन्हें हरमाफ्रोडाइट फूल कहते हैं। उभयलिंगी पेड पर मध्यम आकार के नर और मादा के बीच के फूल होते हैं ।यह पुष्प, गुच्छों से निकलते हैं। इनमें नर व मादा दोनों प्रकार के भाग एक ही फूल होते हैं अर्थात् इनमें डिंबग्रंथि भी होती है और पुंकेसर भी। इस तरह के पेड़ों में लंबे आकार के खीरा की शक्ल के फल लगते हैं। इन तीनों प्रकार के फूलो का लिंग वातावरण में भिन्नता के अनुसार बदलता रहता है। ऐसा मानना है कि हवाई द्वीप में शीत मौसम के कारण फूल मादा लिंग निर्माण की तरफ अग्रसर रहते हैं।

कुछ ऐसी किस्में भी विकसित हुई हैं जिनमें केवल मादा या उभयलिंगी पौधे ही होते हैं जिन्हें गाइनो डाइसिस कहते हैं। इन किस्मों का एक गड्ढे में एक ही पौधा लगाएँ। इस प्रकार इनकी प्रति हैक्टेयर बीज दर भी कम हो जाएगी। इन किस्मों में पूसा डेलीशियम व पूसा मेजेस्टिक तथा कुर्ग हनी ड्यू प्रमुख है।

9.12 खाद व उर्वरक

लगभग एक सवा वर्ष में पपीते के पौधों में फल आने लगते हैं। प्रत्येक पत्ती कक्षा से फूल निकलते हैं। इनमें पौधों की बढ़वार व फल आने का कार्य साथ-साथ चलता रहता है अतः उर्वरक कई बार में डालने की आवश्यकता होती है। निम्नांकित खाद व उर्वरक की मात्रा में पौधे को देवें:

1. फॉस्फेट तथा 150 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति पौधे कि हिसाब से देवे।
2. यूरिया की 25 ग्राम मात्रा पौध लगाने के दो माह बाद 35 ग्राम पौध लगाने के चार माह बाद तथा 40 ग्राम फूल आने से पूर्व प्रति पौधा दें।
3. सुपर फॉस्फेट की 200 ग्राम मात्रा गड्ढा भरते समय तथा 200 ग्राम मात्रा दिसम्बर - जनवरी में प्रति पौधा दें।
4. म्यूरेट आॅफ पोटाश 75 ग्राम गड्ढा भरते समय तथा 75 ग्राम मात्रा दिसम्बर - जनवरी में प्रति पौधा दें।
5. देशी खाद की मात्रा जून जुलाई में देनी चाहिए।
6. खाद व उर्वरक पेड़ से 60 से.मी. की दूरी पर गोलाई में छिड़क कर मिट्टी में मिला देना चाहिए तथा तत्काल सिंचाई कर देनी चाहिए। पपीते की जड़े ऊपर ही रहती है अतः उन्हें कोई नुकसान नहीं होना चाहिए।

9.13 सिंचाई

पपीते की जड़े भूमि में गहरी नहीं जाती है, अतः थोड़े-थोड़े समय के अंतर से सिंचाई करनी चाहिए, परन्तु इस बात का ध्यान रखना होगा कि पेड़ के तने के पास पानी भरा नहीं रहे अन्यथा तने व जड़ों के सड़ने की सम्भावना रहती है। गर्मियों में प्रति सप्ताह व सर्दियों में 15-20 दिन के अंतर में सिंचाई करनी चाहिए।

9.14 फलों का उतारना व उपज

लगभग एक वर्ष बाद ही पपीते का पौधा फल देने लगता है। पौधों की रोपाई के 4-5 माह बाद पपीता फूल देता है। फूल आने के अगले 6 माह में फल तैयार हो जाते हैं एवं बसंत में पकना शुरू कर देते हैं जो गर्मियों तक पकते रहते है। सर्दियों को छोड़ कर पपीते के पेड़ पर फूल आते रहते हैं तथा फल बनते रहे हैं। मार्च-अप्रेल में लगाये गए पौधों में बरसात में फल लगना शुरू हो जाते हैं और फरवरी - मार्च तक पकने लगते हैं और जून तक पके फल प्राप्त हो जाते हैं। अगर पौधे जुलाई मे ंलगाये जाते हैं तो उन पर फल देर से लगना शुरू हो जाते हैं और फरवरी - मार्च तक पकने लगते हैं और जून तक पके फल प्राप्त हो जाते हैं। अगर जुलाई में लगाये जाते हैं तो उन पर फल देर से आते हैं अर्थात् आधा मौसम निकल जाने पर फल आते हैं। व पौधे

फरवरी में फलते है और बरसात में इन पर फल लगना शुरू हो जाते हैं। ये पौधे फरवरी में फलते हैं और बरसात में इन पर फल लगना शुरू हो जाता है। ये फल फरवरी - मार्च मे ंपकना शुरू हो जाते हैं। सर्दियों में पपीते के फल नहीं आते। वैसे इन्हें तोड़ कर कृत्रिम तरीके से पकाकर इन दिनों में भी फल उपलब्ध करा सकते है और अच्छा आर्थिक लाभ भी कमाया जा सकता । पपीता जब कठोर हो और रंग में परिवर्तन आने लग जाये तथा फल तोड़ने पर दूध के स्थान पर पानी लिकले तभी इसे पेड से तोड़ लें। अधपके फलों को चिड़ियों व पक्षियों के प्रकोप से बचाने के लिए फलों को पुराने टाट से ढंककर रखें। फलों को दूरी वाले बाजारों में भेजने के लिए बांस की टोकरियों या लकड़ी की पेटियों में भरें। फल को अलग-अलग कागजों में एक-एक करके लपेटा जाता है। एक के ऊपर दूसरा नहीं रखें ताकि रास्ते में हीलने - डुलने से चोट नहीं पहुंचे, इसलिए बीच के स्थान पर घासफूस रख देना चाहिए। पपीता एक सप्ताह से ज्यादा नहीं ठहर सकता। अतः 7.2 डिग्री सेंटीग्रेड तापक्रम व 85-90 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता पर इसे तीन सप्ताह तक बिना खराब हुए भण्डार गृह में रख सकते हैं। वैसे जब दूसरे शहरों से पपीता आता है तो उसे कच्चा ही तोड़ा जाता है तथा उसे कैमिकल द्वारा पकाया जाता है।

एक पेड़ से 25-30 फल, औसत वजन 30 किला प्रति पेडद्य प्राप्त हो जाता है। आर्थिक रूप से पपीता 3 वर्ष तक ही उपयोगी रहता है। प्रति पौधा औसतन 200 ग्राम पेपेन प्राप्त हो सकता है।

9.15 पेपेन निकालना

पपीते की खेती का क्षेत्र बढ़ाने हेतु इसके पेपेन उत्पादन के तरीकों को कृषकों में प्रचलित करना चाहिए तथा विपणन की व्यवस्थ सुनिश्चित करनी चाहिए। इसके लिए पेपेन देनी वाली किस्मों की खेती करनी चाहिए। पेपेन का आर्थिक महत्व बहुत अधिक है। पेपेन एक प्रकार का एन्जाइम है जिसका निर्यात कर विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है।

पपीते को छीलने पर छिलका उतारते समय विशेष रूप से कच्चे फलों पर चीरा देने से दूध निकालता है उसे लेटेक्स कहते हैं तथा उसे सुखाकर पेपेन बनाया जाता है। यह पेट के रोगों में दवाई के काम आता है। यह अनेक रोगों में जैसे डिप्थीरिया, खूनी बवासीर, दाद, नासूर, पेट में पड़ने वाले कीड़ों, पाचन संबंधी विकारों, चमड़ी के दाग, गुर्दे तथा तिल्ली बढ़ने जैसे विकारों के उपचार में लाभकारी है। औद्योगिक कार्यों में इसका उपयोग माँस पकाते समय उसे मुलायम बनाने तथा अमेरिका में च्युईगम बनाने के लिए किया जाता है। इसे चमड़ा पकाने तथा रेशमी व ऊनी कपड़े बनाने में भी प्रयोग किया जाता है। दही जमाने में भी पेपेन का उपयोग किया जा सकता है। इसमें प्रोटीन पचाने की क्षमता होती है, इसलिए अल्कोहल तथा बीयर बनाने के कारखानों में भी इसका उपयोग किया जाता है।

9.16 उत्पादन विधि

सबसे अच्छा पेपेन पूरी तरह से बढ़े हुए कच्चे हरे फलों से मिलता है। इसके लिए एक स्टेनलैस स्टील के चाकू से अधपके तीन माह पुराने फल पर तीन मिलीमीटर गहरे चार सवा से.मी. के समान अंतर पर प्रतिदिन प्रति फल लगायें। चीरे को फलों की लंबाई में लगायें। अगर स्टेनलैस स्ञील का चाकू न मिले तो एक ब्लेड से काम चलाया जा सकता है। चीरा लगाते ही

फल की सतह पर सफेद दूध निकलने लगता है। हर तीन से सात दिन तक यही प्रक्रिया दोहराई जाये। अच्छी मात्रा में पेपेन लेने के लिए एक बार में केवल थोड़े से ही चीरे लगाने चाहिए। दूध लेने का काम 12 से 16 दिन तक चलता रहता है जब तक कि सारा फल घावों से भर नहीं जाता । पहले तो दूध टपकता रहता है लेकिन आखिर में यह फल की सतह पर जम-सा जाता है, उसे खुरच लेना चाहिए। काफी ऊँचाई पर लगे फलों तक पहुँचने के लिए नसैनी की जरूरत होती है। दूध निकालने के लिए दस्ताने पहनने चाहिए जिससे अंगुलियों में खुजली आदि न हो जाये। ऊषाकाल में प्रातः 10 बजे तक दूध निकालने का काम कर लेना चाहिए। बहुत छोटे फलों में पाचक गुण कम होते हैं। दूध निकालने से पहले ऊपर से मिट्टी वगैरह को धो डालना चाहिए।

दूध किसी धातु के बर्तन में जमा नहीं करना चाहिए अन्यथा पेपेन धातु से क्रिया करके खराब हो जायेगा, अतः इसके लिए काँच या चीनी - मिट्टी का बर्तन काम में लेना चाहिए। दूध निकाल कर फौरन ही सुखा लेना चाहिए वरना खराब हो जायेगा। साधरणतया लोग धूप में सुखा लेते हैं जबकि इसका वैज्ञानिक तरीका यह हे कि किसी खुले ओवन में 40 डिग्री सैल्सियस तापमान पर सुखाया जाये। ज्यादा तापमान में बिगड़ जाता है। सुखा कर पीस कर बारीक चूर्ण बना लेना चाहिए फिर 10 मेश की छलनी से छान लें। इस चूर्ण को जो पेपेन कहलाता है, सीलबंद बोतल में अच्छी पाई गई हैं। इस थैलियों को एक बड़े टिन में रखकर भण्डारण किया जा सकता है। इस विधि के अलावा रासायनिक तरीके से पहले इसमें थोड़ी मात्रा में 0.5 प्रतिशत पोटेशियम मैटा बाई-सल्फेट मिला देने से पेपेन पाउडर की भण्डारण क्षमता बढ़ जाती है।

पेपेन निकाल लेने के बाद पके हरे पपीते से कैंडी या पेठा, जैली, टॉफी, चटनी आदि बनाये जा सकते हैं। वैसे पेपेन का उत्पादन फलों की किस्म, मौसम, पौधों की आयु आदि पर निर्भर करता है। एक अनुमान के अनुसार पेपेन की उपज प्रथम वर्ष में एक हैक्टेयर से 196 किलो तथा दूसरे वर्ष में इसकी आधी मात्रा प्राप्त होती है। तीसरी साल पेपेन प्राप्त करना आर्थिक रूप से लाभकारी नहीं है। पेपेन की राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रिय बाजारों में बिक्री हेतु मुंबई आदि शहरों में कुछ एजेन्सियाँ हैं अथवा इसके लिए केन्द्रीय खाद्य एवं प्रौद्योगिक अनुसंधान संस्थान (सी.एफ.टी.आई.) मैसूर, कर्नाटक से भी सम्पर्क किया जा सकता है।

9.17 पपीते में लगने वाले कीट व नियंत्रण

पपीते के पौधे में हरा तेला तथा माइट नामक कीड़ों का प्रकोप होता है। ये दोनों ही पत्तियों का रस चूसकर हानि पहुँचाते हैं। अतः इन पर नियंत्रण के लिए डाईमिथोएट 30 ई.सी. एक मि.ली. प्रति लीटर के हिसाब से पानी घोल कर छिड़काव करें।

9.18 बीमारियाँ व उन पर नियंत्रण

यद्यपि कीड़े तथा जीवाणु आदि पपीते की फसल को अधिक क्षति नहीं पहुँचाते हैं परन्तु विषाणु तथा फफूँद वाले रोगों का इस पर बड़ा भयानक प्रकोप होता है जिसमें पपीते की सफल बागवानी में काफी बाधा पड़ती है।

1. विषाणु रोग

विषाणु रोग में पपीते में मोजेेक तथा लीफ कर्ल प्रमुख बीमारी है। इसमें पत्तियाँ स्थायी रूप से मुड़ जाती हैं तथा फल जल्दी ही गिर जाते हैं। इसके कारण पौधों की शीर्ष पत्तियों का गच्छा ताज के रूप में हो जाता है। पत्तियाँ उल्टे प्याले के रूप में नीचे एवं भीतर की तरफ मुड़ जाती हैं। पर्णवृंत टेढ़े-मेढ़ हो जाते हैं। ऐसे पेड़ों पर फल और फूल नहीं लगते। पौधों की वृद्धि रूक जाती है। यह रोग सफेद मक्खी (बेमीसिया) टबेकी द्वारा फैलता है।

नियंत्रण

रोगग्रस्त पौधे कभी भी स्वस्थ नहीं हो सकते और मोजेक संक्रमित पेड़ आर्थिक दृष्टिसे कमभी भी लाभदायक नहीं रहते बल्कि इनक ेकारण रोग अधिक फैलता ही जाता है। अतः रोगी पेड़ों को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए, जिससे रोग का फैलाव रूक सके।

पपीते की कोई भी किस्म रोगरोधी नहीं है क्योंकि रोग का फैलाव कीटों से होता है अतः कीटनाशक मिथाइल डिमेटोन 25 ई.सी. एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर 15 दिनके अंतर पर छिड़काव करें। इन दवाओं का प्रयोग फल लगने से पूर्व ही करना चाहिए। फल लगने के बाद मेलाथियान 50 ई.सी. डेढ़ मि.ली. प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करावें।

2. तना या पद-विगलन रोग -

पपीते के रोगों में तना या विगलन (स्टेम या फुट राॅट) प्रमुख है। इस रोग के प्रभाव से भूमि की सतह के पास में सड़न आरम्भ हो जाती है, जो धीरे धीरे बढ़ कर पूरे तने को घेर लेती है। रोगग्रस्त भाग भूरा काला हो जाता है। रोगी पेड़ों के पत्ते व फल पीले पड़ कर गिरने लगते हैं। रोग के प्रभाव से पेड़ों की छाल फट जाती है व शहद के छत्तेनुमा दिखाई पड़ती है। ऐसे पेड़ गिर जाते हैं। इस कवक से नर्सरी में पपीते की पौध में आर्द्र गलन रोग (डेम्पिंग आॅफ)होता है।

नियंत्रण

रोग के बचाव के लिए बाग में पानी का निकास बहुत अच्छा होना चाहिए। तने को किसी प्रकार की चोट नहीं लगनी चाहिए एवं पानी तने के सम्पर्क में नहीं आना चाहिए। रोग दिखाई देते ही रोगग्रस्त भाग को पूरी तरह हटाकर काॅपर आॅक्सीक्लोराइड या आरियोफजिन का लेप लगाएँ। बोर्डों मिश्रण या कैप्टान 2 प्रतिशत का घोल को 15 दिन के अंतर पर तने के आधार पर पास चारों और भूमि में डालनेमें तथा तने पर छिड़काव करने से रोग घट जाता है।

नर्सरी में पौध को रोग से बचाने के लिए मिट्टी को 3 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से ताम्रयुक्त कवकनाशी के घोल से तर कर दें। बुवाई करते समय बीजों को थाइरम 3 ग्राम प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचारित करके बुवाई कराएँ।

3. जड़ों के कृमि रोग

रनिफार्म नामक गाल कृमि पपीते की जड़ों का एक भयानक शत्रु है। इसके लगने से पौधों का बढ़ना रूक जाता है तथा फलन की प्रक्रिया थम जाती है। रोग की पहचान के लिएपोधों की जड़ों को खोदकर उन्हें पानी में धोकर देखा जाये तो हमें बालू के दाने जैसी कोई चीज चिपकी हुई दिखाई देगी।

नियंत्रण

इसके नियंत्रण के लिए पौध तैयार करते समय कार्बोफ्यूरान 3 जी 10 ग्राम प्रति वर्गमीटर की दर से नर्सरी में दें तथा पौधे के हिसाब से दें।

9.19 सारांश

पपीता एक बहुत ही पौष्टिक फल है। पपीते के उत्पादन की उन्नत तकनीक का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात हम उसका उत्पादन कम लागत में कर सकते हैं, जिससे हमें ज्यादा मुनाफा हो सके। पपीते की कई उन्नत किस्में पाई जाती है, जिनकी अपनी विषेषताएं हैं। पपीते में लगने वाले कीट एवं रोगों का समय पर विपरीत असर उत्पादित पर पड़ सकता है।

9.20 बोध प्रष्न

1. पपीते के उत्पादन की उन्नत तकनीक समझाइए।
2. पपीते की पांच किस्मों के नाम तथा इनकी विषेषताएं बताइये।
3. पपीते के पेपेन उत्पादन की विधि समझाइए।
4. निम्न में से पपीते की किस्म कौनसी है?

   अ हनी ड्यू ब सोलो

   स वांषिगटन द उपरोक्त सभी
5. आर्थिक रूप से पपीता कितने वर्ष तक उपयोगी रहता है?

   अ 1 वर्ष ब 3 वर्ष

   स 10 वर्ष द 15 वर्ष

9.21 संदर्भ ग्रंथ

1. Singh, Ranjit, 1992, Fruits, National Book Trust
2. Katya, S.L. and Chadha, K.L., 1995, Vegetable Growing in India, Oxford and IBH Publishing Company, pp.157.
3. Bose, T.K., 1985, Fruits of India: Tropical and Sub-troprical, Naya Prokash, pp.637.
4. Singh, S.P., 1989, Production Technologies of Vegetable Crops, ARCC, pp.380.
5. National Horticulture Data Base, National Horticulture Board Agriculture Ministry, Government of India.
6. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस. के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.
7. श्रीवास्तव, एस. एस. उदद्यान विज्ञान, 2013, सेंट्रल बुक हाउस, रायपुर

इकाई 10

कद्दूवर्गीयें सब्जियाँ

इकाई की रूप रेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 जलवायु
10.3 भूमि एवं तैयारी
10.4 प्रमुख जातियां
10.5 बीज उपचार
10.6 खाद एवं उर्वरक
10.7 सिंचाई एवं जल प्रबंधन
10.8 खरपतवार नियंत्रण
10.9 कटाई - छटाई
10.10 सहारा देना
10.11 पुष्पन एवं फलन
10.12 पौधा संरक्षण
10.13 तोड़ाई
10.14 उपज
10.15 सारांश
10.16 बोध प्रश्न
10.17 संदर्भ ग्रंथ

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पाएगे:

- कद्धुवर्गीय सब्जियों के उत्पादन की उन्नत तकनीक
- कद्दूवर्गीय सब्जियों की प्रमुख जातियां
- इनकी बीज दर, खाद, उर्वरक
- कद्दुवर्गीय सब्जियों का पौध सरंक्षण

10.1 प्रस्तावना

संतुलित आहार में सब्जियों का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। विशेषज्ञों के अनुसार दैनिक आहार से कम से कम 325 ग्राम सब्जियों का सेवन करना आवश्यक है, जिसमें 125 ग्राम पत्तेदार, 100 ग्राम जड़ वाली तथा 100 ग्राम अन्य सब्जियाँ होना चाहिये। कद्दू वर्ग अर्थात कुकरबिटेसी कुल सब्जियों का सबसे बड़ा समूह है। इस वर्ग में लगभग 90 वंश तथा 700

प्रजातियां आती है। विश्व के प्रायः सभी उष्ण व उपोष्ण कटिबंधीय देशों में कद्दूवर्गीय सब्जियाँ उगाई व उपयोग की जाती है।

10.2 जलवायु

कद्दूवर्गीय सब्जियाँ ग्रीष्म एवं वर्षा दोनों ही मौसमों में उगाई जाती है परन्तु शीतकाल एवं पाला के प्रति ये अतिसंवेदनशील होती है। ये सब्जियाँ गर्म जलवायु में भलिभांति पुष्पन एवं फलन करती है। इसके लिये सामान्यतः 18 से 30 डिग्री से. ग्रेट तापमान उपयुक्त है। 10 डिग्री सेन्टी से कम तापमान पर पौधे पीले पड़ जाते हैं या मर जाते हैं। पुष्पन के समय 13 से 18 डिग्री से तापमान होने पर परागण क्रिया अच्छी होती है।

10.3 भूमि एवं तैयारी

कद्दुवर्गीय सब्जियाँ प्रायः एक समान गुणधर्म वाली होने के कारण इनकी खेती का तरीका एक सा होता है। इन सब्जियों को हल्की से लेकर मध्यम अथवा भारी भूमियों में भी उगाया जा सकता है, परन्तु जीवांश पदार्थ युक्त दोमट या बलुई दोमट भूमि इनके लिए सर्वोत्तम होती है। अधिक अम्लीय या अधिक क्षारीय भूमि इनके लिये उपयुक्त नहीं है। केवल खरबूज एवं तरबूज को कछारी या रेतीली भूमि में लगाने से उपज अधिक प्राप्त होती है। सामान्य रूप से भूमि का पी.एच. 5.5 से 6.5 उपयुक्त होता है।

भूमि की तैयारी का फसल उत्पादन पर घनात्मक प्रभाव पड़ता है अतः भूमि की तैयारी भलिभांति उचित ढंग से करें। खेत को हल व आड़ा-खड़ा बखर चलाकर जुताई करलें व पाटा चलाकर भूमि को समतल कर लें। उचित होगा कि खेत की जुताई के समय 20-25 टन भलीभांति सड़ी गोबर की खाद डालकर भूमि में मिला दें। यदि भूमि में दीमक या अन्य भूमिगत कीटों की समस्या हो तो जुताई के ही समय 20-25 कि.ग्रा. क्लोरपायरीफास डस्ट प्रति हैक्टेयर की दर से भूमि में मिला दें। इस तरह तैयार खेत में लगाई जा रही फसलानुसार उचित अंतर पर थाले या गड्ढ़े बनाकर बोआई के लिये खेत तैयार कर लें।

10.4 प्रमुख जातियां

किसी भी फसल की अच्छी पैदावार उसकी जातियों पर अधिक निर्भर करती है अतः अधिक उपज देने वाली, रोग-कीट रहित व क्षेत्र विशेष के लिये अनुशंसित की गई जातियों का चयन करना चाहिए। ध्यान रखें कि चयनित जाति का बीज किसी प्रमाणित संस्था से ही लें, बीज में अंकुरण क्षमता निर्धारित मानक के अनुसार हो तथा बीज में खरपतवार व अन्य फसलों के बीजों का मिश्रण न हो। इस वर्ग की प्रमुख फसलों की उन्नत एवं संकर जातियां एवं इन फसलों का औसत उत्पादन सारणी क्र. 1 में दिया गया है।

10.5 बीज उपचार

यह कम लागत उत्पादन तकनीकी का सबसे महत्वपूर्ण एवं अतिआवश्यक कार्य है अतः बिना बीज को उपचारित किये बोआई न करें। बीज उपचार करने के लिये थायरम या कैप्टान दवा (2.5 से 3.0 ग्राम) एवं मैलाथियान (1.5 मि.ली.) दवा के प्रति लीटर पानी में घोल बना लें। इस

घोल में बीज को आधा से एक घंटा तक डुबोकर उपचारित कर लें इससे फफूंदी जन्य रोगों के साथ-साथ कीड़ों से भी पौधों की सुरक्षा होगी।

बोआई

तैयार खेत में उचित अंतर पर बने थाले या गड्ढ़ों में इसके उपचारित बीज की बोआई की जाती है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि किसान एक गड्ढ़े या थाल में 3-4 बीज डालते हैं तथा अंकुरण के बाद 1-2 पौधों को निकाल देते हैं इस विधि से बीज की मात्रा तो अधिक लगती ही है। साथ ही पौधों का आपसी अंतर भी प्रभावित होता है और कभी-कभी तो बीज के थाले/गड्ढ़े खाली ही रह जाते हैं। जिनमें पुनः बीज डालना पड़ता है। अतः उचित होगा कि उपचारित बीज को मिट्टी: रेत: गोबर की खाद के 1:1:1 अनुपात में बनाए गये मिश्रण से भरी छेद वाली पालीथिन की थैलियों में बुवाई करके तैयार की गई पौध को मुख्य खेत में रोपाई कर दे, परन्तु ध्यान रखें कि रोपाई से पूर्व पॉलीथिन की थैली ब्लैड से काटकर अलग कर लें। इस प्रकार पौध तैयार करके बोआई करने में बीज की मात्रा और समय की बचत के साथ-साथ फसल जल्दी व गुणवत्तायुक्त प्राप्त होती है।

10.6 खाद एवं उर्वरक

खाद व उर्वरकों की मात्रा का निर्धारण मिट्टी परीक्षण के आधार पर ही करना चाहिये। सामान्यतः इन फसलों से पर्याप्त उत्पादन लेने के लिये 200-250 क्विटल अच्छी सड़ी गोबर की खाद 80-100 किलोग्राम नाइट्रोजन 50-60 किलोग्राम फास्फोरस एवं 40 किलोग्राम पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से देना चाहिये। गोबर खाद फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन खाद को 1/3 मात्रा पौध रोपाई के पूर्व खेत में मिला देना चाहिए। शेष नाइट्रोजन खाद की 2/3 मात्रा को 20-25 दिन बाद एवं 40-45 दिन बाद मिट्टी चढ़ाते समय देना चाहिए।

10.7 सिंचाई एवं जल प्रबंधन

कद्दुवर्गीय सब्जियों को पर्याप्त उपज प्राप्त करने के लिये सिंचाई एवं जल प्रबंधन एक आवश्यक कार्य है अतः भूमि में नमी की कमी व पौधों को जल की आवश्यकतानुसार सिंचाई कार्य करना चाहिये। ध्यान रखें कि पौधों की वृद्धि अवस्था, पुष्पण की अवस्था एवं फल विकास को अवस्था में भूमि में नमी की कमी नहीं होना चाहिये । इन अवस्थाओं को सिंचाई क्रांतिक अवस्था माना जा सकता है। वृद्धि अवस्थाओं में उचित सिंचाई प्रबंधन से मुख्य तने से पर्याप्त शाखायें निकलती है। पुष्पन के समय सिंचाई देने से मादा पुष्पों की संख्या अधिक होती है। फल विकास की अवस्था मे पानी की कमी से फलों के आकार टेढ़ा हो जाता है। फूलों में चमक कम होती है और गूदे में रेशे हो जाते हैं, फलतः फलों की गुणवत्ता कम हो जाती है।

सारणी 1 कद्दूवर्गीय सब्जियों की प्रमुख जातियाँ एवं औसत उत्पादन

क्र.सं.	**सब्जि का नाम**	**प्रमुख जातियाँ**	**औसत उत्पादन (क्विंटल/है.)**
1.	लौकी (बाटलगार्ड)	पूसा, मेघदूत (लम्बी), पूसा मंजरी (गोल) पूसा नवीन, पूसा संदेश, अर्का बाहर, पंजाब कोमल, आजाद नूतन,	150-250

		हिसार सिलेक्शन लेबी आदि।	
2.	रेला (बिटरगार्ड)	पूसा दो मौसमी, पूसा विशेष, पूसा संकर - 1 एवं 2, अर्काहरित, प्रिया, कोमयंबटूर लोंग आदि	125-200
3.	गिलकी (स्पंज गार्ड)	पूसा चिकनी, पूसा सुप्रिया, पूसा स्नेहा, को 1 एवं 2 आदि	150-200
4.	तौरई (रिज गार्ड)	पूसा नसदार, कोंकण हरिता, जयपुरी लोंग, पंजाब सदाबहार	125-200
5.	कद्दू (पंपकिन)	पूसा विश्वास, पूसा अलंकार, पूसा विकास, अकाचंदन, अर्का सूर्यमूखी, सोंलम बादामी आदि	200-200
6.	टिण्डा (इंडियन इक्वाश)	अर्का अण्डा, हिसार सिलेक्शन, पंजाब चेमन दिल पसंद, बीकानेरी ग्रीन आदि	150-200
7.	परवल (पॉइण्टिड गार्ड)	राजेन्द्र परवल 1 एवं	2100-125
8.	खीरा (कुकुम्बर)	पूसा संयोग, बालम खीरा, जापानी लोंग ग्रीन	100-150
9.	ककड़ी (लोंगमेलन)	अर्काशीतल, लखनऊ, अर्ली, करनाल सिलेक्शन	125-200
10.	खरबूज (मस्क मेलन)	पूसा शरबती, पूसा सुनहरी, अर्काबीत, अर्का राजहंस, पंजाब हायब्रीड, हरा मधु हिंसार सरस पंजाब सुनहरी, दुर्गामधु आदि	।200-350
11.	तरबूज (वाटर मेलन)	पुसा बेदाना, अर्का मनिक, शुगर, बेबी, अर्का, ज्योति, दुर्गापुर मीठा	250-350
12.	पैठा (ऐशगार्ड)	को 1 एवं 2, एस 1, समर किंग लांग लार्ज रेड, लार्ज यलो।	125-250
13.	चचिंडा (स्नेकगार्ड)	कोंकण श्वेता, को 1 पी. के. एच.	180-100
14.	छप्पन कद्दू	पंजाब छप्पण कद्दु, पूसा अलंकार, अर्ली यलो प्रालिफिक, आस्ट्रेलियन ग्रीन	100-125

है। तरबूज व खरबूज में फल पकने की अवस्था में सिंचाई देने से फलों की मिठास कम हो जाती है एवं फल देने से पकते हैं।

10.8 खरपतवार नियंत्रण

खरपतवार फसलों में रोग व कीट फैलाने में सहायक होने के साथ-साथ भूमि की उर्वरा शक्ति को भी कम करते हैं। अतः अच्छी गुणवतायुक्त पैदावार लेने के लिये फसलों को

खरपतवारों से मुक्त रखना आवश्यक है। इसके लिये समय-समय पर निंदाई-गुड़ाई करना चाहिये एवं पौधों पर मिट्टी चाहिये ताकि खेत साफ-सुथरा रहने के साथ-साथ भूमि में वायु संचार की व्यवस्था सुचारू हो सके जिससे कि जड़ों एवं पौधों का विकास पर्याप्त हो सकें।

10.9 कटाई - छटाई

कद्दुवर्गीय सब्जियों से अधिक उपज लेने के लिये पौधों की कटाई - छटाई करना आवश्यक है। लौंकी एवं खरबूज में 4-5 गठानों तक कोई भी द्वितीयक शाखाओं को विकसित नहीं होने देना चाहिए। तरबूज में मुख्य तने से निकली 3-4 गांठों तक की शाखाओं के अग्रभाग पूरी वृद्धि करने के बाद कांट - छांट देना चाहिए। इस प्रकार कांट - छांट से अच्छी के साथ गुणवत्ता युक्त प्राप्त होती है।

10.10 सहारा देना

अधिक उपज प्राप्त करने के लिये व अच्छी गुणवत्ता वाले फल प्राप्त करने के लिये पौधों को उचित सहारा देना आवश्यक है। इस कार्य हेतु बांस, लौहे के एंगिल, सीमेन्ट पोल आदि का उपयोग किया जा सकता है एवं रस्सी या लोहे का तार आदि का उपयोग आवश्यकतानुसार मचान बनाकर पौधों को सहारा दिया जा सकता है।

10.11 पुष्पन एवं फलन

कद्दुवर्गीय कुल की सब्जियों में अधिकतर 40-45 दिन में फूल आने लग जाते हैं। प्रारम्भ की 4-6 गांठों पर मादा फूल आते हैं। इस प्रकार नर फूलों की तादाद मादा फूलों से अधिक रहती है, अर्थात् नर व मादा फूलों का अनुपात 25 से 30:1 है। सेक्स अनुपात वातावरण नत्रजन की अधिक मात्रा, लम्बे दिनों आदि के कारण प्रभावित होता है तथा इन परिस्थितियों में नर फूल अधिक लगते हैं। यह स्थापित हो चुका है कि मादा फूलों की अधिकता होने पर ही अधिक पैदावार मिलती हैं। कुछ वृद्धि कारकों/हारमोन्स के द्वारा ऐसे फूलों की संख्या बढ़ाई जा सकती है। पौधों में यदि इथीलीन का स्तर अधिक हो तो खीरा, खरबूजा, कद्दू, टिण्डा में मादा फूल अधिक आते हैं, किन्तु तरबूज मे इसकी अधिकता से नर फूलों पर भी प्रभाव पड़ता है। अतः सारणी 2 में दिये वृद्धि नियामकों का दो से चार सच्ची पत्तियों की अवस्था में छिड़काव किया जाए तो मादा फूलों व फलों की मात्रा बढ़ जाती है लेकिन छिड़काव सुबह या शाम के समय ही किया जाये।

10.12 पौधा संरक्षण

फसल की बुवाई उन्नत बीजों द्वारा संतुलित मात्रा में उर्वरकों एवं खादों का प्रयोग करने, उचित समय पर सिंचाई करने के उपरान्त भी फसल को कीटों एवं रोगों द्वारा काफी हानि हो जाती है जिससे किसान भाईयों को काफी नुकसान उठाना पड़ता है। कीट एवं रोग नियंत्रण की सभी विधियों को एकीकृत रूप से अपनाया जायें ताकि कद्दु वर्गीय सब्जियों के कीट एवं रोगों की नियंत्रण भी हो जाये एवं पर्यावरण सुरक्षा के साथ-साथ मित्र जीवों को भी बचाया जा सकें।

प्रमुख कीट: फल छेदक मक्खी -

इस कीट की मक्खियां (प्रौढ़) लाल भूरे रंग के होते हैं जिनके सिर पर काले तथा सफेद धब्बे पाये जाते हैं। मक्खी के वक्ष पर पीले रंग की धारियां होती है। इस कीट की सुड़ियों का रंग भूरा सफेद होता है। इस कीट की मादा मक्खी फलों में छेद करके उनमें अण्डें देती है जिनसे 3-4 दिन बाद सूड़ियां निकल कर फल को अंदर ही अंदर खाकर नुकसान पहुंचाना प्रारम्भ कर देती है। क्षतिग्रस्त फल अण्डे देने के स्थान से मुड़ जाते हैं एवं कुछ दिनों के बाद फल सड़ जाते हैं।

प्रबंधन

1. चैड़े मुंह के बर्तन में 1 लीटर पानी लेकर उसमें 1.5 मि.लि. मिथाइल यूजीनॉल एवं 2 मिली डाइक्लोरवास मिलाकर विष चारा तेयार करें। इस विष चारा को फल आने पर 5-6 जगह प्रति एकड़ के हिसाब से रखें।

सारणी 2 - कद्दूवर्गीय सब्जियों में वृद्धि नियामकों का प्रयोग

फसल	**वृद्धि नियमांक**	**प्रयोग की जाने वाली मात्रा**
लौकी	1 एम.एच. 50 पी.पी.एम. 2 इथरेल 50 प्रतिशत का 100 पी.पी.एम.	1 ग्राम एम.एच. की मात्रा को 20 ली. पानी में घोलकर छिड़काव करें। 4 मि.ली. मात्रा को 20 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।
तोरई	इथरेल 50 प्रतिशत का 100 पी.पी.एम.	4 मि.ली. मात्रा को 20 लीटर पानी घोलकर छिड़काव करें।
टिण्डा	1 एम.एच. 50 पी.पी.एम. 2 इथरेल 50 प्रतिशत का 100 पी.पी.एम.	1 ग्राम एम.एच. की मात्रा को 20 ली. पानी में घोलकर छिड़काव करें। 4 मि.ली. मात्रा को 20 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।
करेला	साइकोसिल 250 पी.पी.एम.5 ग्राम को 20 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।	
खीरा	1 एम.एच. 50 पी.पी.एम. 2 साईकोसिल 250 प्रतिशत का 100 पी.पी.एम.	4 ग्राम एम.एच. की मात्रा को 20 ली. पानी में घोलकर छिड़काव करें।5 ग्राम को 20 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।
तरबूज	जिब्रैलिक एसिड 25 पी.पी.एम.	आधा ग्राम को 20 लीटर पानी में घोलकर कर छिड़काव करें।

2. रोग एवं कीटग्रस्त फलों को गहरे गड्ढ़ें में दबा दें एवं गहरे गड्ढ़े के ऊपर मिथाइल पेराथिआन या मेलाथियान धूल का भुरकाव कर दें।
3. फसल के ऊपर मेलाथियान (1 मि.ली.) एवं शीरा (1 ग्राम) प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिड़के।

लाल कद्दू भृंग - इस कीट के प्रोढ़ नारंगी लाल रंग के होते हैं। जिनके उदर एवं वक्ष का निचला हिस्सा काले रंग का होता है। इस कीट की सूंडियां (ग्रब) पीलापन लिये हुए सफेद रंग की होती है।

इस कीट के प्रोढ़ एवं सूंडिया दोनों ही पौधों को नुकसान पहुंचाते है सूंडिया जमीन के अन्दर रहकर पौधों की जड़ों एवं तने को नुकसान पहुँचती है। इसी के साथ साथ जमीन में लगे फल में भी सूंडियां छेद करके फलों को नष्ट कर देती है। प्रोढ़ कीट पौधों की पत्तियों में छेद करके नुकसान पहुंचाते हैं। जिससे छोटी अवस्था में पौधे सुख कर मर जाते हैं।

प्रबंधन -

1. फसल बुवाई हेतु प्रतिरोधी जाति का चयन करें एवं अगेती बुवाई करें।
2. दो लीटर क्लोरपारीफाॅस को 2.5 कि. ग्रा. राख में मिलाकर मिश्रण तैयार करें। मार्च के महीने में ऐसे 25 कि.ग्रा. मिश्रण को पौधों की जड़ों के पास मिट्टी में मिलायें।
3. अधिक प्रकोप की अवस्था में फसल के ऊपर 1.5 प्रतिशत कार्बारिल या 5 प्रतिशत मेलाथियान धूल (25 कि.ग्रा./हे.) का भुरकाव करें।

नीमेटोड -

कद्दू वर्गीय सब्जियों में नेमेटोड काफी नुकसान पहुंचाते हैं। इनका प्रकोप पौधों की जड़ों पर होता है। पौधों की जड़ों पर काफी संख्या में गांठे बन जाने से पौधा भूमि से पोषक तत्व एवं जल ग्रहण नहीं कर पाता, जिससे प्रभावि पौधा पीला पड़ जाता है, एवं पौधे छोटे रह जाते है।

प्रबंधन -

1. जिस खेत में फसल के ऊपर नेमेटोड का प्रकोप हो जाए, उस खेत में अगले 4-5 वर्षो तक कद्दू वर्गीय फसलों की बुवाई न करें।
2. खेत की तैयारी के समय 150-200 कि.ग्रा. नीम की खली प्रति हैक्टेयर के हिसाब से मिलायें।

उकठा रोग -

यह रोग फफूंदी जनित रोग हैं जिसके द्वारा नये एवं पुराने दोनों प्रकार के पौधे प्रभावित होते हैं। नये पौधों की पत्तियां एक के बाद सुखकर पूरा पौधा सूख जाता है। पुराने पौधे में पहले पत्तियों में पीलापन आता है इसके तुरन्त बाद पत्तियां एवं वृंत मुरझाने लगते हैं तथा कुछ ही दिनों में पौधा सुख जाता है। पौधे की जड़ तथा तने को बीच में से चीर कर देखने पर अन्दर से भूरा रंग दिखाई देता है।

चूर्णिता असिता रोग -

इस रोग से प्रभावित पौधों की पत्तियों एवं तने के ऊपर सफेद रंग का चूर्ण फैल जाता है जो धीरे-धीरे पूरी पत्तियों को ढ़क लेता है जिसके परिणामस्वरूप पौधों की वृद्धि रूक जाती है तथा पौधों के सूख जाने से उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

एन्थ्रकनोज -

यह फफंूदी जनित रोग है। इस रोग से प्रभावित पौधों की पत्तियों पर पीले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं जो बाद में भूरे या काले रंग के हो जाते हैं। इस रोग के प्रकोप से पौधे की पत्तियां सूखने लगती है, जिसके फलस्वरूप फसल का उत्पादन घट जाता है।

मोजेक -

यह विषाणु से होने वाला रोग है। रोग ग्रसित पौधों से विषाणु स्वस्थ पौधों तक कीट द्वारा फैलाया जाता है। रोग का प्रकोप होने पर पत्तियों की नसों के बीच का भाग कहीं पीला कहीं हरा हो जाता है तथा उग्र प्रकोप की दशा में सम्पूर्ण पत्तियां पीली दिखाई पड़ती है।

रोगों का प्रबंधन

1. बुवाई पूर्व बीज का उपचार ट्राइकोडर्मा (5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) या केप्टान या थाइरम (2 ग्राम/कि.ग्रा.) द्वारा करें।
2. पहले प्रति गड्ढ़ा 10 ग्राम ट्राइकोडर्मा मिट्टी से मिलायें जिससे पदगलन एवं उकठा रोग की रोगथाम के लिए कार्बेडाजिम (1 ग्राम/लीटर पानी या कैलक्सिन (1मि.ली./लीटर पानी) का छिड़काव करें।
3. तुलासिता रोग की रोकथाम हेतु मेंकोजेब (2.5 ग्राम/लीटर पानी) के छिड़काव द्वारा करें।
4. एंथ्रेक्नोज रोग की रोकथाम तुलासिता रोग में बनाए उपाय की तरह करें।
5. मोजेक रोग की रोकथाम हेतु प्रभावित पौधों को उखाड़कर गहरे गड्ढे में दबा दें एवं फसल के ऊपर आॅक्सी डिमेटोन मिथाइल (1.5 ग्राम/लीटर पानी) का छिड़काव करें।

10.13 तोड़ाई

कद्दुवर्गीय सब्जियाँ में फलों की तोड़ाई पूर्ण विकसित मुलायम एवं कोमल अवस्था में ही करना चाहिए। फलों की तोड़ाई फसल के अनुसार 2-3 दिनों के अन्तराल पर करना अच्छा होता है अन्यथा फलों की गुणवत्ता कम होने लगती है। फल की ऊपरी छिलका व बीज कठोर होने लगता है।

10.18 उपज

इन फसलों की उपज में लगाई गई फसलें, किस्मों अपनाइ गई तकनीक एवं मौसम के अनुसार काफी अंतर पाया जाता है जैसे ग्रीष्मकालीन की अपेक्षा वर्षाकालीन फसल से अधिक उत्पादन प्राप्त होता है। विभिन्न फसलों की औसत उपज सारणी 1 में दी गई है।

10.19 सारांश

इस वर्ग की सब्जियों में अन्य की अपेक्षा कम कलौरी व सरलता से पचने का गुण होने के कारण अच्छे स्वास्थ्य व संतुलित आहार में इनकी अनुशंसा की जाती है। इसमें विटामिन्स, अमीनों अम्ल व खनिज लवण प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। जो कि शरीर में प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करते हैं। सब्जियाँ केवल उत्तम स्वास्थ्य व पोषण की दृष्टि से ही उत्तम नहीं होती अपितु इनके उत्पादन व लाभ अर्जित किया जा सकता है अतः इसका उत्पादन उन्नत तकनीक से किया जाना आवश्यक है।

10.20 बोध प्रष्न

1. कद्दुवर्गीय सब्जियों के उत्पादन की उन्नत तकनीक समझाइए?
2. कद्दुवर्गीय सब्जियों के नाम प्रमुख जातियां तथा उनका औसत उत्पादन बताइए।
3. कद्दुवर्गीय सब्जियों के मुख्य कीट एवं रोग तथा उनका नियंत्रण बताइए।

4. निम्न में से कौनसी किस्म लौकी की है?

अ पूसा विषेष　　　　ब पूसा सुप्रिया

स पूसा संदेष　　　　द पूसा विष्वास

10.21 संदर्भ ग्रंथ

1. Singh, Ranjit, 1992, Fruits, National Book Trust.
2. Katyal, S.L. and Chadha, K.L.., 1995, Vegetable Growing in India, Oxford and IBH Publishing Company, pp. 157.
3. Bose, T.K.., 1985, Friuts of India : Tropical and Sub-tropical, Naya Prokash, pp. 637.
4. Singh S.P., 1989, Production Technologies of Vegetable Crops, ARCC, pp. 380.
5. National Horticulture Data Base, National Horticuture Board Agriculture Ministry, Government of India.
6. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.
7. श्रीवास्तव, एस. एस., उद्‌ययान विज्ञान, 2013, सेंट्रल बुक हाउस, रायपुर.

इकाई 11

पत्तेदार सब्जियाँ

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 पालक
11.3 मेथी
11.4 धनियाँ
11.5 चैलाई एवं राजगिरा
11.6 कुल्फा
11.7 सलाद
11.8 पोई बैसिला एल्बा
11.9 सारांश
11.10 अभ्यास प्रष्न
11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप इस योग्य हो जाएगें कि -

- पत्तेदार सब्जियों के उत्पादन की उन्नत तकनीक ज्ञात कर पाएगें।
- पत्तेदार सब्जियों की उन्नत किस्में
- पत्तेदार सब्जियों का खाद एवम् उर्वरक
- पत्तेदार सब्जियों के कीट एवं रोग तथा नियंत्रण

11.1 प्रस्तावना

पत्तेदार सब्जियां का महत्व हमारे भोजन में बहुत है। ये हमारे भोजन में लोहे का मुख्य स्रोत हैं। पत्तेदार सब्जियों का उत्पादन बढ़ाने के लिए हमें इसकी उन्नत तकनीक का ज्ञान होना अति आवश्यक हैं। पत्तेदार सब्जियों में पालक, मैथी, धनिया, चैलाई, कुल्फा आदि की मुख्य खेती की जाती है।

11.2 पालक

वानस्पति नाम - स्पाईनेसिया ओलरेसिया

कुल - ऐरेसी

उन्नत किस्में

1. आल ग्रीन - शीघ्र तैयार होने वाली (40 दिन) तथा अधिक पत्तियाँ देने वाली किस्म है। इसे वर्ष पर्यन्त बुवाई कर सकते हैं। पत्तियाँ समान रूप से हरी होती हैं। औसत उपज 192 क्विंटल/हेक्टर होती है।
2. पूसा ज्योति - पत्तियाँ मुलायम, मोटी और मांसल होती हैं। आलग्रीन किस्म की तुलना में पोषक तत्व अधिक होते हैं। बोल्ंिटग देर से होती है और 6 से 8 बार काट सकते हैं।
3. बरजीनिया सैवाय - विलायती पालक की किस्म है। पत्तियाँ दागयुक्त, सिकुडी हुई मोटी, गहरी हरी और शीर्ष पर मुड़ी हुई रहती हैं। पौधे सीधे ओजस्वी होते हैं।
4. जोबनेर ग्रीन - उदयपुर विश्वविद्यालय (जोवनेर) द्वारा (म्यूटेशन होता है।) विकसित की गई है। पत्तियाँ एक समान हरी, बड़े आकार की, मोटी, गूदेदार, मुलायम, तेज सुगन्ध, किनारा सपाट उपज 296 क्ंिवटल प्रति हेक्टर होती है।

सामान्य विवरण

पालक या विलायती पालक, महत्वपूर्ण पत्तेदार सब्जी या भाजी है। चीन देश में अति प्राचीन काल से उगाई जाती है। पालक दो तरह की होती है - पालक या देशी पालक जो लंबी पत्तियों वाली गर्म मौसम में भी हो जाती है। पालक या विलायती पालक, ठंडे मौसम में होती है। गर्मी में शीघ्र ही फूलने लगती है जो अवांछनीय है। पालक में कैल्शियम या विटामिन 'ए' अधिक मात्रा में तथा फॉस्फोरस, आयरन और विटामिन 'सी' मध्यम मात्रा में पाया जाता है। पत्तियां शीतल, रेचक, स्वास्थ्यवर्धक, शमनकारी, सुपाच्य, कृमिनाशक, रक्त शोधक, मस्तिष्क , पथरी (गुर्दे में), स्कैबजी, श्वेत कुष्ठ, पित्त दोष में लाभदायक, वमनरोधी, कफ कारक, ज्वरनाशक (आयुर्वेद) बीज बोने के एक माह बाद काटने योग्य हो जाती हैं। कुल 4-6 कटाई प्राप्त होती है। प्रति हेक्टर 80-90 क्विंटल हरी पत्तियां प्राप्त होती है।

जलवायु, भूमि, सिंचाई

शरद ऋतु की सब्जी होते हुए भी मध्यम गर्म वातावरण में हो सकती है। अधिक तापक्रम उचित नहीं होता है। उत्तम जल-निकास वाली सभी प्रकार की भूमि में उगाई जा सकती है। शीत ऋतु में 10-12 दिन कं अंतर से सिंचाई करनी चाहिए। पत्तेदार सब्जी होने के कारण अधिक जल की आवश्यकता होती है।

खाद एवं उर्वरक

पत्तेदार सब्जी होने के कारण अधिक नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है, अतः 300-400 क्विवटल गोबर की खाद तथा 100 किलो नाइट्रोजन प्रति हेक्टर की आवश्यकता होती है। गोबर की खाद खेत की तैयारी के समय दें। नाइट्रोजन को 4 या 5 भागों में बांटकर प्रत्येक कटाई के बाद दें। उर्वरक फैलाकर दिया जा सकता है।

उद्यानिक क्रियाएं

बीज विवरण - प्रति हेक्टर बीज की मात्रा 25-30 किलो

बीज बोना - समय - फरवरी, मार्च, सितम्बर, नवम्बर, जून, जुलाई

अंतर कतार - 20 सेमी, पौधे 15 सेमी या छिड़काव द्वारा।

बीज - 3.5 सेमी, गहरे बुवाई कर ऊपर से मिट्टी ढंक देना चाहिए।

कटाई - पत्तियां जब पूर्ण विकसित हो जाएं तब काट लेना चाहिए। पत्तियां काटते समय यह ध्यान रखें कि पौधों को हानि न पहुंचने पाये।

11.3 मेथी

वानस्पतिक नाम - ट्राइगोनेला फीलमग्रीकम

कुल - लेग्युमिनोसी

मेथी मसाले की एक प्रमुख फसल है। इसकी हरी पत्तियों में प्रोटीन विटामिन 'सी' तथा खनिज तत्व पाये जाते है। बीज को मसाले तथा दवाई के रूप में उपयोग किया जाता है।

भूमि तथा जलवायु

मेथी को अच्छे जल निकास एवं पर्याप्त जैविक पदार्थ वाली सभी प्रकार की भूमि में उगाया जा सकता है। परन्तु दोमट मिट्टी इसके लिए उत्तम रहती है। यह ठण्डे मौसम की फसल है तथा पाले व लवणीयता को भी कुछ स्तर तक सहन कर सकती है।

खेत की तैयारी

भारी मिट्टी में खेत की 3 से 4 व हल्की मिट्टी में 2 से 3 जुताई करके पाटा लगा देना चाहिए तथा खरपतवार निकाल देना चाहिए। जुताई के समय 25 किलो क्यूनोलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण भूमि में मिला देना चाहिए।

खाद व उर्वरक

प्रति हेक्टेयर 10 से 15 टन अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद डाले। इसके अलावा 40 किलो नत्रजन एवं 40 किलो फॉस्फोरस प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई से पूर्व खेत में उर कर देवें। मेथी में बुवाई से पूर्व 5 किलो जस्ता एवं 10 किलो गंधक चूर्ण प्रति हेक्टेयर देवें।

उपयुक्त किस्में

1. आर.ए.टी. -01

   यह राजस्थान के सभी भागों के लिए उपयुक्त है। इसके दाने आकर्षक, चमकीले व पीले होते है। यह जड़, गलन एवं छाछ्या रोग के प्रति मध्यम प्रतिरोधी है एवं 140 से 150 दिन में पकड़कर औसतन 15 से 20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक उपज देती है।

2. आर.एम.टी. 143

   इसके दाने मोटे एवं पीले रंग के होते हैं । छाछ्या रोग के लिए मध्यम प्रतिरोधी किस्म, समयावधि 140-150 दिन औसतम उपज 16 क्विंटल प्रति हेक्टेयर।

3. राजेन्द्र क्रांति

   अधिक पैदावार, मध्यम ऊँचाई, झाड़ीदार पौधा, अधिक शाखा युक्त व मिश्रित फसल (बुवाई) के लिए उपयुक्त, पर्णधब्बा रोग से प्रतिरोधी,समयावधि 120 दिन, दाना उपज 12-14 क्विंटल प्रति हेक्टेयर।

4. पूसा अर्ली बंच (पी.ई.बी.)

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकसित यह अगेती प्रजाति है। यह सामान्य मेथी है तथा पकने से 156 दिनों का समय लेती है।

5. पूसा कसूरी

विपुल उत्पादक, देर से फूलने वाली तथा अधिक संख्या में कटाई देने वाली किस्म है। पत्तियों में विशेष गंध होती है।

6. प्लूम - 55 तथा प्लूम 57 -

यह किस्म 140 से 145 दिन में तैयार होकर 16 से 18 क्विंटल/हेक्टर उपज देती है।

7. सी.एस. - 381

यह किस्म 155 से 160 दिन में तैयार होकर 18 से 20 क्विंटल/हेक्टर उपज देती है।

बीज की मात्रा एवं बुवाई

मेथी की बुवाई अक्टूबर के अंतिम सप्ताह से नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक की जाती है। इसके लिए 20-25 किलो बीज की प्रति हैक्टेयर आवश्यकता होती है। बीजों को 30 सेन्टीमीटर की दूरी पर कतारों में 5 सेन्टीमीटर की गहराई पर बोना चाहिए। बुवाई पूर्व बीज को 4 से 6 ग्राम ट्राईकोडर्मा प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें।

सिंचाई एवं निराई - गुड़ाई

बीज बोने के बाद हल्की सिंवाई करें। इसके बाद आवश्यकतानुसार 15 से 20 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए। बुवाई के 30 दिन बाद निराई गुड़ाई कर पौधों की छंटाई कर देनी चाहिए। आवश्यकता हो तो 50 दिन बाद दूसरी निराई गुड़ाई करें। खरपतवार नियंत्रण हेतु निम्न रसायनों का भी प्रयोग करने से उपज व मुनाफे मेंकोई कमी नहीं आती है।

फ्लूक्लोरीन 0.75किलोग्राम सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर (2.5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में) या पेण्डामेथेलिन 0.75 मिलोग्राम सक्रिय तत्व (2.5 लीटर स्टाम्प एक 34) प्रति हेक्टेयर (33 मिलीलीटर प्रति दस लीटर पानी में)

उपरोक्त रसायनों में से किसी एक को लगभग 750 लीटर पानी में मिलाकर बुवाई के दूसरे दिन छिड़काव कर भूमि मेंमिला दें। छिड़काव के समय खेत में पर्याप्त नहीं होनी चाहिए।

प्रमुख कीट एवं व्याधियां

मोयला

यह कीट पौधों के कोमल भागों का रस चूसता है तथा इसके आक्रमण से फसल को नुकसान होता है।

नियंत्रण

फसल पर डाइमिथोएट 30 ई.सी. या मेलाथियान 50 ई.सी. एक मिलीलीटर का प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करना चाहिए। आवश्यकता हो तो 10-15 दिन बाद इस उपचार को दोहरावें।

छाछ्या

इस रोग के प्रकोप से पौधों की पत्तियों पर सफेद चूर्ण दिखाई देने लगता है तथा पूरे पौधों पर फैल जाता है। इससे काफी नुकसान होता है।

नियंत्रण

फसल पर गन्धक के चूर्ण का 20 से 25 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से भुरकाव करें या कैरोथेन एल सी एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार छिड़काव 10 से 15 दिन बाद दोहराना चाहिए।

तुलसिता (डाउनी मिल्ड्यू)

इस रोग में पत्तियों की ऊपरी सतह पर पीले धब्बे दिखाई देते है व नीचे की सतह पर फफूंद की वृद्धि दिखाई देती है। अग्र अवस्था में रोग ग्रस्ति पत्तियां झड़ जाती है।

नियंत्रण

मेन्कोजेब 2 ग्राम लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर इसे 15 दिन बाद दोहराना चाहिए।

कटाई

जब पौधें की पत्तियां झड़ने लगे व पौधे पीले रंग के हो जाये तो पौधों को उखाड़कर या दांतली से काटकर खेत में छोटी छोटी ढेरियों में रखें। सूखने के बाद कुट कर उाने अलग कर लेवें। साफ दानों को पूर्ण रूप से सुखाने के बाद बोरियों में भरें।

उपज

समुचित कृषि क्रियाओं को अपनाने से 15 से 20 क्विंटल बीज की प्रति हेक्टेयर पैदावार हो सकती है।

11.4 धनियाँ

वानस्पतिक नाम - कोरिएन्ड्रम सेटाइवम

कुल - अम्बेलीफेरी

विभिन्न प्रकार के मसालों की फसलों में धनियें का प्रमुख स्थान है। इसकी पत्तियों व दानों, दोनों का ही प्रयोग किया जाता है। पत्तियों में शर्करा, प्रोटीन व विटामिन 'ए' पाया जाता है।

जलवायु एवं भूमि

धनियां हर प्रकार की जलवायु में उगाया जा सकता है लेकिन इसकी खेती वाले क्षेत्रों में पाला नहीं पड़ना चाहिए क्योंकि पाले से फसल को अत्याधिक हानि होती है।

धनिया हर प्रकार की जलवायु में उगाया जा सकता है। लेकिन दोमट भूमि इसके लिए उत्तम रहती है। असिंचित फसल के लिये काली या भारी मिट्टी, जो नमी को अधिक समय तक सिंचित कर सकें, अच्छी रहती है।

भूमि की तैयारी

बुवाई से पूर्व खेत की दो तीन बार गहरी जुताई कर मिट्टी को भुरभुरी कर लेनी चाहिए। जुताई के बाद पाटा लगाकर खेत समतल करें।

उन्नत किस्में

1. आर.सी.आर. 41

   यह किस्म सिंचित खेती के लिए राजस्थान के सभी क्षेत्रों के लिए उपयोगी पाई गई है। इसके दाने सुड़ौल, गोल व छोटे होते है। यह तथा सृजन व उखटा रोगों से ग्रसित नहीं होती है।

140-145 दिन में पक कर तैयार हो जाती है। इसकी औसत उपज सिंचित क्षेत्र में 10-12 क्विंटल एवं असिंचित क्षेत्र में 4-7 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

2. सी.एस.6 (स्वाती)

फसल समायावधि 80-90 दिन, अधिक पैदावार, मध्यम उध्व देरी से बुवाई के लिए उपयुक्त, चूर्णित फफूंद (छाछया) से मुक्त, तेल मात्रा 0.3 प्रतिशत होती है। अधिक पैदावार, बारानी क्षेत्रों हेतु उपयुक्त मध्यम उध्व, चैपा व बरूथी के प्रतिरोधी, फसल समयावधि 95-105 दिन मध्यम - गुन्टर (आन्ध्रप्रदेश से विकसित किस्म)

3. आर.सी. - 436

मोटे दाने वाली किस्म, बारानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त, समयावधि 100 से 105 दिन, तेल की मात्रा 0.3 प्रतिशत, मूल ग्रंथी रोग के लिए मध्यम प्रतिरोधी, दाना उपज 12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर।

4. पंत हरितमा

हरि पत्तियां एवं दाना उत्पादन के लिए दोहरी किस्म, दानों का आकार छोटा एवं गहरा हरा रंग लिये दानों में अच्छी खूशबू होती है। तना पिटिका रोग (स्टेम गाल) से प्रतिरोध किस्म,दाना उपज।

5. सिम्पो, एस. - 33

छोटे आकार की अत्यन्त ही सुगन्धित तेलयुक्त किस्म है। फसल 140 से 150 दिन में तैयार हो जाती है। उपज 18 से 20 क्विं प्रति हेक्टर प्राप्त होती है। हरी पत्तियों के लिए भी उचित किस्म है।

6. ग्वालिय नं0 - 5365

शीघ्र तैयार होने वाली (110-115 दिन) तथा फ्यूजेरियम विल्ट की प्रतिरोधक किस्म है। छाने समान रूप से पड़ते हैं। उपज, सीचिंत में 9-10 क्विं तथा असिंचित में 4-5 क्ंवि. प्रति हेक्टर दाने के रूप् में मिलती है।

7. मोरोक्कन

शीघ्र तैयार होने वाली (110-115 दिन) तथा सुगन्धित किस्म है। निर्यात के लिए उपयुक्त होती है। उपज सिंचित में 10 क्विंटल तथा असिंचित में 5-6 क्विंटल प्रति हेक्टर दाने के रूप में होती है।

8. बी-2

देर से तैयार होने वाली (135 दिन) किस्म है। दाना बारीक होता है। पत्तियों के लिए उपयुक्त किस्म है, इसलिए इसे कटवां धनियां भी कहते हैं। उपज सिंचित में 8-10 क्विंटल तथा असिंचित में 5-6 क्विंटल प्रति हेक्टर दाने के रूप में प्राप्त होती है।

9. गुजराज धनियाँ

यह 115 से 125 दिनों में तैयार होकर 10-12 क्विंटल प्रति हेक्टर बीज उत्पन्न करती है। शीघ्र बोने के लिये उपयुक्त होती है।

10. आर.डी. 44

यह सुगन्धित तेल के लिए उपयुक्त होती है और फल मक्खी रोधी किस्म है। यह 100 से 105 दिनों में तैयार होकर 12-13 क्विंटल प्रति हेक्टर देती है।

बीज की मात्रा एवं बुवाई

इसके अच्छे उत्पादन के लिए 15 से 20 किलो बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त रहता है। बीज को बुवाई से पूर्व 2 ग्राम एग्रोसन की जी एन या 3 ग्राम थाइरम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित कर बोना चाहिए।

बुवाई के पूर्व को समतल पक्के फर्श पर डालकर पावों से या अन्य सुविधाजनक चीज से रगड़कर दो भागों में विभाजित कर लेना चाहिए। यह काम करते समय ध्यान रखें कि बीज का अंकुरण वाला भाग न टूटने पाये। बीज की बुवाई कतार से कतार की दूरी 30 सेन्टीमीटर रखते हुए तल के पीछे कुंड में करनी चाहिए। बीज को 3-4 सेन्टीमीटर से ज्यादा गहरा नहीं बोना चाहिए।

बुवाई का समय -

दाने की फसल के लिए धनिये की बुवाई का उपयुक्त समय 15 अक्टूबर से 15 नवम्बर तक है। जल्दी बुवाई करने से अधिक तापमान के कारण अंकुरण में बाधा आती है। जबकि देर से बुवाई करने से पौध की बढ़वार कम होती है तथा अधिक बीमारी आने की सम्भावना रहती है। पाला पड़ने वाले क्षेत्रों में बुवाई ऐसे समय पर करनी चाहिए कि फसल में फूल आने के समय पाला पड़ने की सम्भावना न रहें क्योंकि इस अवस्था में पाले से फसल को सबसे अधिक नुकसान होता है।

खाद एवं उर्वरक -

धनिये की फसल में 150-200 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर की खाद खेत तैयार करते समय चोत में मिलावें।

असिंचित क्षेत्रों में 20 किलो नत्रजन, 30 किलो फास्फोरस एवं 20 किलो पोटाश प्रति हेक्टेयर देवें। नत्रजन की एक तिहाई मात्रा तथा फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा खेत की तैयारी के समय मिला देना चाहिए। शेष 40 किलो नत्रजन की मात्रा दोबारा में 20 किलो मात्रा प्रथम सिंचाई के समय एवं शेष 20 किलो नत्रजन फूल आते समय डाले।

सिंचाई

सिंचित क्षेत्र में पलेवा के अतिरिक्त 4 से 6 सिंचाईयां की आवश्यकता होती है।

पहली सिंचाई बुवाई के 35 से 45 दिन बाद, दूसरी सिंचाई 50 से 60 दिन बाद, तीसरी 70 से 80 दिन बार, चौथी सिंचाई 90 से 100 दिन, पांचवी 105 से 110 दिन एवं छठी 115 से 125 दिन के मध्य करनी चाहिए।

सिंचाई की संख्या बुवाई के समय, भूमि की किस्म एवं स्थानीय मौसम के आधार पर कम या ज्यादा की जा सकती है।

निराई गुड़ाई

धनिये की प्रारम्भिक बढ़वार बहुत धीमी होती है, इसलिए निराई करके खरपतवार निकालना जरूरी है। असिंचित फसल में बुवाई के 30-35 दिन बाद गुढ़ाई करें तथा सिंचित फसल में पहली निराई गुढ़ाई के लिए 40-45 दिन बाद करें व इसी समय पौधों के बीच 5 से 10 सेन्टीमीटर का फासला रखते हुए पौधों की छंटाई कर देवें। यदि खेत में खरपतवार फिर बढ़े तो बुवाई के 60 दिन बाद दूसरी निराई करें। परीक्षणों के आधार पर खरपतवार नियंत्रण के लिए निम्न रसायनों की सिफारिश की जाती है। पैन्डीमेथालीन एक किलो सक्रिय तत्व (3.33 लीटर स्टाम्प एफ -34) प्रति हेक्टेयर - 4.5 मिलीमीटर प्रति लीटर पानी के हिसाब से 75 लीटर पानी में घोल बनाकर अंकुरण से पूर्व छिड़काव करें। छिड़काव के समय भूमि में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।

प्रमुख कीट एवं व्याधियां

मोयला एवं बरूथी

धनिये की फसल में फूल आते समय या उसके उपरान्त मोयला का आक्रमण होता है।ये पौधे के कोमल भागों से रस चूसते है। जिससे उपज में भारी कमी आ जाती है। बरूथी कीट भी रस को चूसकर पौधां को हानि पहुंचाते है।

नियंत्रण हेतु फसल पर फास्फोमिडान 85 एस.एल. 03 मिली लीटर या मेथाथियान 50 ई. सी. एक मिलीलीटर प्रति लीटर हानि पहुंचाते है।

कटवर्म एवं वायर वर्म

इस कीट की सूण्डी शाम के समय पौधों को धरती के पास से काटकर गिरा देती है। इसका प्रकोप फसल की शुरू की अवस्था में होता है तथा इससे फसल को काफी नुकसान पहुंचता है।

नियंत्रण हेतु डाईमिथोएट 1 मि.ली. प्रति लीटर के हिसाब से भूमिमें जुताई के समय मिलाये अथवा क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. 4 लीटर प्रति हेक्टेयर के हिसाब से आखिरी जुताई के पहले भूमि में छिड़कें।

उखटा रोग (विल्ट)

इस रोग का प्रकोप पौधों की किसी भी अवस्था में हो सकता है। लेकिन यह पौधों की छोटी अवस्था में ज्यादा होता है। इस रोग के नियंत्रण हेतु

- गर्मी में खेत की गहरी जुताई करें।
- बीजों को वाविस्टीन 1.5ग्राम$1.5 ग्राम (1ः1) प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें।
- रोग रहित फसल के बीज को ही बुवाई के काम लेवें।
- रोग ग्रस्त खेत में उचित फसल चक्र अपनायें।
- केलेक्जिन 2 मिली प्रति लीटर एक बीघा में चार लीटर पानी के साथ।

छाछया (पावडरी मिल्ड्यू)

रोग ग्रस्त पौधों की पत्तियों एवं टहनियों पर सफेद चूर्ण दिखाई देता है। रोग का प्रकोप पौधों की प्रारम्भिक अवस्था में होने पर या तो बीज नहीं बनते या बहुत छोटे बनते है। बीजों का विपणन गुणवत्ता कम हो जाती है।

नियंत्रण हेतु गन्धक के चूर्ण का 20 से 25 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से भुरकाव करें या घुलनशील गंधक चूर्ण 2 ग्राम या कैराथियान एक सी एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल बना कर छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव दोहरायें।

झुलसा रोग (ब्लाइट)

इस रोग से तने और पत्तियां झुलसी हुई दिखती है। वर्षा होने पर रोगकी सम्भावना बढ़ जाती है।

नियंत्रण हेतु बैलीटान एक ग्राम या मैन्कोजेब 2 ग्राम या सिस्थेन 400 मिलीग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

तना पिटिका रोग (स्टेम गॉल)

इस रोग के कारण पत्तियों व तने पर विभिन्न आकार के फफोले बन जाते हैं। पौधे पीले पड़ जाते है तथा बढ़वार रूक जाती है। पुष्प क्रम पर आक्रमण होने पर बीज बनने की प्रक्रिया पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। बीजों की शक्ल बदल जाती है। नमी की उपस्थिति में बीमारी का प्रकोप बढ़ जाता है।

नियंत्रण हेतु बुवाई से पूर्व बीजों को थाइरम 1.5 ग्राम+बाविस्टिन 1.5 ग्राम (1:1) प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार कर बुवाई करें।

खड़ी फसल में बीमारी के लक्षण दिखाई देने पर बेलिटोन एक ग्राम या सिस्थेन 0.4 मिलीग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें। छिड़काव आवश्यकतानुसार 20 दिन के अन्तर पर दोहराये।

पाले से बचाव

पाले से फसल को भारी नुकसान होता है। जब पाला पड़ने की सम्भावना हो तब एक हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए। बारानी फसल में जहां पाले से अधिक नुकसान होता है वहां 0.1 प्रतिशत गन्धक के तेजाब को छिड़काव करना चाहिए। पाला पड़ने की आशंका के दिन सूर्योदय से पूर्व अगर खेत में धुंआ किया जाये तो फायदा होता है।

कटाई एवं गहाई

फसल 115-135 दिन में पक जाती है। फसल पकने पर दानों के रंग कुछ पीलापन आने लगता है। अतः इस समय फसल की कटाई करनी चाहिए। दानों को छाया में सुखाने के बाद पीटकर दाने अलग कर लेवें। भण्डारण करते समय ध्यान रखें कि दानों में नमी 10 प्रतिशत से अधिक न हो अन्यथा दानों के सड़ने की सम्भावना रहती है।

उपज

इसकी उपज सामान्यतः 5 से 8 क्विंटल प्रति हेक्टेयर असिंचित क्षेत्र में तथा 12 से 20 क्विंटल सिंचित क्षेत्र में होती है।

11.5 चैलाई एवं राजगिरा

वानस्पतिक नाम - ऐमारेन्थस ओलेरेशिया/ट्राइकलर

ऐमारेन्थस कॉडेटस

ऐमारेन्थस डुबियस

कुल - ऐमारेन्थसी

उन्नत किस्में

1. पूसा चैलाई - ऊँचाई 90 सेमी होती है। तना हरा, मध्यम छोटा और मुलायम होता है। पत्तियां मध्यम बड़ी, हरी तथा डण्ठल हरा होता है।
2. बड़ी चैलाई - 35 दिन में काटने योग्य हो जाती है। कुल 8 कटाई प्राप्त होती है। जिसका भार 60 क्विंटल/हेक्टर होता है। काँटे रहित, हरी मुलायम पत्तियां, तना हरा, मध्यम मोटा और मुलायम होता है। डण्ठल हरा होता है।
3. चोटी चैलाई - पत्तियां छोटी होती है। अधिक स्वादिष्ट होती है।

सामान्य विवरण

चौलाई कई प्रकार की होती है, जिसको अलग-अलग नामों से जाना जाता है, जैसे

1. छोटी चैलाई (ऐमरेंथस ब्लिटम)
2. बड़ी चैलाई (ए. ट्रिकलर)
3. राजगिरा (ए. काडेटस)
4. खेड़ा भाजी (ए. डुबियस)

चैलाई की हरी तथा रंगीन पत्तियां तथा कोमल तने सब्जी के रूप में उपयोग किये जाते हैं। प्रोटीन खनिज तत्व तथा विटामिन ए अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध रहते हैं। विटामिन सी भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

चैलाई (ए. स्पाइनोसम) - पौधा शीतल, सुपाच्य, दस्तावर, मूत्रवर्धक, पाचक, ज्वरनाशक, कफ, पित्त, रक्त विकार, जलन, कुष्ठ, ब्रोन्काइटिंस में उपयोगी। दांत का दर्द, यकृत के रोग सुजन आदि में उपयोगी।

राजगिरा (ए. कोडेटस) - दस्तावर, निद्राजनक, क्षुधावर्धक, पित्त और कफ नाशक, रक्त शोधन।

बड़ी चैलाई (ए. ट्रिकलर) - पत्तियां मीठी, कफ निस्सारक, घाव भरने वाला, लेप के लिये उपयोगी (आयुर्वेद)।

राजगिरा बीज के लिये भी उगाई जाती है। बीज बोने के एक माह पश्चात् कटाई के योग्य हो जाती है। छोटी चैलाई में 6 तथा बड़ी चैलाई में 8-10 कटाई की जाती है, जिनकी एक उपज क्रमशः 40 तथा 60 क्विंटल हरी पत्ती के रूप में प्रति हेक्टर आती है। बीज दो क्विंटल प्रति हेक्टर होता है।

आवश्यकताएं

जलवायु, भूमि, सिंचाई - अति शीतल वातावरण को छोड़कर अन्य वातावरण में उगायी जा सकती है। सभी प्रकार की जल निकास वाली भूमि उपयुक्त होती है। सिंचाई शरद ऋतु में 8-10 दिन तथा ग्रीष्म में 4 से 6 दिन के अंतर से की जाती है। अनुमानतः 100-150 क्विंटल गोबर की खाद या कम्पोस्ट, 50 किलो नाइट्रोजन 25 किलो फॉस्फोरस की आवश्यकता होती है।

उद्यानिक क्रियाएं

बीज विवरण - प्रति हेक्टर बीज की मात्रा 1-2 किलो छोटी चैलाई, 2-3 किलो बड़ी चैलाई

बीज बोना - समय - मार्च से जून

अंतर कतार - 20-25 सेमी, पौधे 10-15 सेमी या छिड़ककर।

कटाई - समूची उखाड़कर या काटकर पत्तियां ली जाती है।

11.6 कुल्फा

वानस्पतिक नाम - पोरट्रूलाका ओलरेसिया

कुल - पोट्रूलैकेसी

अन्य भाजियों के समान कुल्फा भी खनिज तत्वों तथा विटामिन से भरपूर होती है, किन्तु ये तत्व अपेक्षाकृत कम मात्रा में होते हैं। पत्तियां खट्टी, कड़वी, नमकीन, पाचक, शीतल, दस्तावर, बात और कफ में उपयोगी तथा गांठ, सूजन, फोड़ा, अस्थमा, तथा उर्वरक चैलाई के समान दिया जा सकता है। प्रति हेक्टर 2-3 किलो बीज आवश्यक होता है। बीज फरवरी से लेकर अप्रेल तक बोये जा सकते हैं। बीज बोने से 35 दिन बाद पत्तियां तैयार हो जाती हैं। 15 दिन के अंतर से कटाई करने पर 3-4 कटाई प्राप्त होती है। कुल हरी पत्तियां 30-50 क्विंटल प्रति हेक्टर प्राप्त हो जाती है।

11.7 सलाद

वानस्पतिक नाम - लैक्ट्रूका सैटाइवा कैपिटाटा

कुल - कम्पोजिटी

सामान्य विवरण

सलाद गृह वाटिकाओं के लिए अनिवार्य सब्जी मानी जाती है। इसका उपयोग कच्चा ही किया जाता है। पत्तियां मीठी, सुपाच्य, रक्तशोधक, क्षुधावर्धक, पित्तनाशक, स्तन्य वर्धक, जलन, सिरदर्द, नाक, के रोग ब्रोन्काटिंस, हृदय रोग, प्रदर रोग, और ज्वर में लाभदायक (आयुर्वेद)। इसका उत्पति स्थल यूरोप और एशिया माना जाता है। खनिज एवं विटामिन पर्याप्त मात्रा में होते हैं। उपज 100-150 क्विंटल हरी पत्तियों के रूप में प्रति हेक्टर प्राप्त होती है।

उन्नत किस्में

1. चायनीज यलो - शीघ्र तैयार होने वाली, ढीली पत्तियों वाली तथा नान-हेडिंग किस्म है। पत्तियां हल्की हरी, कुककुरी होती ओर मुलायम होती हैं।
2. ग्रेट लेक्स - शीर्ष बड़ा, दृढ़ मुड़ा हुआ और ऊपर चपटा होता है। पत्तियां गहरी हरी झुरींदार, किनारों वाली, चमकदार ओर कुरकुरी होती है। हेडिंग किस्म है।

आवश्यकताएं

जलवायु, भूमि, सिंचाई - शीतल वातावरण में उत्पन्न होती है। 55 से 65 फा. तापमान सर्वोत्तम माना जाता है।

गर्म वातावरण में पत्तियां कड़ी तथा कड़बी हो जाती है। सलाद में 70 डिग्री से 80 डिग्री फा. फूल आ जाते हैं जो कि उपयोगी की दृष्टि से अवांछनीय है। उत्तम जल निकास भूमि उपयुक्त होती है, जैसे रेतीली-दुमट आदि सिंचाई की अधिक आवश्यकता होती है, अतः आवश्यकतानुसार 8 या 10 दिन कं अंतर में पानी देना चाहिएं ।

खाद एवं उर्वरक - गोबर की खाद या कम्पोस्ट 180 से 360 क्विंटल प्रति हेक्टर, 24-50 किलो फॉस्फोरस तथा 50 किलो पोटाश प्रति हेक्टर खेत की तैयारी के समय देना चाहिए। नाइट्रोजन 50 से 80 किलो प्रति हेक्टर टॉप ड्रसिंग के रूप में देना चाहिए।

उद्यानिक क्रियाएं

बीज विवरण - बीज की मात्रा प्रति हेक्टर 500-750 ग्राम (नर्सरी में पौधे तैयार करने के लिए) सीधे खेत में बोने पर 1875 से 2500 ग्रा. (सलाद को पौध रोपण और सीधे बुवाई करके, दोनों विधियों से उगाया जाता है।

समय - अक्टूबर से नवम्बर

अंतर - कतार 45-60 सेमी, पौधा 30-45 सेमी

पत्तियों के पूर्णरूपेण विकसित हो जाने पर जब सुंदर आकार की हो जाएं तब उन्हें काट लेना चाहिए।

सलाद के समान ही सेलरी (एपियम ग्रविऔलेंस) पार्सली (पेट्रोसेलिनम हार्टेन्स) क्रैस (लेपीडिम सेटिवम), एस्पेरेगस (एस्पेरेगस ऑफिसिलेनिस) तथा लीक (एलियम पोरम) का उत्पादन किया जा सकता है।

11.8 पोई बैसिला एल्बा

यह बेल वाली सब्जी है, जिसका तना और पत्तियां गूद्देदार तथा मुलायम होती है। पोई की पत्तियों में विटामिन 'ए' अत्यधिक मात्रा में होता है। इसका उपयोग मिश्रित सब्जी के रूप में किया जाता है। पौधा तीखा, मीठा, गर्म, उत्तेजक, मोटापाकारक, दस्तावर, क्षुधावर्धक, गर्मी शांत करने वाला, पित्तरोग, कुष्ठ आंव, फोड़ा, सुजाक में उपयोगी (आयुर्वेद) । एक बार लगाने से अनेक वर्षों तक पत्तियां देती रहती है। औसत उपज 150 से 175 क्विंटल प्रति हेक्टर पत्तियां प्राप्त होती हैं। पाले से हानि होती है। बीज की मात्रा प्रति हेक्टर 15-20 किलो होती है। कलमें भी उगाई जाती है। लगाने का समय जून-जूलाई है। 0.50 से 0.75 मी. के अंतर में लगाई जाती है। बेल को मंडप या बांस के सहारे चढ़ाया जाता है।

11.9 सारांश

पत्तेदार सब्जियों में पालक, मैथी, धनिया, चैलाई, कुल्फा प्रमुख है। इसके विभिन्न प्रकार की किस्में पाई जाती हैं, जिनकी खुद की विशेषताएं हैं। पत्तेदार सब्जियों के उत्पादन की उन्नत तकनीक द्वारा करने पर इसके उत्पादन में बढ़ोतरी संभव है। कई तरह के कीट एवं रोग इनमें पाऐ जाते हैं, जिनका यदि समय पर नियंत्रण ना किया जाए तो ये इनके उत्पादन में विपरित प्रभाव डालते हैं।

11.10 अभ्यास प्रष्न

1 धनिया उत्पादन की उन्नत तकनीक समझाइए।

2 मेथी की उन्नत किस्मों का वर्णन कजिए।

3 निम्न में से कौनसी किस्म पालक की हैं?

अ आल ग्रीन ब जोबनेर ग्रीन
स पूसा ज्योति द उपरोक्त सभी

4 चैलाई का कुल क्या है?
अ ऐमारेन्थसी ब लेग्यूमिनोसी
स अम्बेलीफेरी द कम्पोजिटी

5 आर्द्र गलन रोग का रोगजनक है।
अ पिथियम जाति ब सर्कोस्पोरा
स जैन्थोमोनास बेटलीकोला द विषाणु

11.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Singh, Ranjit, 1992, Fruits, National Book Trust.
2. Katyal, S.L. and Chadha, K.L., 1995, Vegetable Growing in India, Oxford and IBH Publishing Company, pp. 157.
3. Bose, T.K., 1985, Fruits of India : Tropical and Sub-tropical, Naya Prokash, pp. 637
4. Singh, S.P., 1989, Production Technologies of Vegetable Crops, ARCC, PP. 380.
5. National Horticulture Data Base, National Horticulture Board Agriculture Ministry, Government of India.
6. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.
7. वास्तव, एस. एस., उद्‌ययान विज्ञान, 2013, सेंट्रल बुक हाउस, रायपुर.

इकाई 12

गोभीवर्गीय कुल

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 फूल गोभी

12.2.1 जलवायु एवं भूमि

12.2.2 उपयुक्त किस्में

12.2.3 खेत की तैयारी

12.2.4 नर्सरी तैयार करना

12.2.5 पौध की रोपाई

12.2.6 खाद एवं उर्वरक

12.2.7 सिंचाई

12.2.8 निराई गुड़ाई

12.2.9 प्रमुख कीट

12.2.10 प्रमुख व्याधियां

12.2.11 उपज

12.3 पत्ता गोभी

12.3.1 जलवायु

12.3.2 भूमि एवं इसकी तैयारी

12.3.3 नर्सरी तैयार करना

12.3.4 उपयुक्त किस्में

12.3.5 रोपाई

12.3.6 सिंचाई

12.3.7 निराई गुडाई

12.3.8 प्रमुख कीट एवं व्याधियां

12.3.9 तुडाई एवं उपज

12.4 गांठ गोभी

12.4.1 सामान्य विवरण

12.4.2 उपयुक्त किस्म

12.4.3 जलवायु

12.4.4 उद्यानिक क्रियाएं

12.5 सारांश
12.6 अभ्यास प्रश्न
12.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

12.0 उद्देश्य

- इस इकाई से हमें यह ज्ञान प्राप्त होता है
- गोभीवर्गीय सब्जियों के उत्पादन की उन्नत तकनीकी
- गोभीवर्गीय सब्जियों की उन्नत किस्में
- इनकी सही बीज दर व बीजोपचार
- सही मात्रा में खाद उर्वरक
- गोभीवर्गीय सब्जियों के मुख्य रोग एवं उनका नियंत्रण

12.1 प्रस्तावना

सर्दी के मौसम की सब्जियों में फूल गोभी का प्रमुख स्थान है।इसमें विटामिन की पर्याप्त मात्रा होती है तथा अन्य सब्जियों मी तुलना में प्रोटीन भी अच्छी मात्रा में पाई जाती है। सब्जी के अलावा इसका उपयोग सूप तथा अचार बनाने के लिए भी किया जाता है।

12.2 फूल गोभी

12.2.1 जलवायु एवं भूमि

फूल गोभी की सबसे अच्छी खेती ठण्डी नम जलवायु में होती है। यह अधिक ठण्ड या गर्मी सहन नहीं कर पाती है शुष्क मौसम ओर कम नमी भी इस फसल के लिऐ अनुकूल नहीं है। फूल आने के समय अधिक तापमान बढ़ने से फूल पीला पड़ जाते हैं तथा इसके बीच में छोटी छोटी पत्तियां उग आती है।

फूल गोभी अनेक प्रकार की ऐसी मिट्टी में उगायी जा सकती है। जिसमें पोषक तत्वों और जीवांश की पर्याप्त मात्रा हो तथा पर्याप्त नमी हो। साथ ही निकास की समुचित व्यवस्था भी होना आवश्यक है। अगेती किस्मों के लिए बलूई दोमट तथा पिछेती किस्मों के लिए चिकनी दोमट मिट्टी उपयुक्त रहती है।

12.2.2 उपयुक्त किस्में

बुवाई के समय अनुसार विभिन्न किस्मों को निम्न वर्गोंे में बांटा गया है -

अगेती किस्में (मध्य अगस्त से मध्य नवम्बर)

अर्ली पटना - इस किस्म के फूल मध्य सितम्बर से मध्य अक्टूबर तक उपलब्ध होती है।

अर्ली कुआंरी - इस किस्म के फूल मध्य सितम्बर से मध्य अक्टूबर तक आते हैं।

पूसा कातकी - इसके फूल नवम्बर तक उपलब्ध होते हैं तथा भूरे रंग के एवं बिखरे हुए होते है। फूल बनने के लिए 20 डिग्री सेन्टीग्रेड तक तापमान उपयुक्त होता है।

पूसा दीपाली - इसके फूल सफेद तथा भरे हुए होते हैं तथा अक्टूबर तक उपलब्ध होते हैं। फूल बनने के लिए उपयुक्त तापमान 20 डिग्री से 25 सेन्टीग्रेड है।

पूसा अर्ली सिंथेटिक एवं पत्ता गोभी - 3 आदि अन्य किस्में ओर है

मध्यम किस्में (मध्य नवम्बर से मध्य जनवरी)

इम्प्रूव्ड जापानीज - इसके फूल दिसम्बर से मध्य जनवरी तक उपलब्ध होते है। फूल सफेद तथा कसे हुए होते है। फूल बनने का उचित तापमान 16 से 19 डिग्री सेन्टीग्रेड है।

पूसा हाईब्रिड 2 एवं पूसा हिम ज्योति आदि अन्य किस्में है।

पिछेती किस्में

पूसा स्नोबान के - 1 - इस किस्म के फूल मध्य जनवरी से मार्च तक उपलब्ध होते हैं।

अन्य किस्में

हिसार -1, डानिया, सलेक्शन-7 प्रमुख है। फूल बनने के लिए 10 से 16 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान उपयुक्त है।

12.2.3 खेत की तैयारी

खेत की भली भांति जुताई कर मिट्टी को हल्का और भुरभुरा बना देना चाहिए। विपरित दिशाओं में मिट्टी पलटने वाले हल से एक या दो बार जुताई करें तथा इसके बाद देशी हल से तीन चार जुताई करना पर्याप्त होता है।

12.2.4 नर्सरी तैयार करना

फूल गोभी की पौध तैयार करने के लिए बीजों की बुवाई उठी हुई क्यारियों में जी जाती है। क्यारियों के लिए उपजाऊ एवं अच्छे जल निकास वाली भूमि का चयन करना चाहिए। बुवाई से पूर्व बीज को कैप्टान या थाईरम 2 से 3 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करना चाहिए।

गोभी की अगेती किस्मों की बुवाई मई से जून के अन्त तक, मध्यकालीन किस्मों की बुवाई जुलाई से अगस्त तक तथा पिछेती किस्मों की बुवाई सितम्बर के मध्य से अक्टूबर के अंत तक कर देनी चाहिए। अगेती किस्मों के लिए 600 से 750 ग्राम था मध्यकालीन व पिछेती किस्मों के लिए 375 से 400 ग्राम बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। बीज को कतारों में बाये तथा मिट्टी की बारीक पर्त से ढक देवें। सिंचाई फव्वारें से करें।

12.2.5 पौध की रोपाई

रोपाई से पूर्व प्रति हैक्टेयर एक से डेढ किला फ्लूकलोरेलिन (2-3 किलो वासालिन) छिड़क कर तुरन्त भूमि में मिला देवें अथवा 100 ग्राम ऑक्सीफ्ल्यूरेफेन (400 ग्राम गोल) भूमि में मिलायें तत्पश्चात फसल की 45 दिन की अवस्था पर एक गुडाई करें।

बुवाई के 4 से 6 सप्ताह में पौध के खेत में लगाने योग्य हो जाती है । अतः उचित दूरी पर उनकी खेत में रोपाई कर देनी चाहिए। अगेती किस्मों में कतार तथा पौधे से पौधे की दूरी 45 सेन्टीमीटर तथा मध्य व पिछतेती किस्मों में कतार से कतार की दूरी 60 सेन्टीमीटर एवं पौधे से पौधे की दूरी 45 सेन्टीमीटर रखनी चाहिए।

12.2.6 खाद एवं उर्वरक

खेत की तैयारी के समय 250 से 300 क्विंटल अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद भूमि में मिला दें। इसके अतिरिक्त 120 से 150 किलो नइट्रोजन, 80 किलो फास्फोरस तथा 60 से 80 किलो पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से देवें। नइट्रोजन की मात्रा पौधे लगाने के 6 सप्ताह बाद देवें।
फूल गोभी की फसल हेतु जिंक व बोरोन की कमी वाले क्षेत्रों में जिंक सल्फेट 5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर व बोरेक्स 10-15 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बुवाई पूर्व प्रयोग करें।

12.2.7 सिंचाई

पौध लगाने के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए। बाद में आवश्यकतानुसार समय समय पर सिंचाई करते रहें। हल्की मिट्टी में 5 से 6 दिन बाद तथा भारी मिट्टी में 8 से 10 दिन बाद सिंचाई करनी चाहिए।

12.2.8 निराई गुड़ाई

खरपतवार से होने वाली हानि को रोकने के लिए निराई गुड़ाई करना आवश्यक है। फसल में 2 से 3 बार निराई गुडाई करने की आवश्यकता पड़ती है। निराई गुडाई करते समय पौधों पर मिट्टी भी चढ़ावे।

12.2.9 प्रमुख कीट

पत्ती भक्षक कीट

इसे आरा मक्खी, फूल बीटल, पत्ती भक्षक लटें, हीरक तितली एवं गोभी की तितली एवं गोभी की तितली मुख्य हैं। ये कीट पत्तियों को खाकर काफी नुकसान पहुंचाते है।
नियंत्रण हेतु फूल बनने से पूर्व मैलाथियॉन 5 प्रतिशत अथवा कार्बोरिल 5 प्रतिशत के 20 किलो चूर्ण का प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकाव करना चाहिए। फल बनने के बाद आधा मिलीलीटर फेनवेलरेट 20 ई सी या एक मिलीलीटर मैलाथियॉन 50 ई सी का प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। हीरक तितली हेतु कीटनाशी का महीन बूंदों के रूप में छिड़काव करना उत्तम पाया गया है। आवश्यकतानुसार छिड़काव 15 दिन बाद दोहरायें।

मोयला

ये कीट पत्तियों से रस चूसकर हानि पहुंचाते हैं।
नियंत्रण हेतु कार्बोरिल 5 प्रतिशत चूर्ण का 20 से 25 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से भुरकाव करें या मैलाथियॉन 50 ई सी एक मिलीलीटर का प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

डाईमण्ड बैक मोथ

बी टी के (बेसिलस थूरीन्जेन्सिस कस्टकी) 500 मिली व डाईमिथओएट 1 मिली प्रति लीटर हेक्टेयर के दो छिड़काव प्रथम छिड़काव रोपण के 25 दिन बाद एवं दूसरा इसके 10 दिन बाद करें अथवा मोनोकोटोफॉस 36 एस.एल. एक मिली लीटर प्रति लीटर पानी में मिला कर दो छिड़काव 15 दिनों के अन्तराल पर कीट का प्रकोप दिखाई देने पर करें। अन्तिम छिड़काव फसल

काटने के 4 सप्ताह पूर्व करें अथवा स्पाईनोसेड 2.5 एस.सी. 15 ग्रा सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से 3 बार छिड़काव करें या प्रोफेनजोस 40 ईसी 1000-1500 मिली लीटर प्रति हेक्टेयर या बुकडाक 0.25 एससी 750-1000 मिली प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव अत्यन्त उपयुक्त पाये गये हैं।

12.2.10 प्रमुख व्याधियां

भूरी गलन या लाल सड़न

यह रोग बोरोन तत्व की कमी के कारण होता है। गोभी के फूलों पर गोल आकार के भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते है। जो बाद में फूल को सड़ा देते है।

नियंत्रण हेतु रोपाई से पूर्व खेत में 10 से 15 किलो बोरेक्स प्रति हेक्टेयर के हिसाब से प्रयोग करना चाहिए अथवा फसल पर 0.2 से 0.3 प्रतिशत बोरेक्स के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

आर्द गलन (डेम्पिंग ऑफ)

यह रोग गोभी की अगेती किस्मों में नर्सरी अवस्था में होता है। जमीन की सतह पर स्थित तने का भाग काला पड़कर कमजोर हो जाता है तथा नन्हें पौधे गिरकर मरने लगते है।

नियंत्रण हेतु बुवाई से पूर्व बीजों को थाइरम या कैप्टान 3 ग्राम प्रति किलो की दर से उपचारित करना चाहिए। रोग के लक्षण दिखाई देने पर बोर्डो मिश्रण 2:2:5:0 अथवा कॉपर औसीक्लोराइड 3 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें।

काला सड़न

बीजों की क्यारी में नई पौध पर यह रोग अधिक रहता है। पौधों की पत्तियों के किनारों पर जगह जगह पीले चकते दिखाई देते हैं व शिरायें काली दिखाई देती है। उग्रावस्था में यह रोग गोभी के अन्य भागों पर भी दिखाई देता है। जिससे फूल का डंठल अन्दर से काला पड़ जाता है।

नियंत्रण हेतु बीजों की बुवाई से पूर्व स्ट्रेप्ओसाइक्लिन 250 मिलीग्राम अथवा बावस्टिन एक ग्राम लीटर पानी के घोल में 2 घण्टे तक भिगोकर छाया में सुखायें व बुवाई करें। पौध रोपण से पूर्व पौध की जड़ों को स्ट्रेप्टोसाइक्लिन एवं बावास्टिन के घोल में एक घण्टे तक डुबोकर लगाये तथा फसल के रोग के लक्षण दिखने पर उपरोक्त दवाओं को छिड़काव करें।

झुलसा

इस रोग से पत्तियों पर गोल आकार के छोटे से बड़े भूरे धब्बे बन जाते हैं तथा उनमें छल्लेनुमा धारियां बनती हैं अन्य में ये धब्बे काले रंग के हो जाते हैं।

नियंत्रण हेतु जाइनेब या मैन्कोजब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। छिड़काव आवश्यकतानुसार 15 दिन के अन्तराल पर दोहरायें।

12.2.11 उपज

सफेद बंधे हुए एवं पूर्व विकसित फूलों की कटाई करनी चाहिए। अंगेती फसल की उपज कम और मध्यम एवं पिछेती फसलों की पैदावार अधिक होती है। अगेतीफसल से 150 से 200 क्विंटल तथा मध्यम एवं पिछेती फसल से 200 से 300 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उत्पादन होता है।

12.3 पत्ता गोभी

पत्ता गोभी की खेती सर्दी के मौसम में की जाती है। इसका उपयोग सब्जी, सलाद, अचार और निर्जलीकृत सब्जी के रूप में किया जाता है। पोषण की दृष्टि से भी इसका अच्छा स्थान है। छोटे हरे कल्लों में विटामिन ए व सी की मात्रा भरपूर होती है।

12.3.1 जलवायु

इसके लिए ठण्डी एवं नम जलवायु सबसे अच्छी होती है। शुष्क जलवायु में इसकी पत्तियों में नम जलवायु की अपेक्षा अधिक बड़े डंठल विकसित हो जाते है। गर्म शुष्क मौसम में इसके गुणों का ह्रास हो जाता है तथा इसका स्वाद भी नष्ट हो जाता है।

12.3.2 भूमि एवं इसकी तैयारी

पत्ता गोभी की अच्छी पैदावार के लिए उपजाऊ दोमट भूमि उपयुक्त होती है। हल्की अम्लीय भूमि भी इसकी खेती के लिए अधिक उपयुक्त रहती है। इसके लिए भूमि की 3 से 4 जुताई करनी चाहिए। पहली जुताई मिट्टी वाले हल से की जाती है। फिर जैविक खाद बिखेर कर भूमि की जुताई करते हैं तथा मिट्टी बारीक पाटे की सहायता से समतल कर लेते है। खेत में उचित आकार की क्यारियां तथा नालियां सिंचाई के लिए बना ली जाती है।

12.3.3 नर्सरी तैयार करना

बीजों की बुवाई उठी हुई क्यारियों में की जाती है। क्यारियों के लिए खाद युक्त अच्छे जल निकास वाली भूमि का चयन किया जाना चाहिए। बीजों को कैप्टान या थाइरम 2 से 3 ग्राम प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचारित कर बुवाई के काम मे लेवें। अगेती किस्म के बीज अगसत से सितम्बर व पिछेती किस्म के बीज सितम्बर से अक्टूबर में बोये जाते हैं। अगेती किस्म के लिए 500 ग्राम व पिछेती किस्म के लिए 375 ग्राम बीज एक हैक्टेयर की पौध तैयार करने के लिए पर्याप्त होता है।

12.3.4 उपयुक्त किस्में

अगेती किस्म

गोल्डन एकर, प्राईड ऑफ इंडिया - ये किस्में रोपाई के 60 से 70 दिन बाद तैयार हो जाती है। इनके हैड गोल व ठोस होते हैं।

संकर मित्रा

पिछेती किस्म

पूसा ड्रम हेड - यह रोपाई के 100-120 दिन बाद तैयार हो जाती है। इसके तने छोटे व हैड चपटे तथा ठोस होते है। अन्य किस्मों में लेट ड्रम हेड, सलेक्शन-8 प्रमुख है।

संकर - हाइब्रिड 10

खाद एवं उर्वरक

खेत तैयार करते समय 250 से 300 क्विंटल प्रति हैक्टेयर सड़ी हुई गोबर की खाद भूमि में मिला देवें। इसके अलावा 150 किलोग्राम नइट्रोजन, 80 किलोग्राम फास्फोरस तथा 75 किलो पोटाश प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। नइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा पौध लगाने के समय भूमि में मिला देवें। न्इट्रोजन की शेष मात्रा पौधा लगाने के 6 सप्ताह बाद देवें।

12.3.5 रोपाई

पौध 4-6 सप्ताह बाद रोपाई योग्य हो जाती है। अगेती किस्म को 45×45 सेन्टीमीटर तथा पिछेती को 60×45 सेन्टीमीटर की दूरी पर लगाना चाहिए। रोपने से पूर्व पौध को एजोटोबेक्टर कल्चर घोल में 15 मिनट डुबोकर फिर रोपाई करना लाभप्रद होता है।

12.3.6 सिंचाई

पौध की रोपाई करने के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई करनी चाहिए। उचित विकास के लिए भूमि में समुचित नमी का होना आवश्यक होता है।अतः आवश्यकतानुसार उचित समय पर सिंचाई करें। अधिक दिन तक सिंचाई न करने के बाद यदि एक साथ अधिक सिंचाई कर गई है तो गोभी के फटने की सम्भावना रहती है। अतः समय पर सिंचाई का विशेष ध्यान रखें। सिंचाई हर 10 दिन के बाद की जा सकती है। पिछेती किस्मों में सिंचाई जल्दी भी की जा सकती है।

12.3.7 निराई गुडाई

अनावश्यक खरपतवार को बढ़ाने से रोकने तथा पौधों के चारों और की मिट्टी भुरभुरी करने के लिए खेत की 2 से 3 बार निराई गुड़ाई करनी चाहिए। निराई गुड़ाई सिंचाई के बाद उस समय करनी चाहिए। जब मिट्टी थोड़ी सूख जाये। प्रति रोपण के 5 से 6 सप्ताह बाद पौधों पर मिट्टी चढ़ानी चाहिए।

12.3.8 प्रमुख कीट एवं व्याधियां

आमतौर पर फुल गोभी में लगने वाले कीट एवं व्याधियों का प्रकोप पत्ता गोभी की फसल पर होता है। अतः इसका नियंत्रण फूल गोभी की खेती में बताये गये नियंत्रण के अनुसार करें।

12.3.9 तुड़ाई एवं उपज

ठोस एवं पूर्ण विकसित गोभी तुड़ाई के योग्य मानी जाती है। अगेती फसल की उपज प्रति हैक्टेयर 200 से 300 क्विंटल तथा पिछेती किस्म की उपज 300 से 400 क्विंटल प्रति हेक्टेयर के बीच होती है। संकर किस्मों से तैयार होने वाली गोभी समान आकार की व एक ही समय में तुड़ाई लायक हो जाती है। इसके अलावा शत प्रतिशत गोभी प्राप्त होती है। जो खेत में लम्बे समय तक बिना फटे टिक पाती है। इन किस्मों से 400 से 500 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की उपज आसानी से प्राप्त की जा सकती है।

12.4 गांठ गोभी

12.4.1 सामान्य विवरण

कम प्रचलित सब्जी है। उत्पत्ति स्थल उत्तर यूरोप के तटवर्ती क्षेत्र माने जाते हैं। फूल तथा पत्ता गोभी की तुलना में इनका क्षेत्रफल भारत में कम है। गोभी वर्गीय सब्जियों में प्राकृतिक विचित्रताएं हैं। जिस प्रकार फूल गोभी फूलों में परिवर्तित रूप है, पत्ता गोभी पत्तियों का परिवर्तन रूप है उसी प्रकार गांठ गोभी तने का परिवर्तन रूप है। पौधे का तना जो कि गूदेदार गांठ के रूप में परिवर्तित हो जाता है, गांठ गोभी के रूप में सब्जी के लिए उपयोग किया जाता है। इनमें विटामिन 'ए' तथा 'सी' होता है। विटामिन 'बी' समूह कम मात्रा में होता है तथा कैल्शियम और आयरन की मात्रा मध्यम रूप में रहती है। गांठ गोभी का अचार तैयार किया जाता है। पौधे लगाने के 2 से 2.5 माह में गांठ गोभी तैयार हो जाती है। फसल की अवधि 60-90 दिन होती है। औसत उपज 200 क्विंटल गांठों के रूप में प्राप्त होती है।

12.4.2 उपयुक्त किस्म

सफेद वियना - 70 दिन में तैयार होने वाली किस्म है। गांठ मक्खन के समान सफेद होता है। उपज 150 क्विंटल/हेक्टर।

12.4.3 जलवायु

भूमि, सिंचाई, खाद, उर्वरक - पत्ता गोभी के समान है।

12.4.4 उद्यानिक क्रियाएं

बीज विवरण - प्रति हैक्टर बीज की मात्रा - 1.1.5 किलो
अन्य विवरण पत्ता गोभी के समान है।
पौधे रोपन - समय - अगस्त सितम्बर
अंतर - कतार - 30 से.मी., पैाधे 20 सेमी
अन्य उद्यानिक क्रियाएं फूल गोभी के समान हैं।
कटाई - जब परिवर्तित तना या गांठ 5 से 7 सेमी व्यास के हो जाएं तो काट लेना चाहिए गांठ गोभी की संग्रहण क्षमता, फूल गोभी तथा पत्ता गोभी से अधिक है।

12.5 सारांश

गोभीवर्गीय कुल में फूलगोभी, पत्तागोभी व गाठ गोभी की सब्जियां मुख्य हैं। सर्दी की ये मुख्य सब्जियां है। इनकी पहले नर्सरी तैयार की जाती है। जब ये पौधे 4-6 सप्ताह के हो जाते है। तब इनकी रोपाई खेत में कर दी जाती हैं। समय पर इनके कीट एवं रोगों का नियंत्रण जरूरी है, अन्यथा इसका असर इनकी उपज पर आ सकता है।

12.6 अभ्यास प्रष्न

1. पत्तागोभी के उत्पादन की उन्नत तकनीकी बताइए?
2. फूलगोभी के मुख्य कीट व रोग तथा उनका नियंत्रण बताइए।
3. फूल गोभी की कौनसी पिछती किस्म है?

   अ पूसा स्नोबाल ब पूसा दीपाली

   स पूसा कातकी द इनमें से कोई नहीं
4. पत्तागोभी का पौधा कितने सप्ताह बाद रोपाई के योग्य हो जाता हैं?

   अ 1-2 ब 2-3

   स 4-6 द 7-8
5. गोभी की अगेती किस्मों की बुआई कब की जाती है?

   अ मई से जून अंत ब जुलाई से अगस्त

   स मध्य सिंतम्बर से अक्टूबर अंत द इनमें से कोई नहीं

12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

40. Singh, Ranjit, 1992, Fruits, National Book Trust.
41. Katyal, S.L. and Chadha, K.L., 1995, Vegetable Growing in India, Oxford and IBH Publishing Company, pp.157.
42. Bose, T.K., 1985, Fruits of India : Tropical and Sub- troprical, Naya Prokash, pp.637.
43. Singh, S.P., 1989, Production Technologies of Vegetable Crops, ARCC, pp.380.
44. National Horticulture Data Base,National Horticulture Board Agriculture Ministry, Government of India.
45. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.
46. श्रीवास्तव, एस. एस., उद्ययान विज्ञान, 2013, सेंट्रल बुक हाउस, रायपुर.

इकाई 13

सोलेनेशियस कुल

इकाई की रूप रेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 आलू की खेती

13.2.1 जलवायु एवं भूमि

13.2.2 उन्नति किस्में

13.2.3 खेत की तैयारी एवं भूमि उपचार

13.2.4 खाद एवं उर्वरक

13.2.5 बीज की तैयारी

13.2.6 आलू की बुवाई

13.2.7 सिंचाई

13.2.8 निराई गुड़ाई

13.2.9 प्रमुख कीट

13.2.10 प्रमुख व्याधियां

13.2.11 पाले से सुरक्षा

13.2.12 आलू की खुदाई

13.2.13 विक्रय

13.3 बैंगन

13.3.1 जलवायु एवं भूमि

13.3.2 उपयुक्त किस्में

13.3.3 बीज की मात्रा

13.3.4 नर्सरी से पौध तैयार करना

13.3.5 खेत की तैयारी

13.3.6 बुवाई का समय

13.3.7 पौध की रोपाई

13.3.8 टोप ड्रेसिंग

13.3.9 सिंचाई

13.3.10 प्रमुख कीट

13.3.11 व्याधियाँ

13.3.12 उपज

13.4 टमाटर
13.4.1 जलवायु एवं भूमि
13.4.2 उपयुक्त किस्में
13.4.3 टमाटर की बुवाई
13.4.4 नर्सरी तैयार करना एवं रोपण
13.4.5 खाद व उर्वरक
13.4.6 सिंचाई एवं निराई गुड़ाई
13.4.7 प्रमुख कीट
13.4.8 प्रमुख व्याधियाँ
13.4.9 तुड़ाई व उपज
13.5 सारांश
13.6 अभ्यास प्रश्न
13.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

13.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप इस योग्य हा जाएंगे कि -

- आप आलू, टमाटर व बैंगन के उत्पादन की उन्नत तकनीक जान पाएगें।
- आपको आलू, बैंगन, व टमाटर की उन्नत किस्मों का ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।
- आलू, बैंगन व टमाटर में लगने वाले कीट व रोग एवम् उनका नियंत्रण करने की विधि जान पाएगें।

13.1 प्रस्तावना

मनुष्य द्वारा प्रयोगी की जाने वाली विभिन्न प्रकार की सब्जियों में आलू का प्रमुख स्थान है। इसमें कार्बोहाइड्रेट की भरपूर मात्रा के साथ खनिज लवण, विटामिन तथा अमिनों अम्ल की मात्रा भी पायी जाती है। जो शरीर के वृद्धि एवं स्वास्थ्य के अनुक्षरण के लिए आवश्यक है। आलू की फसल से अन्य प्रमुख खाद्यान्न के मुकाबले कम समय में ही अधिक खाद्य प्रति इकाई क्षेत्र में पैदा की जा सकती है।

13.2 आलू की खेती

13.2.1 जलवायु एवं भूमि

आलू के लिए शीतोष्ण जलवायु तथा कन्द बनने के समय उपयुक्त तापक्रम 18 से 20 डिग्री सेन्टीग्रेड होना चाहिए। यह फसल पाले से प्रभावित होती है। आलू की फसल सामान्य तोर पर सभी प्रकार की भूमि में उगाई जा सकती है। परन्तु हल्की बलुई दोमट मिट्टी वाला उपजाऊ खेत जहां जल निकास की सुविधा हो इसके लिए विशेष उपयुक्त रहता है। खेत का समतल होना भी

आलू की फसल के लिए आवश्यक है। आलू 6 से 8 पी एच वाली भूमि में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। परन्तु लवणीय तथा क्षारीय भूमि इस फसल के लिए अनुपयुक्त रहती है।

13.2.2 उन्नति किस्में

कुफरी चिप्सोना - 1

यह किस्म एम ई एक्स 750826 एवं एम एस: 78-79 के संस्करण से विकसित की गई है। यह किस्म प्रसंस्करण उद्देश्य के लिए उपयुक्त होने के साथ पछेती झुलसा से भी प्रतिरोधी हैं। इसके कंद सफेद चिकने, मध्यम से बड़े आकार, अण्डाकार एवं चपटी आंख वाले होते हैं। इसके गूदे का रंग मटमेला सफेद (डल व्हाइट) होता है। यह किस्म 90 से 100 दिन में पककर तैयार हो जाती है एवं उचित परिस्थितियों में लगभग 40 टन प्रति हेक्टेयर उपज क्षमता है।

कुफरी चिप्सोन - 2

यह किस्म एफ-6 एवं क्यू बी/बी-92-4 के संकरण से तैयार की गई है। यह किस्म भी प्रसंस्करण उद्देश्य के लिए उपयुक्त है। इसके कंद सफेद चिकने, मध्यम आकार के होने के साथ साथ गोल अण्डाकार एवं चपटी आंख वाले होते हैं। इसके गूद का रंग पीला होता है। यह किस्म पिछेती, झुलसा बीमारी से प्रतिरोधी एवं पाले के प्रति सहनशील है। उचित परिस्थितियों में लगभग 35 टन प्रति हैक्टेयर उपज क्षमता है । यह किस्म 90 से 100 दिन में पककर तैयार हो जाती है।

कुफरी लालिमा

यह किस्म कुफरी रेड एवं ए जी 14 के संकरण से तैयार की गई है। इसके किस्म के कंद बड़े एवं मध्यम आकार, चिकने लाल रंग लिये हुए गोल आकृति एवं मध्यम गहरी आंख वाले होते हैं। इनके गूदे का रंग सफेद होता है। यह किस्म 100 से 110 दिन में पक कर तैयार हो जाती है। उचित परिस्थितयों में लगभग 30 टन प्रति हैक्टेयर उपज क्षमता है। यह किस्म अगेती, झुलसा के मध्यम प्रतिरोधी एवं पी वी आई से प्रतिरोधी है।

कुफरी सतलज (जे आई - 5857)

यह किस्म कुफरी बहार एवं कुफरी अंलकार से संकरण से तैयार की गई है। इसके किस्म के कंद सफेद, लम्बे बड़े अण्डाकार चिकने एवं चपटी आंख वाले होते है। इसके गूदे का रंग सफेद होता है। यह किस्म पछेती, झुलसा से मध्यम प्रतिरोधी है। उचित परिस्थितियों में लगभग 30 से 35 टन प्रति हेक्टेयर उपज क्षमता है।

कुफरी सिन्दुरी

इस किस्म के आलू का आकार गोल व आंखें कुछ गहरी होती है व रंग कुछ लालिमा लिये होता है। यह किस्म 110 से 120 दिन मे ंपक कर तैयार हो जाती है। इसकी पैदावार 250 से 350 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है।

कुफरी चन्द्रमुखी

यह किस्म अगेती, सफेद छिल्के वाली और अण्डाकार होती है। बाजार में दूसरी किस्मों की अपेक्षा इसका मूल्य अधिक मिलता है। यह 70 से 90 दिन में तैयार हो जाती है तथा इससे 200 से 250 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक उपज ली जा सकती है।

कुफरी ज्योति

इसके कंद अण्डाकार सफेद रंग के तथा कई आँखों वाले होते है। मैदानी भागों में इसकी पकाव अवधि 100 दिन तथा औसत उपज 200 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म अगेती व पिछेती झुलसा रोग प्रतिरोधी है। तथा इसकी भण्डारण क्षमता अच्छी होती है।

कुफरी बहार

इसके कन्द बड़े सफेद गोल से अण्डाकार, चिकने तथा मध्यम गहरी आंखों वाले होते हैं। इसकी पकाव अवधि 90 से 100 दिन तथा औसत उपज 250 से 350 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है। मध्यम भण्डारण वाली यह किस्म अगेती व पिछेती झुलसा, वाइरस, सूखा रोग व पाले के लिए सुग्राही है।

कुफरी बादशाह

इसके कन्द बड़े से मध्यम आकार के अण्डाकार, चमकदार, सफेद चिकने, नियति गहरी आंखों सहित होते है। गूदा हल्का सफेद होता है। 90 से 100 दिन की पकाव अवधि वाली इस किस्म की भण्डारण क्षमता अपेक्षाकृत कम है तथा अगेती व पिछेती झुलसा विषाणु रोगरोधी है। इसकी औसत उपज 300 से 400 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है। जे. आई. 5857 जे. एच. 222 आदि अन्य किस्में है।

13.2.3 खेत की तैयारी एवं भूमि उपचार

इसकी खेती के लिये खेत की जुताई बहत अच्छी तरह होनी चाहिए। एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा फिर दो तीन बार हैरी या देशीहल से जुताई कर मिट्टी को बारीक भुरभुरी कर लेनी चाहिए। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा लगाये। जिससे ढेले न रहें। भूमि उपचार के लिए अन्तिम जुताई के समय फोरेट 10 जी 10 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि में भली भांति मिला देवें। इससे भूमिगत कीटों से फसल की रक्षा होती है।

13.2.4 खाद एवं उर्वरक

फसल की बुवाई से एक माह पूर्व 250 से 350 गाड़ी प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद देवें। उर्वरकों में 120 से 150 किग्रा नत्रजन 80-100 किग्रा फास्पोरस एवं 80-100 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर के हिसाब से देना चाहिए। विभागीय सिफारिशों के अनुसार उर्वरकों के प्रयोग के अतिरिक्त यदि आलू कंद बीज को 1 प्रतिशत यूरिया एवं 1 प्रतिशत सोडियम बाई कार्बोनेट के घोल में 5 मिनट डुबोने के बाद पी एस बी कल्चर एवं ऐजेटोबेक्टर कल्चर से उपचारित करके बुवाई करने पर उपज में वृद्धि होती है। यूरिया के समुचित उपयोग के लिए आमोनियम नाइट्रेट 1:1 की दर से देना चाहिए तथा शेष बची हुई आधी नत्रजन की मात्रा यूरिया द्वारा बुवाई के 30-35 दिन बाद मिट्टी चढ़ाने की अवस्था में देवें। पोटाश की 2/3 मात्रा बुवाई के समय एवं शेष मात्रा बुवाई के 30-35 दिन बाद भी दी जा सकती है।

13.2.5 बीज की तैयारी

भण्डारित आलू के 4 से 5 दिन पूर्च शीतगृह से निकालकर सामान्य ठण्डे स्थान पर रखना चाहिए। बुवाई से पूर्व इसे 24 से 48 घण्टे तक हवादार, छाया युक्त स्थान फैलाकर रखें। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि शीतगृह में लाये गये आलूओं को धूप में न रखें ओर न ही तुरन्त बुवाई के लिए प्रयोग में लावें। अन्यथा बाहरी तापक्रम की अधिकता की वजह से आलू के सड़ने का खतरा बना रहता है। जिन कन्दों पर अंकुरित प्रस्फुटन न दिखाई दे उन्हें हटा देना चाहिए।

बीज की मात्रा व उपचार

बुवाई के लिए रोग रहित प्रमाणित स्वस्थ कंद ही उपयोग में लाने चाहिए। सिकुड़े हुय या सूखे कंदों का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। बीच के केन्द्र 2.5 सेन्टीमीटर व्यास के आकार का या 25 से 35 ग्राम वनज के साबूत कंद होने चाहिए। विभिन्न परिस्थितियों में एक हेक्टेयर भूमि में बुवाई के लिए 25 से 30 क्विंटल आलू के कंदों की आवश्यकता होती है।

बुवाई से पूर्व बीज को स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 0.1 प्रतिशत अथवा टोपसिन एम 0.2 प्रतिशत या बाविस्टीन 0.1 प्रतिशत के घोल से उपचारित करना चाहिए। इसके बाद बीजों को एजोटेबेक्टर कल्चर से उपचारित कर छाया में सुखाकर काम में ले लेना चाहिए।

13.2.6 आलू की बुवाई

आलू की मुख्य फसल को सितम्बर से अन्तिम सप्ताह से अक्टूबर के अंत तक बो देना चाहिए। कोटा क्षेत्र में बुवाई का उपयुक्त समय अक्टूबर के अंतिम सप्ताह से नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक है। बुवाई के समय मौसम हल्का ठण्डा होना चाहिए। बीज की मात्रा व बुवाई की दूरी सामान्यतः बीज की किस्म आकार व भूमि की उर्वरकता पर निर्भर करती है। बुवाई से पूर्व कन्दों को 2 ग्राम थाइरम+1 ग्राम बाविस्टिन प्रति लीटर पानी के घोल में 20 से 30 मिनट तक भिगोये तथा छाया में सूखाकर बुवाई करे। कोटा संभाग में कतार से कतार की दूरी 60 सेमी एवं कंद की दूरी 20 सेमी रखें।

आलू बोने के लिए निम्न विधियां अपनायी जाती है -

1. खेत में 45-45 सेन्टीमीटर की दूरी पर कतारें बनाकर 20 सेन्टीमीटर की दूरी पर 5-7 सेन्टीमीटर की गहराई पर आलू के कन्द बोये। दो कतारों के बीच में हल चलाकर आलू को दबा देवें। इस प्रकार बोने से डोलिया बनने का श्रम व खर्चा बचेगा।
2. पहले खेत में 15 सेन्टीमीटर ऊँची डोलियां लेवें और उसके एक तरफ या बीच में आलू के बीज को 5 से 7 सेन्टीमीटर गहरा बोते है।

13.2.7 सिंचाई

आमतौर पर आलू की फसल के लिए 10-15 सिंचाईयों की आवश्यकता होती है। लेकिन कोटा संभाग में पलेवा के अतिरिक्त 4 से 5 सिंचाईयां पर्याप्त रहती है। फसल के अंकुरण होते ही

सिंचाई प्रारम्भ कर देना चाहिए। मैदानी भागों में जहां सर्दियों में बुवाई की गई हो और तापमान अधिक हो या बलुई या बहुत अधिक हल्की मिट्टी हो तो अंकुरण से पूर्व भी सिंचाई करनी पड़ती है। सर्वप्रथम हल्की सिंचाई करनी चाहिए। इसके बाद सामान्य सिंचाई करते है। परन्तु किसी भी दशा में नालियों को तीन चैथाई से अधिक नहीं भरना चाहिए। डोलियां पर पानी चढ़ जाने पर उसकी ऊपरी भाग कड़ा हो जाता है। इस कारण आलू की जड़े भली भांति नहीं फैलने से आलू समान रूप से नहीं बढ़ पाते। हल्की मध्यम दर्जे की मिट्टी से 7 से 10 दिन में तथा भारी मिट्टी 12 से 15 दिन के बाद सिंचाई करनी चाहिए। जैसे जैसे फसल पकती जाये सिंचाई का अन्तर बढ़ाते जायें। फसल पकने से 15 दिन पूर्व सिंचाई बंद कर देवें।

13.2.8 निराई गुड़ाई

कंद की बुवाई के 30 से 35 दिन तक जब पौधे 8 से 10 सेमी के हो जावे तो खरपतवार निकाल कर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। इसके एक माह बाद दुबारा मिट्टी चढ़ावे।

रासायनिक खरपतवार नाशी कीट द्वारा नियंत्रण

1. पैराक्वाट (1 किलो प्रति हेक्टेयर) अर्ली पोस्ट इमरजेन्स (जब जमाव 5 प्रतिशत तक हो जाये) के रूप में छिड़काव करें।
2. फलूक्लोरालिन (1 किलो प्रति हेक्टेयर - प्री प्लांटिंग इनकारपोरेशन इन सोशल) के उपयोग के समय खेत में पर्याप्त नमी आवश्यक है अन्यथा असर नहीं होगा।

या

3. आइसोप्रोटोरॉन (1 किलो प्रति हेक्टेयर) (प्री इमरजेंस) जमाव से पूर्व छिड़काव करें।

नोट - खरपतवार नाशी का प्रयोग यदि खरपतवार की अधिक मात्रा हो तो हीं करें।

13.2.9 प्रमुख कीट

मोयला एवं हरा तेल

यह आलू के महत्वपूर्ण कीट है तथा पत्तियों व टहनियों से रस चूसकर हानि पहुंचाती है। जब प्रकोप अधिक होता है तो पत्तियां नीचे की ओर मुड़ जाती है और पीली पड़कर सूख जाती है। ये कीट विषाणु रोग फैलाने में भी सहायक है।

कटवर्म (कटवा लट)

इस कीट के लटें आलू के पौधों की शाखाओं व उगते हुए आलू को काटकर नुकसान फ्हुंचाती है बाद की अवस्था में ये लटें आलू में छेद कर देती है। जिससे उनका बाजार भाव कम हो जाता है। क्षतिग्रस्त खेतों में इससे 40 प्रतिशत तक ही हानि होती है। इनकी लटें दिन में ढेलों में छिपी रहती है तथा रात के समय फसल को हानि पहुंचाती है।

नियंत्रण हेतु बुवाई से पूर्व उपचार किया गया है। तो इस कीट के आक्रमण की सम्भावना नहीं रहती है। खड़ी फसलें इस कीट की रोकथाम हेतु क्लोरेपयरीफॉस 20 ई सी चार लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से सिंचाई के साथ प्रयोग करें।

सफेद लट

ये लटें जमीन में रहकर पौधों की जड़ों के क्षति पहुंचाती है तथा आलू में उथले गोलाकार छेद कर देती है।जिन क्षेत्रों में इस कीट का आक्रमण बना रहता है वहां इनके नियंत्रण हेतु बुवाइ के समय कार्बेफियूरॉन 3 जी या फारेट 10 जी 25 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि में मिलावें।

13.2.10 प्रमुख व्याधियां

काली रूसी (ब्लेक स्कर्फ)

इस रोग के कारण अंकुरित कन्दों का अग्र भाग प्रभावित होता है। जो कभी कभी उगने से पूर्व ही नष्ट हो जाता है सभी कन्दों के समय से अंकुरित नहीं होने से पौधों की संख्या में कमी आ जाती है। अंकुरित पौधों के तने पर धंसे हुए भूरे रंग के कैंकर दिखाई देते है। ग्रसित पौधे बोने रह जाते हैं। विकसित कन्दों (संक्रमण काली रूसी के रूप में) में रोग के कारण कवक की वृद्धि कन्द की त्वचा में धंसी हुई दिखाई देती है यह रोग ग्रसित बीजों के माध्यम से फैलता है।

नियंत्रण हेतु बुवाई से पूर्व बीज के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले कन्दों को 3 प्रतिशत बोरिक एसिड (30 ग्राम प्रति लीटर पानी) के घोल में 30 मिनट तक डुबाये। इस घोल को 20 बार प्रयोग में लाया जा सकता है। घोल हल्के गरम पानी में बनाये। बीज कन्दों को भण्डारण में रखने से पूर्व भी बोरिक एसिड के 3 प्रतिशत घोल से उपचारित करके भण्डारित करें।

मृदु गलन (सोफ्ट रोट)

यह रोग जीवाणु द्वारा फैलता है तथा इस रोग में आलू नर्म पड़ जाते हैं एवं दुर्गन्ध आने लगती है। इसका प्रसार दागी आलुओं के द्वारा होता है। यदि ढेर मे रोग-ग्रस्त आलू आ जाये तोवे स्वस्थ आलूओं को भी शीघ्र सड़ा देते हैं।

नियंत्रण हेतु रोगग्रस्त आलूओं को बहार निकाल देना चाहिए। उसके बाद ढेरी लगानी चाहिए। बुवाई के पूर्व आलू को 1 ग्राम बाविस्टीन प्रति लीटर पानी के घोल से उपचारित करें।

झुलसा रोग

अ अगेती झुलसा

इस बीमारी का प्रकोप शुरू में कन्द बनने से पहले होता है। पहले भूरे धब्बे पत्तियों पर दिखाई देते हैं। जो बाद में गहरे भूरे होकर काले धब्बे में बदल जाते हैं। धब्बे में छल्ले नुमा धारियां दिखाई देती है। कभी कभी कन्दों व शाखाओं पर भी भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते है।तथा कन्दों का सड़ना भी देखा गया है। इस रोग से निचली पत्तियां सूखने लगती है तथा गिरने लगती है।

ब पिछेती झुलसा

रोग की शुरूआत पर पत्तियों पर जलीय धब्बे बनते हैं जो बाद में भूरे रंग के हो जाते हैं। ऐसे धब्बे गोल से अनियमित आकार के होते हैं। धब्बों के ऊतक मर जाते हैं और सम्पूर्ण पत्तियां झुलस जाती है।रोग के लक्षण कन्दों पर भी दिखाई देते हैं तथा कन्द सड़ जाते है।

नियंत्रण हेतु रोग के लक्षण दिखाई देते ही कवकनाशी दवायें जैसे डाइफोल्टान या मैन्काजेब या जाइनेब 2 ग्राम या रिडोमिल एम जैड 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें। यह छिड़काव 10 से 12 दिन बाद दोहरायें। छिड़काव नीचे की पत्तियों पर विशेष रूप से करें।

विषाणु रोग

आलू की फसल की कई प्रकार के विषाणु रोग लगते है। जिसमें पर्णकुंचन तथा विभिन्न प्रकार के मोजेक मुख्य है पर्णकुंचन रोग से पत्तियों किनारों से मड़ती है तथा पत्ती की कोमलता नष्ट हो जाती है।

मोजेक रोगों के लक्षण फसल की किस्मों विषाणु की जाति तथा वातावरण के अनुसार बदलते रहते हैं। इनमें मुख्य बौनापन, पत्तियों पर गहरे हल्के पीलापन लिए हरे रंग के चित्तिदार धब्बे प्रमुख है।

नियंत्रण हेतु बुवाई के लिए कन्द रोग मुक्त होने चाहिए।

रोगग्रसित पौधों को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

रोग के लक्षण दिखाई देते ही मिथाइल डिमेटोन 25 ई सी या डाईमिथोएट 30 ई सी एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव 10 दिन के अन्तराल पर करना चाहिए।

कन्द सड़न रोग

इस रोग के प्रकोप से कन्द सड़ जाते हैं। रोगी पौधों में अंकुरण कम होता है। पत्तियां पीली पड़ जाती है तथा पौधे छोटे रह जाते है। व बाद में मर जाते है। कन्द मुलायम होकर सड़ जाते है।

नियंत्रण हेतु केप्टान 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल से भूमि को उपचारित करें।

टोमेटो स्पोटेउ रिग विल्ट वायरस - बुवाई के 20-25 दिन बाद पौधे के तने पर काले चकते बनते हैं। प्रकोप अधिक होने पर धब्बे फैलने लगते हैं व पत्तियां झड़ जाती है। यह रोग थ्रिप्स के द्वारा फैलता है।

नियंत्रण

फसल की बुवाई अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह या बाद में करें। लक्षण दिखाई देने पर मिथाइलडेमोटोन 25 ई.सी का 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें व 15 दिन के अन्तराल पर इसे दोहरावें।

13.2.12 पाले से सुरक्षा

आलू की फसल मे पाले से काफी नुकसान होता है। सर्दियों में जिस दिन शाम के समय आसमान साफ हो धीमी धीमी ठण्डी हवा चल रही हो व तापक्रम कम चल रहा हो तो पाला पड़ने की सम्भावना हो जाती है इससे बचाव के लिए निम्न उपाय करें।

1. फसल की सिंचाई करें।
2. खेत की मेड़ पर उत्तर पश्चिम दिशा की तरफ घास फूस जलाकर धुंआ करें।
3. व्यापारिक गन्धक के अम्ल का 0.1 प्रतिशत (1 लीटर गंधक का अम्ल 1000 लीटर पानी में मिलाकर) फसल पर छिड़काव करें। इससे फसल 10-15 दिन के लिए पाले से सुरक्षित हो जाती है। गंधक का अम्ल छिड़काव करने के लिए टंकी में पानी भर कर अम्ल को लकड़ी की डंडी के सहारे पानी में मिलावें।

13.2.13 आलू की खुदाई

आलू की फसल में जब पत्तियां सूखने आरम्भ हो उस समय खुदाई प्रारम्भ करें। वैसे आलू की खुदाई का समय बाजार की मांग व भाव पर भी निर्भर करता है। यदि मांग अच्छी हो, मूल्य ठिक

मिलता हो, तो और आलू के पौधे हरे हो परन्तु आकार सामान्यतः ठीक हो गया हो तो खोद कर बाजार में बेचा जाना चाहिए। सामान्यतौर पर जब पौधे पीले होकर सूखने लगते हैं। उस समय पौधे के तने को पत्तियों सहित काट लेते हैं तथा इसकी 10-15 दिन बाद खुदाई करते हैं। इससे कन्दों में मजबूती आ जाती है। और अधिक समय तक रखे जा सकते हैं। अधिक समय तक भूमि में छोड़ा गया आलू गर्मी के कारण सड़ जाता है। अतः समय रहते खुदाई करके आलू निकाल लेना चाहिए।

13.2.14 विक्रय

यदि शीतग्रह की व्यवस्था न हो तो खुदाई के बाद आलू के विक्रय की व्यवस्था करना आवश्यक होता है। क्योंकि गर्मी के कारण खराब होने की सम्भावना रहती है। अतः इसे ज्यादा समय तक नहीं रखा जा सकता है।

13.3 बैंगन

13.3.1 जलवायु एवं भूमि

इसके अच्छी फसल के लिए गर्म जलवायु की आवश्यकता होती है। पाले का अधिक असर पड़ता है। अतः बंसतकालीन फसल उन क्षेत्रों में नहीं लेनी चाहिए जहां पाला पड़ता है। इसकी अच्छी खेती के लिए दोमट मिट्टी सर्वोत्तम माना गई है। भूमि के भुरभुरापन व जल निकास अच्छा होना चाहिए।

13.3.2 उपयुक्त किस्में

किस्मों का चुनाव बाजार की मांग व लोकप्रियता के आधार पर करना चाहिए। इसमें दो प्रकार की किस्में पायी जाती है। लम्बे व गोल बैंगन।

लम्बे फल - भूरा परपल लोंग, पूसा परपल क्लसअर, पूसा क्रान्ति, पन्त सम्राट, आजाद क्राति, एस-16, पंजाब सदाबहार, ए.आर.यू. 2 सी.एच-7

गोल फल - भूरा परपल राउण्ड, एच-4, पी-8, पूसा अनमोल, पन्त ऋतुराज, टी. -3, एच. -8,डी बीएसआर-31, पी बी - 91-2 के - 202 - 9, डी बी आर - 8, ए बी -1

छोटे गोल फल - डी बी एस आर - 44, पी एल आर -1

संकर किस्में - अर्का नवनीत, पूसा हाइब्रिड -6

लम्बे फल - ए आर बी एच - 201

गोल फल - एन डी बी उच - 1,एमएच बी -1, एम. एच. बी. - 39,ए बी एच -2 व पूसा हाईब्रिड -2

छोटी पत्ती (लिटिल लीफ) रोग रोधी किस्में - एस - 16 व ए बी 2

13.3.3 बीज की मात्रा

एक हेक्टेयर में पौध रोपाई के लिए 400-500 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है।

13.3.4 नर्सरी से पौध तैयार करना

जहां पर नर्सरी बनानी हो वहां पर अच्छी प्रकार खुदाई करके खरपतवारों को निकाले ओर अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर पत्ती की खाद आवश्यकतानुसार डालें। नर्सरी से पूर्व बीजों के थायरम या केप्टान 2 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित कर बुवाई करें।

अगर सूत्रकृमि रोग (निमेटोड) की समस्या हो तो 8 से 10 ग्राम कारबोफयूरॉन 3 जी प्रति वर्गमीटर के हिसाब से भूमि में मिलावें। एक हेक्टेयर की पौध तैयार करने के लिए एक मीटर चौड़ी एवं तीन मीटर लम्बी करीब 15 से 20 क्यारियों की आवश्यकता होती है। बीज की 1 से 1.5 सेन्टीमीटर की गहराई पर 2.5 सेन्टीमीटर के अन्तर पर कतारों बुवाई करें तथा बुवाई के बाद गोबर की बारीक खाद की एक सेन्टीमीटर मोटी परत से ढक दें व फव्वारें से सिंचाई करें।

13.3.5 खेत की तैयारी

नर्सरी में बीज बोने के साथ खेत की तैयारी भी शुरू कर देनी चाहिए। खेत की 3-4 जुताई करें। प्रथम जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए। इस समय 120 से 150 क्विंटल गोबर या कम्पोस्ट की खाद खेत में अच्छी तरह बिखेर कर जुताई करे। अन्तिम जुताई से पूर्व 40 किलो नत्रजन, 80 किलो फास्फोरस तथा 60 किलो पोटाश को प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में समान रूप से मिलाकर, जुताई कर पाटा लगा देवें और क्यारियां बना लेवें। संकर किस्मों 60 किलो नत्रजन अंतिम जुताई के समय देवें एवं फास्फोरस व पोटाश की मात्रा पूर्ववत रखे।

13.3.6 बुवाई का समय

फसल को वर्ष में तीन बार लिया जा सकता है। ताकि वर्ष भर बैंगन मिलते रहे।

फसल	नर्सरी तैयार करने का समय	खेत में रोपाई समय
वर्षा कालीन	फरवरी-मार्च	मार्च-अप्रेल
शरीद कालीन	जून-जुलाई	जुलाई-अगस्त
बसंत कालीन	सितम्बर	अक्टूबर-नवम्बर

13.3.7 पौध की रोपाई

जब पौधें नर्सरी में 10 से 15 सेमी ऊंचाई के या 30-40 दिन के हो जावे तब उन्हें सावधानी से निकाल कर तैयार खेत में शाम के समय रोपाई करें। कतार से कतार की दूरी 60-70 सेन्टीमीटर एवं पौधे की दूरी 60 सेन्टीमीटर रखें।

13.3.8 टोप ड्रेसिंग

पौध रोपन के 20 दिन बाद तथा फूल लगने के समय 20-20 किलो नत्रजन का छिड़काव फसल पर दो बार करना चाहिए। संकर किस्मों में यह मात्रा 30-30 किलो रखें।

13.3.9 सिंचाई

गर्मी की ऋतु में 4 से 5 दिन के अन्तराल पर तथा सर्दी की ऋतु में 10 से 15 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए। वर्षा ऋतु में सिंचाई आवश्यकतानुसार करें।

13.3.10 प्रमुख कीट

1. हरा तेल, मोयला, सफेद मक्खी एवं जालीदार पंख वाली बग

ये कीड़े पत्तियों के नीचे या पौधों के कोमल भाग से रस चूसकर पौधों को कमजोर कर देते हैं। इससे उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। ये कीट व्याधियां फैलाने में सहायक होते है।

नियंत्रण - एक मिलीलीटर डाईमिथोएट 30 ई सी या मैलाथियान 50 ई सी या मिथाइल डिमेटोन 25 ई सी प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार इस छिड़काव को 15 से 20 दिन बाद दोहराये।

2. एपीलेक्ना बीटल

इस कीट का प्रकोप प्रायः सीमित होता है। उपरोक्त कीटनाशी यदि प्रयोग में लिये गये हो तो इसका नियंत्रण स्वत' ही हो जाता है। अन्यथा इसके नियंत्रण के लिए मैलाथियॉन 5 प्रतिशत या कार्बोरिल 5 प्रतिशत चूर्ण का 20 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से भुरकाव करें।

3. फल एवं तना छेदक

इस कीट के आक्रमण से बढ़ती हुई शाखाएं मुरझा कर नष्टहो जाती है तथा फलों में छेद हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप् फलों की नियंत्रण हेतु प्रभावित शाखाओं एवं फलों को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

फल बनने पर कार्बोरिल 50 डब्ल्यू पी 4 ग्राम व फार्मोथियान 50 ईसी 1 मिलीलीटर या एसीफेट 75 एसपी 0.5 ग्राम प्रति लीटर पानी कि हिसाब से छिड़के। आवश्यकतानुसार 10-15 दिन बाद छिड़काव दोहरावें। दवा छिड़कने व फल तोड़ने में 7-10 दिन का अन्तर होना चाहिए अथवा बी टी के (बेसिलस थूरिन्जेन्सिस कस्टकी)1 मिली प्रति लीटर के साथ डाइमिथोएट 1 मिली ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल का फूल आने की शुरूआत में छिड़काव करें व इस तरह के तीन छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर दोहरावें।

4. मूल गंथी सूत्र कृमि (निमिटोड)

इसकी वजह से बैंगन की जड़ों पर गाठें बन जाती है तथा पौधों की बढ़वार रूक जाती है एवं उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

रोपाई हेतु नर्सरी से पौध तैयार करते मय 10 से 12 ग्राम कार्बोफ्यूरॉन 3 जी प्रति वर्ग मीटर की दर से तथा खेत में पौधे रोपाई के समय 25 किलो कार्बोफ्यूनान 3 जी प्रति हैक्टेयर की दर से भूमि उपचार करं या पौधों की रोपाई के स्थान पर डालकर पौध की रोपाई करें।

13.3.11 व्याधियाँ

1. छोटी पत्ती रोग

यह बैंगन का एक माइकोप्लाज्मा जनित विनाशकारी रोग है। इस रोग के प्रकोप से पत्तियां छोटी रह जाती है तथा गुच्छे के रूप में तनों के ऊपर उगी हुई देती है। पूरा रोग ग्रस्त पौधा झाड़ीनुमा लगता है एवं ऐसे पौधों पर फल नहीं बनते है।

नियंत्रण हेतु रोग ग्रसित पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए। यह रोग हरे तेले (जेसिड) द्वारा फैलता है अतः इसकी रोकथाम हेतु एक मिली लीटर डाइमिथोएट 30 ई सी या प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें एवं आवश्यकतानुसार 10 से 15 दिन के अन्तराल में दोहरावें।

2. झुलसा रोग

इस रोग के प्रकोप से पत्तियों पर विभिन्न आकार के भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं। धब्बों में छल्लेनुमा धारिया दिखने लगती हैं।

नियंत्रण हेतु मैन्केजेब या जईनेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें। यह छिड़काव आवश्यकतानुसार 10 से 15 दिन के अन्तराल में दोहरावें।

3. आर्द्रगलन (डेम्पिंग ऑफ)

यह रोग पौधे की छोटी अवस्था में होता है। इसके प्रकोप से जमीन की सतह पर स्थित तने का भाग काला पड़कर कमजोर हो जाता है तथा पौधे गिरकर मरने लगते हैं। यह रोग भूमि एवं बीज के माध्यम से फैलता है।

नियंत्रण हेतु बीजों को 3 ग्राम केप्टान अथवा थाईरम 3 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें नर्सरी से बुवाई से पूर्व थाइरम केप्टान 4 से 5 ग्राम प्रति वर्गमीटर की दर से उपचारित करें। नर्सरी, आस पास की भूमि से 4 से 5 इंच उठी हुई भूमि में बनावें।

13.3.12 उपज

जब फसल बाजार में भेजने लायक हो जावे तब फलों की तुड़ाई करें। इसकी उपज लगभग 200 से 250 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। किन्तु संकर किस्मों का बीज काम में लेने पर 350 से 400 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक उपज प्राप्त की जा सकती है।

13.4 टमाटर

उत्पादन की दृष्टि से टमाटर एक महत्वपूर्ण सब्जी की फसल है। इसका उपयोग कम व अधिक मात्रा में सभी प्रकार की सब्जियों में किया जाता है। इसकी खेती वर्ष भर की जा सकती है। टमाटर में विटामिन'ए' एवं' सी की मात्रा अधिक होती है। इसका उपयोग ताजा फलों के रूप या उन्हें पकाकर डिब्बा बंदी करके अचार,,चटनी, सूप, केचप सॉस व अन्य सब्जियों के साथ पकाकर भी किया जा सकता है।

13.4.1 जलवायु एवं भूमि

यह गर्मी की मुख्य फसल है। किन्तु अगर पाला न पड़े तो इसको वर्ष भर किसी भी समय उगाया जा सकता है। इसके लिए हल्की दोमट भूमि सर्वोत्तम रहती है।

13.4.2 उपयुक्त किस्में

पूसा रूबी, पूसा अर्ली ड्वार्फ, पूसा 120, मारग्लोब, पंजाब छुआरा, रोमा, सलेक्शन 120, पंत बहार, अर्का विकास, हिसार अरूण (सलेक्शन 7) एम टी एच -6, एचएस - 101,सीओ - 3 सलेक्शन - 152,पंजाब केशरी, पंत टी - 1, अर्कासौरभ एम -32 डीटी -10

संकर किस्में

कर्नाटक हाइब्रिड, रशमी, सोनाली, पूसा हाइब्रिड-1, पूसा हाइब्रिड-2, ए आर टी एच - 3 एच ओ ई - 606, एनए - 601, बी एसएस -20, अविनाश-2, सोनाली, एस टी एच -6

13.4.3 टमाटर की बुवाई

इसके बीजों को सीधे खेत में न बोकर पहले नर्सरी में बोया जाता है । जब पौधे 4 से 5 सप्ताह अर्थात् 10 से 15 सेन्टीमीटर के हो जावे तब इन्हें खेत में लगाने चाहिए।

खरीफ की फसल के लिए टमाटर का बीज जून मास में ऊँची उठी हुई क्यारियों में बोते हैं। गर्मी की फसल के लिए दिसम्बर जनवरी में तथा सर्दी की फसल के लिए सितम्बर में नर्सरी तैयार करना चाहिए। एक हैक्टेयर हेतु 400 से 500 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है। संकर किस्मों के लिए बीज की मात्रा 150 से 200 ग्राम एक हैक्टेयर की पौध के लिए उपयुक्त रहती है।

13.4.4 नर्सरी तैयार करना एवं रोपण

ऊँची उठी हुई क्यारियाँ जिनकी चैड़ाई एक मीटर और लम्बाई 5 मीटर हो एक एकड़ क्षेत्र की पौध के लिए 25 क्यारियों की आवश्यकता होती है। बीजों की बुवाई से पूर्व 2 ग्राम कैप्टान या वाविस्टीन 2 ग्राम या क्लोरोथलोनिल (कवक) 2 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित कर बुवाई करें। बीजों को 5 से 7 सेन्टीमीटर के फासलें पर कतारों में बोया जाता है। जैसे ही बीजों का अंकुरण हो कैप्टान के 0.2 प्रतिशत घोल में क्यारियों का उपचार करें। बीजों की बुवाई से पूर्व 8 से 10 ग्राम कार्बोफ्यूरा ॅन 3 जी प्रति वर्गमीटर के हिसाब से भूमि में मिलावें।

नर्सरी में पौधों की फव्वारें से सिंचाई करें। जब पौधे (10 से 15 सेन्टीमीटर लम्बे) चार से पांच सप्ताह के हो जावे तो इनकी रोपाई कर देनी चाहिए। नर्सरी में पौधों को कीड़ों के प्रकोप से बचाने के लिए मिथाईलडियेटोन एक मिलीलीटर तथा साथ में जाइनेब या मैन्कोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोलकर छिड़काव करें।

पौध की रोपाई खेत में शाम केसमय 75×75 सेन्टीमीटर की दूरी पर वर्षा ऋतु की फसल के लिए तथा 50×30 या 45 सेन्टीमीटर की दूरी पर गर्मी की फसल के लिए करें। गर्मी की फसल के लिए पौधे की रोपाई फरवरी के अन्त तक आवश्यक है। अन्यथा उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। संकर किस्मों को खेत में 90×45 सेन्टीमीटर की दूरीपर लगावें एवं बढ़वार के समय छड़ी से सहायता देवें।

13.4.5 खाद व उर्वरक

पौधों की रोपाई से एक माह पूर्व 150 क्विंटल सड़ी हुई गोबर की खाद्द खेत में डालकर भली भांति मिला देवें। पौधे लगाने से पूर्व 60 किलो नत्रजन, 80 किला फास्फोरस एवं 60 किलो पोटाश प्रति हेक्टेयर के हिसाब से खेत में देवे। पौधे लगाने के 30 दिन व 50 दिन बाद 30-30 किलो नत्रजन की मात्रा खड़ी फसल में देकर सिंचाई करें।

संकर किस्मों में 300 से 350 क्विंटल गोबर की खाद, 180 नत्रजन, 120 फाॅस्फोरस एवं 80 किलो पोटाशप्रति हैक्टेयर की दर से देवें।

13.4.6 सिंचाई एवं निराई गुड़ाई

सर्दी में 8 से 10 दिन व गर्मी में 5 से 6 दिन के अन्तराल में आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए । पौध लगाने के 20 से 25 दिन बाद प्रथम निराई गुड़ाई करें। आवश्यकतानुसार दुबारा निराई गुड़ाई कर खेत में खरपतचारों को निकालें।

रोपाई से पूर्वखेत मेंएक किलो प्रति हेक्टेयर पेन्डीमैथालिन खरपतवारनाशी खेत में छिड़क एवं 45 दिन बाद एक निराई गुडाई करने से खरपतवारों पर नियंत्रण किया जा सकता है। छिड़काव हेतु फ्लेट फेन नोजल का प्रयोग करें।

13.4.7 प्रमुख कीट

यदि नर्सरी में कीटनाशी का प्रयोग नहीं किया गया हो तो फास्फोमिडान 85 एसएल का एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के घोल में पोध को डुबोकर खेत की रापाई करें।

1. सफेद लट

यह टमाटर की फसल को काफी नुकसान पहुंचाता है इसका आक्रमण जड़ों पर होता है इसके प्रकोप से पौधे मर जाते हैं।

नियंत्रण हेतु फोरट 10 जी या कार्बोफ्यूरान 3 जी 15 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से रोपाई से पूर्व कतारों में पोधों की जड़ों के पास डाले।

2. कटवा लट

इस कीट की लटें रात्रि में भूमि से बाहर निकल कर छोटे छोटे पौधों की सतह के बराबर से काटकर गिरा देती है। दिन में मिट्टी के ढेलों के नीचे दरारों में छिपी रहती है।

नियंत्रण हेतु क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 20 से 25 किलो प्रति हेक्टेयर के हिसाब से भूमि में मिलाये।

3. सफेद मक्खी, पर्ण जीवी (थ्रिप्स), हरा तेल व मोयला

ये कीट पौधों की पत्तियों व कोमल शाखाओं से रस चूसकर कमजोर कर देते है। सफेद मक्खी टमाटर में विषाणु रोग फैलाती है। इसके प्रकोप से उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

नियंत्रण हेतु डाइमिथोएट 30 ई सी या मैलाथियॉन 50 ई सी एक मिलीलीटर का प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें आवश्यकता पड़ने पर यह छिड़काव 15 से 20 बार दोहरायें।

4. फल छेदक कीट

कीट की लटें फलों में छेद करके अन्दर से खाती है। कभी कभी इनके प्रकोप से फल सड़ जाता है। इससे उत्पादन में कमी के साथ साथ फलों की गुणवत्ता भी कम हो जाती है।

नियंत्रण हेतु मैलाथियॉन 50 ई सी एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए। अथवा बेसिलस थूरिन्जेन्सिस कस्अकी (डाइपेल - 8एल) 1 लीटर प्रति हेक्टेयर के साथ मिथोमिल 40एस पी 600 ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर करें अथवा बीटा साइफ्लूथ्रिन (बुलडाग) 0.25 प्रतिशत 750 मिली प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

5. मूल ग्रंथि (सूत्र कृमि)

इसकी वजह से टमाटर की जड़ों में गांठे पड़ जाती है तथा पौधों की बढ़वार रूक जाती है एवं उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

नियंत्रण हेतु रोपाई से पूर्व 25 किलो कार्बोफ्यूरॉन 3 जी प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि में मिलाये। पौध की रोपाई के स्थान पर जड़ों के पास 8 से 10 कण डालकर रोपाई करें।

13.4.8 प्रमुख व्याधियाँ

1. **आर्दगलन (डेम्पिंग ऑफ)**

रोग के प्रकोप से पौधे का जमीन की सतह पर स्थित तने का भाग काला पड़ जाता है और नन्हें पौधे गिरकर मरने लगते है। यह रोग भूमि एवं बीज के माध्यम से फैलता है।

नियंत्रण हेतु बीज को 3 ग्राम थाइरम या 3 ग्राम केप्टान प्रति किलो बीज की दर से उपचारित कर बोये। नर्सरी से बुवाई से पूर्व थाइरम या केप्टान 4 से 5 ग्राम प्रति वर्गमीटर की दर से भूमि मे मिलावे।

नर्सरी आस पास की भूमि से 4 से 6 इंच उठी हुई भूमि में बनावें।

नोट - उपरोक्त उपचार नहीं करने की अवस्था में बीज के अंकुरण के बाद जमीन की सतह पर आवश्यकता हो तो पौधशाला में थाइरम या केप्टान 2 से 3 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से 7 से 10 दिन छिड़काव करें।

2. झुलसा (ब्लाईट)

इस रोग से टमाटर के पौधों की पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं।यह रोग दो प्रकार का होता है।

अ अगेती झुलसा - इस रोग में धब्बों पर गोल गोल छल्लेनुमा धारियां दिखाई देती है।

ब पछेती झुलसा - इस रोग से पत्तियों पर जलीय, भूरे रंग के गोल से अनियमित आकार के धब्बे बनते हैं जिनके कारण अन्त में पत्तियां पूर्ण रूप से झुलस जाती है।

नियंत्रण हेतु मैन्कोजेब 2 ग्राम कापूर ऑक्सी क्लोराइड 3 ग्राम या रिडोमिल एम जैड का प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें। छिड़काव 10 से 15 दिन के अन्तराल पर फल आने पर करें।

3. पर्णकुंचन व मोजेक (विषाणु रोग)

पूर्ण कुंचन रोग में पौधों के पत्ते सिकुड़कर मुड़ जाते हैं तथा छोटे झुरिंया युक्त हो जाते हैं। मोजेक रोग के कारण पत्तियों पर गहरे व हल्का पीलापन लिये हुए हरे रंग के धब्बे हो जाते हैं। उक्त रोगों को फैलाने में कीट सहायक होते है।

नियंत्रण हेतु बुवाई से पूर्व कार्बोफ्यूरॉन 3 जी 8 से 10 ग्राम प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से भूमि में मिलावें।

पौधे रोपण के 15 से 20 दिन बाद डाईमिथोएट 30 ई सी 1 मिली लीटर प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़कें।

कीट एवं रोग नियंत्रण हेतु निम्न प्रकार फफूंदनाशी एवं कीटनाशी रसायनों का क्रमवर उपयोग/छिड़काव किया जा सकता है।

बीज को बाविस्टीन या क्लोरोथालोनिल 2 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचाति करें। नर्सरी में कार्बोफ्यूरॉन 3 जी 8-10 ग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से मिलकर उपचारित करें।

पौधों की खेत में रोपाई से पूर्व कार्बोफ्यूरॉन 3 जी 25 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि उपचार करें।

प्रथम छिड़काव - रेडोमिल एम जेड 2 ग्राम प्रति लीटर के हिसाब से 30 दिन की फसल पर करें।

द्वितीय छिड़काव - मैन्कोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर के हिसाब से प्रथम छिड़काव के 15 दिन बाद करें।यदि जीवाणु जनित रोग का प्रकोप हो तो इस छिड़काव में स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 200 पीपीएम (1ग्राम प्रति 5 लीटर पानी) भी साथ में मिला कर छिड़काव करें।

13.4.9 तुड़ाई व उपज

सर्दी की फसल में फल दिसम्बर में तड़ाई लायक हो जाते है तथा फरवरी तक चलते रहते हैं। खरफ की फसल के फल सितम्बर से नवम्बर तक व गर्मी की फसल के फल अप्रेल से जून तक उपलब्ध होते हैं। टमाटर की औसत उपज 200 से 500 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक होती है। संकर किस्मों से 500 से 700 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक उपज प्राप्त की जा सकती है।

13.5 सारांश

आलू, बैंगन व टमाटर सोलेनेषियस कुल की मुख्य सब्जी वाली फसले हैं। वैज्ञानिकों द्वारा इनकी कई किस्में विकसित की गई, जिनकी अपनी कई विषेषाएं है। यदि सही मात्रा में बीज, खाद व उर्वरक का इस्तेमाल किया जाये तो इनके उत्पादन को बढ़ाया जा सकता हैं। सही समय पर इनका पौध संरक्षण जरूरी हैं, नही ंतो इसका विपरित असर इनके उत्पादन पर भी पड़ सकता हैं।

13.7 अभ्यास प्रश्न

1. टमाटर के उत्पादन की उन्नत तकनी समझाइए?
2. आलू उनकी विशेषताएं बताइए।
3. बैंगन की एक हेक्टेयर रोपाई के लिए कितने ग्राम बीज की आवश्यकता होती है।

अ 100-200 ग्राम　　　　ब 250-350 ग्राम

स 400-500 ग्राम　　　　द 550-650 ग्राम

4. आलू को कितने सेन्टीमीटर की गहराई पर बोना चाहिए।

   अ 1-2 ब 3-4 स 5-7 द 10-12

5. निम्न में से टमाटर की कौनसी संकर किस्म हैं?

   अ सोनाली　　ब एन ए 601

   स अविनाष - 2 द उपरोक्त सभी

13.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

47. Singh Ranjit,1992, *Fruits,* National Book Trust

48. Katyal,S.L. and Chadha, K.L., 1995, *Vegetable Growing in India,* Oxford and IBH Publishing Company,pp.157

49. Bose,T.K., 1985, *Fruits of India : Tropical and Sub-Tropical,* Naya Prokash, pp.380.

50. Singh, S.P., 1989, *Production Technologies of Vegetable Crops,* ARCC, pp.380.

51. National Horticulture Data Base, National Horticulture Board Agriculture Ministry, Government of India.

52. शर्मा, ओ.पी., इन्टोडिया, एस.के. शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, *शस्य-विज्ञान(कृषि वर्ग)* माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.

53. श्रीवास्तव, एस. एस. उद्यान विज्ञान, 2013, सेंट्रल बुक हाउस, रायपुर.

इकाई 14

शोभायान या पुष्प उद्यानिक

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 हरियाली

14.3 गुलाब की खेती

14.4 सेवन्ती या गुलदाउदी की खेती

14.5 डहलिया की खेती

14.6 ग्लैडिओलस की खेती

14.7 सारांश

14.8 अभ्यास प्रश्न

14.9 संदर्भ सामग्री

14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि -

- दुब लगाने की तकनीकी सीख पाएगें।
- मुख्य पुष्पों की खेती की उन्नत तकनीक ज्ञात कर पाएगें।
- पुष्पों की प्रमुख किस्में जान पाएगें।
- पुष्पों का पौध संरक्षण का ज्ञान प्राप्त कर पाऐगें।

14.1 प्रस्तावना

पौधों के भाव जगत का मनुष्य के भाव जगत में गहरा संबंध है। शोभायान उद्यानिक या पुष्प् उद्यानिक अन्तरम की भाषा है। यह विषय पर्यावरण सुधार के लिए मनुष्य से भवानात्मक रूप से संबंधित हैं। तृणा से लेकर तरू तक का वैज्ञानिक विश्लेषण ही इस विषय का सार तत्व है।

14.2 हरियाली

भूमि पर दूब की चट्टाईनुमा पर्त बनाना जिससे भूमि समान रूप से हरी दिखाई देने लगे हरियाली अथवा लॉन कहते है। हरियाली छोटे एवं बड़े अलंकृत उद्यान का अभिन्न अंश है।

उपयुक्त स्थल -

हरियाली सभी प्रकार की भूमि पर तैयार की जा सकती है, मात्र अति सघन छायादार स्थल, क्षारीय भूमि तथा ऐसी भूमि जिसमें जल निकास न हो, को छोड़कर। उपर्युक्त स्थानों पर भी थोड़ा अधिक प्रयास करने पर लॉन लगाई जा सकती है।

भूमि की तैयारी - भूमि घास या दूब के बढ़ने के लिए भुरभुरी बन जाये, समतल हो और आवश्यकता से अधिक जल सरतला से निकल जायं यही भूमि की तैयारी के उद्देश्य हैं। भूमि को 30-45 सेमी गहरी खोदकर, कंकड - पत्थर, झाड़ियों या घास की जड़े आदि निकालकर 15 दिन के लिये खुली छोड़ दें। वर्षा ऋतु के पूर्व ऐसा करना उचित रहता है जिससे कि उस भूमि में पर्याप्त धूप लग जाएं। मिट्टी चिकनी किस्म की हो तो इसमें रेत मिलना चाहिए। यदि रेतीली है तो काली मिट्टी मिलाना चाहिए। गोबर की खाद या कम्पोस्ट 25 से 30 किलो प्रति वर्ग मी. के अनुपात में अच्छी तरह भूमि में मिला दें। अच्छी तरह भूमि को समतल करें जिससे कि किसी भी स्थान में पानी न रूके। समतल कर सिंचाई कर दें। दो - तीन दिन पश्चात पुनः निरीक्षण करें कि भूमि समतल है या नहीं। यदि समतल नहीं है, तो समतल करें।

उपयुक्त घास का चुनाव करें - भूमि के उपयोग के अनुसार घास का चुनाव किया जाता है। सामान्य रूप से दूब या साइनोडॉन डैक्टाइलान हरियाली या लॉन लगाने के लिए उपयोग में लायी जाती है। वृहद् स्थलों पर जहां लोन पर अधिक खर्च हो तथा सावधानी कम की जा सकती हो और सिंचाई के लिए पानी कम हो, वहां पर देशी दूब घास उपयुक्त होती है और देख रेख अधिक चाहती हैं। अमेरिकन टिफिन शीतल स्थानों के लिए उपयुक्त होती है। घास किसी भी किस्म की चुने पूर्णतया परिपक्व छोटे अन्तर के गांठों वालर हो तथा जिसे छायादार स्थानों पर न उगाया गया हो।

घास लगाने की विधि - अगस्त-सितम्बर माह घास लगाने के लिए सर्वोत्तम होता है। घास लगाने के पूर्व भूमि पर उगे हुए खरपतावार खुरपी से अलग कर दें। घास लगाने की चोभना या हाथ से लगाना विधि सर्वोत्तम होती है। इस विधि में घास लगाने वाले क्षेत्र 15 सेमी के अन्तर पर खूंटी द्वारा निशान बनाकर घास लगा दी जाती है। घास लगाने के पश्चात् हल्का बेलन चला दिया जाता है जिससे कि घाव दब जाये। तत्पश्चात हल्की सिंचाई कर दें। इस विधि से लॉन 4-5 माह में तैयार हो जाती है। घास लगाने की अन्य विधियां भी है, जैसे घास के बीज बोना, घास की कुट्टी बनाकर मिट्टी में मिला देना, तैयार घास को मिट्टी सहित ईटों के समान भूमि पर जमा देना आदि, किन्तु ये विधियां संतोषजनक नहीं हैं। बीज द्वारा लॉन तैयार करने में समय अधिक लगत है और खरपतवार की संख्या अधिक रहती है। तैयार घास को मिट्टी सहित जमाने में यद्यपि लॉन शीघ्र तैयार हो जाती है किन्तु इसमें खर्च अधिक होता है।

कटाई तथा बेलन चलाना - जब घास भूमि में फैलाकर उसको अच्छी तरह ढक ले तब एक बार हल्का बेलन चलाकर घास की कटाई करें। घास की कटाई की मशीन से की जाती है। आरम्भ में हल्के रूप कटाई करें। कटाई की गहराई क्रमश बढ़ाते जाएं जब तक कि इच्छानुसार घास की तह न बन जाए।

14.3 गुलाब की खेती

वानस्पतिक नाम - रोजा इंडिका

कुल - रोजेसी

सामान्य विवरण - गुलाब एक झाड़ीनुमा बहु-वर्षीय पौधा है जो कि सुन्दर पुष्पों के लिए उगाया जाता है। उत्पत्ति स्थान निश्चित नहीं है किन्तु रोम, मिस्र और भारत में प्राचीन काल से उगाया

जाता है। यह सर्वाधिक लोकप्रिय पुष्प है, इसलिए फूलों का राजा कहा जाता है। सुन्दरता के लिए क्यारियों तथा गमलों में उगाया जाता है। फूलदानों में भी सजाया जाता है। गुलाब जल, गुलाब इत्र, गुलकंद तथा पेय पदार्थ तैयार करने में गुलाब का उपयोग होता है। विटामिन सी भी गुलाब में होता है। गुलाब का पौधा एक वर्ष में दो किलो पुष्प देता है तथा 8 से 10 वर्ष तक फूलता रहता है। जिस क्यारी में इसे उगाया जाता है, रोजरी और गुलाब उत्पादक को रोजेरियल कहते है।

पंखुड़ियां - कड़वी, कर्षली और उत्तम सुगन्ध वाली होती है। शीतलानाशक, दस्तावर, उत्तेजक, ज्वरनाशक, त्रिदोष नाशक, जलन नाशक। कुष्ठ में लाभदायक मुंह की गंध नष्ट करता है। क्षुधावर्धक, कफ निःसारक, हृदय बलवर्धक और आंखों के लिये उत्तम। सिर दर्द, पेट दर्द, मुकपाक में लाभदायी। फेफड़े गुर्दे तथा यकृत में लाभकारक। गर्मी, पुरना ज्वर, दाह, सूजन में आराम पहुंचाता है। (आयुर्वेद) । गुलाब के तेल में सिट्रोनेलाल, नेराल, जिरेनिऑल, लिनेलूल, फेनिल एथिल एल्कोहॉल, फार्नसोल, सिट्रल, यूजिनॉल प्रमुख रासायनिक तत्व होते है। इसके साथ ही कुछ अन्य तत्व जैसे ' डैमस्कोन, रोज ऑक्साइड और राजे फ्यरान आदि।

प्रमुख किस्में - गुलाब को 18 प्रजातियों में विभक्त किया गया है, जिनमें 8 प्रजातियां जंगली गुलाब की है। कुछ प्रमुख जातियां इस प्रकार है -

1. **टी रोज -** सुगन्धित पुष्प जिनके खिलने पर चाय की पत्तियों जैसी सुगन्ध आती है। विपुलता से फुलते है। संकर - टी किस्मों के विकास के कारण इन्हें कम लगाया जाता है। लेडी हेलिग्डन मोली शर्मन आदि प्रमुख किस्में है।
2. **शकर टी रोज -** संकर परपीचुएल्स और टी गुलाब के संकरण से विकसित की गई किस्म हैं। वर्तामन समय में लोकप्रिय किस्में इसी समूह के अन्तर्गत आती है। रंगों के अनुसार कुछ प्रमुख किस्में इस प्रकार हैं -

   सफेद - तुशार, वीर्गो, स्वामी विवेकानन्द, डॉ. होमी भाभा।

   गुलाब - कान्फीडेन्स, फम्र्ट प्राइज, मिशेल मैलेण्ड।

   पीला - गोल्डेन जाइण्ट, मैेक-ग्रेडी सन-सेट, पीस, रंभा, गे्रनेडा, ग्रेन्ड मेरी जेनी, किंग रेन्सम।

   नारंगी-सिन्दूरी, मूंगा, सिन्दूरी - अरूणा, मान्टीजुमा, सुपर स्टार।

   लाल से गहरा लोहित रंग - एवन, क्रिश्चियन डायर, एलेक्स रेड क्रिमसन ग्लोरी, मिस्टर लिंकन, ओकलाहोमा, कालिमा, लालबहादुर, भीम, एलेक्स रेड, हैपीने।

   मोतिया रंग - ब्लूमून, लेडी एक्स, अफ्रीका स्टार।

   दो रंग मिश्रित - बजाजो (लाल-भूरा-सफेद), फलेमिंग सन्सेट (गहरा नारंगी-पीला), अकेबनो (पीला - लाल)

   मिश्रित रंग - अमेरिकन हेरिटेज, केअर-लेस, लव, किस ऑफ फायर, एनविल स्पार्क, तहीटी थैस।
3. **फ्लोरीबंडा -** संकर टी और बौना पॉलीएन्था के वर्ण संकर हैं। पुष्प समूह में लगते हैं। रंग के अनुसार कुछ प्रमुख किस्म इस प्रकार है -

सफेद - हिमांगनी, आइस वर्ग, तुहीन, समरस्नो।

गुलाब - डल्ही प्रिसेज, क्वीन, एलीजाबेथ, प्रेमा।

पीला - गोल्डेन जाइण्ट, मैेक-ग्रेडी सन-सेट, पीस, रंभा, गे्रनेडा, ग्रेन्ड मेरी जेनी, किंग रेन्सम।

नारंगी-सिन्दूरी, मूंगा, सिन्दूरी - शोला, जेम्बरा, इंडिपेंडेस।

लाल से गहरा लोहित रंग - बंजारन, देवदासी

पीला - आर्थर - वेल

मिश्रित रंग - प्रिया, एजिलफेस, लैवेन्डर-प्रिंसेज।

4. **पॉली एन्था -** सतत् रूप से गुच्छों में फूलने वाले गुलाब हैं। शीत सहिष्णू होते हैं। कुछ प्रमुख किस्में इस प्रकार हैं - स्वाती (गहरा लाल), पिंक शावर (गुलाबी), ईको (सफेद), अंजनी (गुलाबी लाल जिसमें सफेद आंखें होती है।)
5. **मिनियेचर** - इन्हें बेबी रोज भी कहते हैं। छोटी पत्तियों तथा फूलों वाले गुलाब हैं। फूल अति सुन्दर होते है, जैसे - बेबी डार्लिंग (नारंगी से नारंगी गुलाबी), बेबी गोल्ड (सुनहरा-पीला), ड्वार्फ किंग (गहरा लाल), बेबी मस्क्रेड (लेमन क्रोम से गुलाबी लाल), क्रीकी (मूंगा रंग), रोजमेरिन (हल्का गुलाबी), सिल्वर टिप्स (गुलाबी पंखुड़ियों की निचली सतह सफेद)
6. **लता गुलाब (क्लाइम्बर एवं रैम्बलर)** - ऐसे गुलाब, बेल गुलाब कहलाते है जो किसी सहार से चढ़ाए जाते हैं। विशुरियाना गुलाब (रोजा विशुरियाना) तथा न्वाइजेट गुलाब (मस्क तथा चाइना गुलाब के वर्ण संकर) प्रमुख रूप से आरोही या लता गुलाब है। यद्यपि क्लाइम्बर तथा रेम्बलर लता गुलाब को ही सामान्य रूप से सम्बोन्धित किया जाता है, किन्तु इन दोनों में अन्तर स्पष्ट होता है। क्लाइम्बर में पुष्प गुच्छों मे आते हैं और वर्ष में एक बार आते हैं। उप पत्तियों की संख्या 7 या 8 होती है। कुछ प्रमुख क्लाइम्बर और रेम्बलर इस प्रकार हे क्लाइम्बर - कॉकटेल (लाल, मध्य में पीला), देहली-व्हाइट पर्ल (सफेद), गोल्डेन शावर (सुनहरा पीला), माश्रल नील (चमकीला पीला), लेमार्क (सफेद), क्रिमसन ग्लोरी (लाल), एनीमोन (गुलाबी)। रेम्बरलर - डोराथ्ज़ी पार्किन्स (गुलाबी), क्रिमसन रेम्बलर (सिन्दूरी), एल्वर्टाइन (तांबा रंग), एक्सेल्सा (सिन्दूरी)।
7. **सुगन्धित गुलाब -** देशी गुलाब (रोजा इण्डिका) डेमास्क गुलाब (रोजा दमाश्काना), वीर्यमान गुलाब (रोजा मोस्चाटा) आदि जातियां सुगन्धित पुष्प उत्पन्न करती है, जिनसे कि इत्र, गुलाब, जल, गुलकन्द आदि तैयार किये जाते हैं, जैसे रोज एडवर्ड, सेलिसयाना।
8. **मानक गुलाब -** गुलाब की कोई किस्म को ऊंचाई पर कलिकायन करके एक तने का रूप दिया जाता है, जिसे मानक गुलाब कहते हैं। तना इतना मजबूत हो जाता है, कि उसके शीर्ष से निकली हुई शाखाओं को व्यवस्थित रखता है। ऐसा तना मूलवृन्त होता है जिसकी लम्बाई 50 सेमी से 150 सेती तक हो सकती है। कुछ प्रमुख किस्में जिन्हें मानक गुलाब के रूप में विकसित किया जा सकता है, इस प्रकार है: एवन (लाल),

क्रिमसन ग्लोरी (गहरा लाल, फ्लेमिंग सन्सेट) (पीला नारंगी), वीर्गो (सफेद), मोन्टीजुमा (मूंगा लाल), आईस वर्ग (सफेद), मसकराडे (विवधि रंग), जेम्बरा (नारंगी) आदि।

किस्मों का चुनाव

गुलाब की किस्मों का चुनाव उगान के उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया जाता है। उद्देश्य निम्न हो सकते हैं।

अ गमला या क्यारियों में सुन्दरता के लिए - ऐसी किस्में चुने जो अधिक फूलने वाला ओजस्वी हों, किन्तु अधिक ऊँचाई वाली न हो, रंग का चुनाव अपनी रूचि के अनुसार किया जा सकता है।

ब प्रदर्शनी के लिए - सुन्दर दिखने वाले, बड़े आकार के पुष्प जो अधिक समय तक ताजा रहने वाले हों।

स इत्र के लिए - सुगन्धित किस्मों को लगाएं।

गुलाब कहां लगाएं -

1. पूर्णतया सूर्य प्रकाश वाले स्थान लगाएं उगते हुए सूर्य का प्रकाश मिलना अति आवश्यक है यह पौधों के लिए विशेष लाभकारी होता है।
2. एकान्त स्थल पर लगाएं। इस अन्य पुष्पों के साथ न लगाएं। अन्य पुष्पों के साथ इसकी शोभा में कमी आ जाती है।
3. निवास या बिल्डिंग के दक्षिण या पूर्व दिशा की ओर लगाएं जिससे कि बिल्डिंग की छाया पौधों पर न पड़े।
4. अधिक रेतीली चिकनी भूमि गुलाब लगाने के लिए न चुनें। रेतीली मिट्टी में जल अधिक आवश्यक होता है और चिकनी मिट्टी में जल का निकास नहीं होता है।
5. दुमट रेतीली मिट्टी जो कम से कम 1 मी. गहराई हो उपयुक्त है। मिट्टी का पीएच मान 6.0-7.5 रहना उतम है।
6. अनेक किस्मों को एक ही क्यारी मे मिश्रित करके न लगाएं।

कैसे लगाएं?

1. चुने हुए स्थानों की भूमि को 0.75 से 1 मी. गहराई तक खुदाई करें और मिट्टी अलग कर दें। दो या तीन दिनो तक इसमें सूर्य प्रकाश तथा वायु लगने दें।
2. गोबर की खाद या कम्पोस्ट 25 किलो प्रति वर्ग मी. स्थान पर मिट्टी में मिलाकर भर दें। इसमें थोड़ी सी राख और चॉरकोल भी मिला सकते हैं।
3. पूर्णतया स्वस्थ पौधे जो निचले तने पर कलिकायुक्त हांे, चुनें।
4. लगाते समय कलिकायुक्त स्थान भूमि से 15 से 30 सेमी. ऊंचा रहे जिससे इस भाग पर मिट्टी तथा पानी न लग सकें।
5. यथा सम्भव सायंकाल पौधे लगाएं तथा तुरन्त सिंचाई करें।

लगाने का समय एवं अन्तर

समय - सितम्बर - अक्टूबर

अन्तर - बोनी किस्में - 45 सेमी

सामान्य किस्में - 60 सेमी

मानक किस्में - 90-120 सेमी.

लता या बेल - 2 से 3 मी.

प्रवर्धन विधि - गुलाब के पौधों को तैयार करने के लिए उद्देश्य के अनुरूप निम्न विधि अपनाएं -

1. सामान्य प्रवर्धन के लिए- कलिकायन (टी या 1) विधि
2. मूलवृन्त तथा देशी किस्मों के लिए - कलम विधि
3. शीघ्र पौधे तैयार करने के लिए - गूटी विधि
4. नई किस्में विकसित करने के लिए - बीज द्वारा

मूलवृन्त के रूप में उत्तरी भारत में रोजा इंडिका, किस्म ओडोरेटा को उपयोगी पाया गया है। दक्षिण और पूर्वी भारत में रोजा मल्टीफ्लोरा का अधिक उपयोग किया जाता है। भारतीय उद्यानिकी अनुसंधान बैंगलोर द्वारा कांटा रहित किस्म का मूलवृन्त विकसित किया गया है, जिसमें कलिकायन करना सरल होता है।

खाद या उर्वरक -

मात्रा : गोबर की खाद /कम्पोस्ट - 5 किलो प्रति पौधा

नाइट्रोजन - 100 ग्रा. प्रति पौधा

फॉस्फोरस - 100 ग्रा. प्रति पौधा

पोटाश - 70 ग्रा. प्रति पौधा

(उपर्युक्त तत्वों को किसी भी उर्वरक के रूप में दे सकते हैं।)

विधि -

गोबर की खाद कटाई - छंटाई के पश्चात् नाइट्रोजन चार भागों में - प्रथम कटाई - छंटाई के पश्चात् द्वितीय, तृतीय, एवं चतुर्थ एक माह के अन्तर से।

फॉस्फोरस एवं पोटाश - दो भागों में - प्रथम कटाई - छंटाई के पश्चात् - द्वितीय दो माह बाद खाद एवं उर्वरक पौधे के तने से दूर फैलाकर पौधे की परिधि में देना चाहिए। खाद और उर्वरक देने के बाद हल्की सिंचाई करना चाहिए।

पत्तियों पर घोल का छिड़काव -

गुलाब के पौधों की उचित वृद्धि एवं अच्छे पुष्पन के लिए पोषक तत्वों का छिड़काव किया जाता है पोषक तत्वों की दृष्टि से यह दो प्रकार का होता है।

1 प्रमुख तत्व मिश्रण	**1 अल्प तत्व मिश्रण**
यूरिया - 40 ग्राम	मैंग्नीशियम सल्फेट -20 ग्राम
ऐमोनियम हाइड्रोजन फॉस्फेट - 20 ग्राम	मैग्नीज सल्फेट - 15 ग्राम
पोटेशियम नाइट्रेट - 20 ग्राम	आयरन सल्फेट - 10 ग्राम
0.3 प्रतिशत घोल का छिड़काव	0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव
अर्थात्	अर्थात्
3 ग्राम एक लीटर पानी । यह घोल कटाई छंटाई के एक माह पश्चात करें।	2 ग्राम एक लीटर पानी । यह घोल पौधे में अल्प तत्व की कमी

पौधे की वृद्धि एवं आवश्यकतानुसार प्रति सप्ताह तब तक पत्तियां परिपक्व न हो जाएं और कलियों की पंखुड़ियों में निखार न आ जाए।	दिखलाई देने पर या पुष्पन के ठीक पहले छिड़काव करें।

सिंचाई:

ग्रीष्म ऋतु में - 10 दिन के अन्तर से

शीत ऋतु में - 15 दिन के अन्तर से

ग्रीष्म ऋतु में - 3 दिन के अन्तर से

शीत ऋतु में - 5 दिन के अन्तर से

सिंचाई का पानी आवश्यकता से अधिक न दें। सिंचाई करते समय यह ध्यान रखें कि पानी पोधों के तने के पास भरा न हों। चारों और थाला बानाकर पानी देना चाहिए।

कटाई - छंटाई एवंज ड़ उपचार -

1. वर्षा ऋतु के पश्चात कटाई - छंटाई एवंज ड़ उपकार करें। (सितम्बर अन्तिम सप्ताह)
2. सूखी तथा रोगग्रस्त टहनियों को निकाल दें।
3. घनी शाखाओं को काट दें।
4. सकर्स अर्थात् भूमि से लगी हुई शाखाओं को काट दें।
5. कटाई 45 अंश पर स्वस्थ कलिका के ऊपर से करना चाहिए।
6. कटाई के पश्चात बोर्डोपेस्ट या चैबटिया पेन्ट कटे हु ए स्थान पर लगा दें। (पेस्ट तैयार करने की विधि पौधे संरक्षण के अन्तर्गत दी गई है।)
7. पौधे के समीवप की मिट्टी हटाकर जड़ों की हल्की छंटाई कर दें। नौ या दस दिनों तक खुला छोड़ दें और सिंचाई न करें। तत्पश्चात् जड़ों को मिट्टी तथा खाद से ढक दें, इस क्रिया को उपचार कहते हैं। इस क्रिया को प्रत्येक दूसरे वर्ष पूर्ण सावधानी से करना चाहिए, अन्यथा पौधे के मरने का भय रहता है।
8. पौधे की सामान्यत कटाई - छंटाई प्रति वर्ष की जानी चाहिए।

पौध संरक्षण - गुलाब से अनेक रोग लगते हैं, जिनमें कि फफूंदी, कैंकर, रोजरस्ट, काले धब्बे, एन्थ्रेक्नोज आदि मुख्य हैं जिनसे पौधे प्रभावित होते हैं और उचित रूप से फूल नहीं दे पाते हैं। इनके नियंत्रण के लिए बोर्डो मिश्रण (2 : 1 : 10) या कैप्टज़न या कैराथेन - 0.5 से 1 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए। गुलाब में सूखा रोग या डाय बैंक का रोग अधिक लगता है। यह रोग अत्यधिक जड़ उपचार, जल निकास कमी, कीट एवं रोगों का आक्रमण तथा पोषक तत्वों की कमी के कारण होता है। इस रोग में शाखाएं सूखती है। इसके नियंत्रण के लिए सूखी शाखाएं काट दें। अल्प तत्वों का छिड़काव करें तथा उत्तम जल निकास की व्यवस्था हो। गुलाब के पौधों में एफिड तथा थ्रिप्स कीट जो पत्तियों का रस चूसते हैं आदि के नियंत्रण के लिए 5 प्रतिशत बी.एच.सी. का भुरकाव या 0.2 घोल छिड़कना चाहिए। इसके अलावा मेलाथियान का भी छिड़काव किया जा सकता है। गुलाब के पौधों के तीव्र कीटनाशक दवाएं जो अधिक जहरीली होती हैं, उपयोग नहीं करना चाहिए। दीमक आदि के नियंत्रण के लिए बी.एच.सी. 5 प्रतिशत का उपयोग करना चाहिए।

14.4 सेवन्ती या गुलदाउदी की खेती

सेवन्ती गुलदाउदी, चन्द्रमल्लिका तथा क्रोसेन्थिमम एक ही पुष्प के नाम हैं, जिनका वंश क्राइसेन्थिमम, और कुल कम्पोजिटी है। यह एकवर्षीय होता है। इसके पुष्प सफेद, पीले, नारंगी, लाल तथा अन्य विभिन्न रंगों में पाए जाते हैं। इनके रंगीन पुष्पों की पंखुड़ियां सूर्य की मधुर किरणों की आभा बिखरती है। यह जापान का राष्ट्रीय पुष्प है। सम्भवतः इसे भारत में सन् 1764 में लाया गया है। तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, राजस्थान, बिहार और मध्यप्रदेश में इसे व्यापारिक स्तर पर लगाया जाता है। मध्यप्रदेश के इन्दौर, रतलाम और उज्जैन जिलों में बहुलता से उगाया जाता है। भारत में ही नहीं विश्व में भी इसे गुलाब के बाद दूसरा स्थान दिया गया है। अखिल भारतीय समन्वित पुष्प विकास परियोजना में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। सेवन्ती को गमलों, क्यारियों, पुष्पों पट्टियों में उगाया जाता है।

फूलदान तथा गुलदस्तों में भी महत्वपूर्ण स्थान है और आर्थिक दृष्टिकोण से भी इस पुष्प का उत्पादन महत्वपूर्ण है।

प्रमुख किस्में - सेवन्ती को पुष्प के आकार तथा पंखुड़ियों की सजावट के आधार पर निम्न समूहों में विभाजित किया गया है -

1. इनकवंड - पंखुड़ियां डण्ठल के ऊपर की ओर घूमती हुई अन्दर की ओर झुकी हुई रहती है। पुष्प गोलाकार रहता है।
2. रिफ्लेसक्ड - पंखुडियां डण्ठल की ओर घूमती हुई बाहर की ओर झुकी हुई रहती है।
3. जापानी पंखुड़ियों का क्रम निश्चित नहीं होता है। पुष्प विभिन्न आकार के होते हैं। पुष्प अधिक लोकप्रिय तथा सुन्दर होते हैं।
4. एनिमोन - पुष्प सुर्यमुखी और एनिमोन की तरह होते हैं। केन्द्र में छोटी छोटी पंखुडियां और डहलिया से मिलती जुलती हैं।
5. रायोनैन्टी - नलिका के आकार पंखुड़ियां मिलकर सुन्दर पुष्प बनाती है। कैक्टस डहलिया से मिलती जुलती है।
6. सिंगल - पुष्पों की पंखुडियों की एक या दो कतार होती हैं और मध्य में बड़ी तस्तरी - नुमा आकार होता है।
7. कास्कैड - कम ऊँची (20 सेमी) लता की तरह जिसमें छोटे छोटे पुष्प रहते हैं। लटकती हुई टोकनियों के लिए उपयुक्त किस्म है।

नवीनतमक किस्में

बड़े पुष्पों वाली (प्रदर्शनी के योग्य)			
सफेद	पीला	बैंगनी	लाल
स्नोवाल	चन्द्रमा	महात्मा गांधी	डायमण्ड
विलियम टर्नर	सुपर जायंट	पीकॉक	जुबली
कस्तूरबा गांधी	जे.एस. ल्वायड बैंगनी	राजा	अल्फ्रोड विल्सन
			मिसेज रीड
लघु पुष्पों वाली (गमलों में)			

मरकरी परफेक्ट ज्योत्सना रीता शरद शोभा	टोपाज इन्दिरा लिलिपुट अर्चना मयूर	ऐस मेहिनी मेहिनी फन्टसी	राखी जीन अरूण श्रृंगार सुहाग श्रृंगार
लघु पुष्पों वाली (गुलदस्ता कट फ्लावर)			
बीरबल साहनी हिमानी बैंग्गी ज्योत्सना	सुजाता कुंदन फ्राड़म	शरद प्रभा नीलिमा आलीसान	जुबली जया ब्लेज फ्लर्ट
लघु पुष्पों वाली (पूजा, माला, वेणी आदि)			
तुषार शरद शोभा शान्ति	मेघदूत अर्चना बसन्ती	राजा ज्योत्सना	कस्तूरी कुन्दन

क्यारियां - क्यारियों की मिट्टी खोदकर भुरभुरी करें और पर्याप्त मात्रा में भूमि के अनुसार खाद मिलाएं।

गमलों में - गमलों में उगाने के लिए यह आवश्यक है कि लगाने से लेकर फूलने तक कम से कम तीन या चासर गमला परिवर्तन करना आवश्यक होता है। गमलों मे कलम लगाने के पश्चात् जब भी गमला परिवर्तन करें उसमें खाद की मात्रा बढ़ाते जाएं। प्रथमतः गमला भरने के लिए एक भाग मिट्टी, एक भाग रेत तथा एक भाग खाद का मिश्रण उचित है। गमला परिवर्तन मार्च, मई, जुलाई और सितम्बर माह में अर्थात् डेढ़ माह के अन्तर से करें।

प्रवर्धन -

1. **कलम द्वारा -** पौधे के फूल समाप्त हो जाने पर (फरवरी मार्च) में 8-10 सेमी छोड़कर काट दें। खाद और पानी दें जिससे कि अनुमानतः एक माह में अनेक छोटी - छोटी शाखाएं 15 सेमी लम्बाई की हो जाएं तो 5-6 सेमी की लम्बाई में काटकर गमलों में जड़े आने के लिए लगा दें।
2. **प्रकन्द द्वारा -** पौधों को फूलने के पश्चात् भूमि से लगा हुआ काट दें। कुछ दिनों पश्चात् अनेक छोटी - छोटी जड़ों से लगी शाखाएं जिन्हें सकर कहते हैं, निकलती है। समूचे पौधे को जड़ सहित निकालकर तथा इन शाखाओं को जड़ सहित अलग कर क्यारियों में लगा दें। इस विधि से पौधा शीघ्र ही तैयार हो जाता है।
3. **बीज द्वारा -** नवीन किस्मों के विकास के लिए यह विधि अपनाई जाती है।

अ **मानक स्वरूप -** बड़े पुष्पों के लिए उचित है। एक से 3 सीधी शाखाएं रहती है, जिसमें फूल लगे रहते हैं। यदि एक पुष्प की आवश्यकता हो तो अन्य तोड़ देना चाहिए।

बहुपुष्पीय विधि - मुख्य तना को ऊपर से तोड़ते जाते हैं, जिससे अनेक शाखाएं निकलती रहती है। इस तरह पौधा कई शाखाओं वाला हो जाता है। यहां तक कि 100 फूल तक हो सकते हैं। यह भी बड़े पुष्पों के लिए अपनाई जाती है।

ब छोटे पुष्पों के लिए चार तरह से पौधे उगाये जाते है -

1. झाड़ीदार स्वरूप - 60 सेमी. की ऊँचाई पर ऊपर से काट देते हैं, जिससे पौधा झाड़ीनुमा बन जाता है।
2. प्रपाती रूप - तने को बढ़ने किया जाता है और बाद में उसे झुककर नीचे बढ़ने दिया जाता है, जिससे पूरा पौधा प्रपात जैया दुश्य बनाता है।
3. झुलते हु ए रूप- बाल्टियों में लटकाकर ये आकार बनाये जाते हैं।
4. लघु स्वरूप - बोनी किस्मों को इस प्रकार उगाया जाता है।

क्षेत्र उत्पादन - इस विधि में सेवन्ती की खेती की जाती है। उनसे पुष्प करने का प्रमुख उद्देश्य रहता है। खाद की मात्रा 37-50 टन होती है। लगाने का अन्तर 30ग30 सेमी होता है। उपज 3 से 6 टन/हेक्टर प्राप्त हो जाती है। शुद्ध आय 50,000 से 15,000 रूपये प्रति हेक्टर हो सकती है।

खाद एवं उर्वरक - पौधे उगाये जाने के उद्देश्य से खाद एवं उर्वरक की मात्रा बदल जाती है। औसत मात्रा इस प्रकार है -

गोबर की खाद - 5किलो/वर्ग मीटर

नाइट्रोजन - 50ग्रा./वर्ग मीटर

फॉस्फोरस - 50 ग्रा./वर्ग मीटर

पोटाश - 20 ग्रा./वर्ग मीटर

गोबर की खाद खेती की तैयारी पर आधी नाइट्रोजन तथा फॉस्फोरस और पोटाश पौधा लगाते समय, शेष नाइट्रोजन 40 दिन बाद दें।

उद्यानिक क्रियाएँ

1. सहारा देना - पौधे कोमल तथा तथा शाकीय होने के कारण बांस का सहारा देना आवश्यक होता है, जिससे पुष्प भी ना टूटे।
2. संकुचन या शीर्षकर्तन - बढ़ते हु ए पौधे का शीर्ष भाग काट देने को संकुचन कहते हैं। इसका उद्देश्य शीर्ष वृद्धि को रोकना और शाखाओं को प्रोत्साहित करना है। पुष्पन को देर से आना और गुलाववत् निर्माण रोकना है।

निष्प्ररोहन - अवांदित कलियों को अलग करना। इसका उद्देश्य पुष्पों का आकार बढ़ाना है। (पौधे की वृद्धि रोकने के लिए कुछ रसायन जैसे बी नाइन और फॉस्फोन का भी उपयोग किया जाता है।

रोग एवं कीट नियंत्रण - जड़ गलन को रोकने के लिए कलम की थीरम से उपचारित करें। पत्तियों में धब्बों को रोकने के लिए डायथेर्न Z का उपयोग करें। कीट (एफिड और थ्रिम्स) के नियंत्रण के लिए मैलाथियान कीटनाशक दवा 0.1 प्रतिशत का उपयोग करें।

14.5 डहलिया की खेती

वानस्पति नाम - डहलिया प्रजाति

कुल - कम्पोसिटी

सामान्य विवरण - डहलिया एक वर्षीय शाकीय पौधा हे, जो सुन्दर पुष्षें के लिए उगाया जाता है। इसका उत्पति स्थल मैक्सिको है। इस पौधे को नामकरण स्वीडन के प्रख्यात वानस्पतिज्ञ ऐन्ड्रिक्स

गस्टैव डहल के नाम पर किया जाता है। इसू रामयल एग्री हार्टीकल्चरल सोसायटी, कलकत्ता द्वारा सनम् 1857 ई. में भारत लाया गया है।

डहलिया का पौधा 0.75 से 1 मी. ऊँचा होता है, जिसमें एक या दो शाखाएं होती है। इसका तना सदैव हरा रहता है और इसके तने तथा शाखाओं के शीर्ष भाग में तीन पुष्प कलिकाएं एक साथ निकलती हैं। डहलिया को गमलो, क्यारियों तथा पुष्प पट्टियों के रूप में लगाया जाता है। इसे अन्य पुष्पों के पौधों के साथ, मिश्रित रूप में नहीं लगाया जाना चाहिए, अन्यथा इसकी शोभा कम जो जाती है। फूल दानों में भी इसे सजाया जा सकता है।

प्रमुख किस्में -

1. एकल किस्म - अर पुष्पक पूर्णतया अतिव्यापी नहीं होते है और उनका शीर्ष कटा हुआ रहता है।
2. एकल कैक्टस किस्म - पुष्प दोहरा, फलों का आकार छोटा 2.5 से 5 सेमी. होता है और पुष्पक प्यालीनुमा होते हैं।
3. एकल प्रदर्शन किस्म - अर पुष्पक चिकने चैड़े, अतिव्यापी और सम्पूर्ण पुष्प को गोलाकार बताते हुए होते हैं।
4. टॉप थम्ब किस्म - पौधे ऊँचाई में मध्यम होते हैं। पुष्प एकल होते हैं। अर पुष्पक चपटे तथा पीछे की ओर मुड़ हुए नहीं होते हैं।
5. सितारा किस्म - दो या तीन कतारें नुकीलें अर पुष्पकों की होती है। आकार छोटा होता हैं। पीछे की ओर कम मुड़े हुए शिरा और बिम्ब से प्याली का आकार निर्मित करते हैं।
6. दोहरे प्रदर्शन एवं मनोहर किस्म - दोहरे, पुष्प 8 सेमी व्यास से अधिक लगभग आर पुष्पक से गोलाकार बाहरी ओर 1 छोटे अर पुष्पक किनारों से पीछे की ओर कम मुड़ते हुए नली के समान छोटे और मुंह पर ठूठ होते हैं।
7. गुच्छा या गुलदस्ता या बौना या टोपी किस्म - पुष्प दोहरे प्रदर्शन एवं मनोहर किस्मों से मिलते-जुलते किस्तु छोटे होते है। अर पुष्पक चपटे और बड़े आकार के (5-8 सेमी.) और छोटे आकार के (5 सेमी. से कम) होते हैं।
8. पामपान कैक्टस किस्म - पुष्प बड़े 7.5 से 12.5 सेमी. व्यास के आकार के होते हैं। अर पुष्पक प्यालीनुमा एवं रंगी या किनारे गहरे रंग के होते हैं।
9. प्रदर्शन किस्म - एक रंगी या बहुरंगी होते है। किनारे हल्के रंग के होते है।
10. कैक्टस किस्म - पुष्प दोहरे जिनके अर पुष्पक के किनारे लम्बाई में घूमते हुए होते हैं। कैक्टस किस्म के पुष्प विभिन्न आकार के होते है। जैसे - जायन्ट कैक्टस - 23 सेमी. से अधिक व्यास वाले पुष्प, बड़े कैक्टस - 18 - 23 सेमी. व्यास वाले पुष्प, मध्यम कैक्टस - 13 से 18 सेमी. व्यास वाले पुष्प, छोटे कैक्टस 8-13 सेमी. व्यास वाले पुष्प, लघु कैक्टस - 8 सेमी. से कम व्यास वाले पुष्प।
11. अलंकृत किस्म - पूर्णतया दोहरे पुष्प वाली किस्म है, जिसमें कि बिम्ब दिखाई नहीं देता। अर पुष्पक चैडे, कम चक्करदार सामान्यता चपटे या थोड़े मुड़े हुए नुकीले होते है। आकार में इस किस्म में विभिन्नता है, जैसे - जायन्ट पुष्प - 25 सेमी से अधिक व्यास वाले पुष्प, बड़े

पुष्प - 20 से 25 सेमी व्यास वाले पुष्प मध्यम पुष्प 15 से 20 सेमी. व्यास वाले पुष्प् छोटे पुष्प 8 से 15 सेमी व्यास वाले पुष्प एवं लघु पुष्प - 8 सेमी से कम व्यास वाले पुष्प।

12. कालरक या माला किस्म - इस किस्म के पुष्प में अर पुष्पक की एक या अधिक कतारें अंगूठीनुमा होती है। छोटी पुष्पक (रंग वाले) बाहरी कतार से अधिक लम्बे होते है। एकल किस्म में एक ही कतार होती है और केन्द्रीय बिम्ब से एक ही कतार होती है। पियोनि कॉलरेट किस्म में दो या अधिक कतारें अर पुष्पक की होती है और कॉलर एक बिम्ब के साथ होता है। कालरेट, अलंकृत डहलिया से मिलते जुलते हैं, किन्तु ये दोहरे पुष्प वाले होते है।
13. पिओनी पुष्प किस्म - इस किस्म में केन्द्रीय बिम्ब के साथ चपटे अर पुष्पकों की दो या अधिक कतारें होती है बड़े पुष्प - 18 सेमी से अधिक व्यास वाले, मध्यम पुष्प 13 से 18 सेमी व्यास वाले पुष्प तथा छोटे पुष्प 13 सेमी से कम व्यास वाले पुष्प।
14. एनिमोन पुष्प किस्म - नली नुमा पुष्पक से घिरी हुई अर पुष्पक की एक बाहरी कतार होती है। बिम्ब पुष्पक के लम्बे होते हैं।
15. लघु पुष्पी- इन्हें आर्किड पुष्पीय कहते है। पुष्प अत्यन्त छोटे होते है।

वृहद अलंकृत - लैवेन्डर परपल (बैंगनी चमेलिया), मिसेज हेस्टर पोप (लाल)

मध्यम अलंकृत - बैलीगोज ग्लेरी (सुनहरा), ब्रेडेरिस (लाल रंग सिन्दूरी)।

लघु अलंकृत - ब्लू लैगून (पीला-बैंगनी), ब्रेडेरिस (लाल रंग सिन्दूरी)

कैक्टस डहलिया - पायोनियर यलो (पीला), प्योरिटी (सफेद)

पॉम्पन - लिप्टोनिया (गुलाबी, नीला), पिंक ब्यूटी (गहरा गुलाबी)

बौना डहलिया - डाउन हार्म (पीला), जेस कैट (सुनहरा एप्रीकाट)

प्रवर्धन विधि - कन्द द्वारा, कलम द्वारा बीज द्वारा

कंद द्वारा - डहलिया की जड़े शकरकन्द के समान अनेक संख्या में होती है। इन्हें काटकर पौधा तैयार किए जाते हैं। जड़े शिखर से जुड़ी हुई रहती है और इनमें आलू के समान आंखें (कलिकाएं) स्पष्ट नहीं होती है। इन जड़ों के गर्म और नरम स्थान में रख दिया जाय तो कुछ समय बाद कलिकाएं स्पष्ट हो जाती है। इन कलिकाएं को काट कर लगा दिया जाता है, जिनसे पौधा तैयार हो जाता है।

कलम द्वारा - कलम नई और तेजी से बढ़ती हुई शाखाओं से ली जाती है। प्रत्येक कलम में 2 से 3 गांठें और 4 से 6 पत्तियां होनी चाहिए। कलम लगाने के लिए अगस्त माह उतम है किन्तु अक्टूबर और नवम्बर तक कलमें लगायी जा सकती है। कलम लगाने पर इनमें 15 दिनों पश्चात जड़े आ जाती है। कलम में शीघ्र जड़े लाने के लिए हार्मोन चूर्ण सिराडेक्स बी का उपयोग सहायक होता है। इस विधि में अधिकाशतः डहलिया के पौधे तैयार किये जाते है।

बीज द्वारा - नवीन किस्मों के विकास के लिए पौधे से बीज तैयार किये जाते है। बीज बौने के समय सितम्बर से अक्टूबर तक होता है।

कैसे उगाएं

लगाने का समय - मैदानों में - अक्टूबर - नवम्बर

पहाड़ों में - मार्च - अप्रैल

गमलों में उगाना - डहलिया लगाने के लिये 23 सेमी आकार के गमले उपयुक्त होते है। इनमें भरने के लिए मिट्टी का मिश्रण इस प्रकार तैयार करें -

मिट्टी (दुमट) - 8 किलो

सड़ी पत्तियों की खाद - 4 किलो

गोबर की खाद - 8 किलो

हड्डी की खाद - 100 ग्रा.

सुपर फॉस्फेट - 30 ग्राम

म्यूरेट ऑफ पोटाश - 15 ग्राम

चूना - 5 से 10 ग्राम

उपरोक्त मिश्रण में चूना 10 दिन पहले मिला देना चाहिए। तब इसे गमलों में भरना चाहिए। इसके साथ 50 ग्रा. सुपर फॉस्फेट और 25 ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति वर्ग मी. मिला देना चाहिए। पौधे 60×60सेमी. या उनके किस्म के अनुसार दूरी लगाना चाहिए।

फूलों की पट्यिां - यदि डहलिया को फूलों की पट्टियों के रूप में उगाना हो तो पट्टियों को अच्छी तरह तैयार कर तथा क्यारियों के समान खाद तथा उर्वरक मिलाना चाहिए। बीज सितम्बर में बोना उचित है। क्यारियों में गहराई से गुड़ाई न करें। सिंचाई के प्रति सप्ताह या आवश्यकतानुसार की जानी चाहिए। क्यारियों की मिट्टी की ऊपरी पर्त कड़ी नहीं होने देना चाहिए। यदि पौधों की वृद्धि कमजोर दिखाई दे तो 10 से 15 ग्रा. यूरिया प्रति पौधा दें।

सहारा देना - डहलिया का पौधा शाकीय होने के कारण मुलायम होता है, अतः लकड़ी या बांस का सहारा देना अनिवार्य है। गमलों में लगाए गये पौधों को भी सहारा देना आवश्यक है। पौधों को बांस या लकड़ी पर तीन निकलती है। इनमें से दो कलियां तोड़ देना चाहिए। जिससे फूल का आकार बड़ा हो सकें।

कन्द को सुरक्षित रखना - डहलिया के प्रवर्धन का मुख्य स्रोत उनकी कन्दीय जड़े हैं इसलिए इनको आगामी वर्षो के लिए सुरक्षित रखना आवश्यक है। मैदानी क्षैत्रों में मार्च-अप्रैल में पौधा फूल कर मुरझाने लगता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि डहलिया की कंदीय जड़े सुरक्षित रखने के लिए तैयार हैं। इन जड़ों को बिना क्षति पहुंचाए सावधानी से खोल लें। दस सेमी. तना छोड़ के शेष काट दें। इन जड़ों को पानी से धोकर साफ रख ले। गमलों में पत्तियों की खाद भरकर जड़ों को इनमें रख दें। गमलों को शीतल तथा छायेदार स्थान पर रख दें। यदि सुविधा उपलब्ध हो तो शीत संग्रहण में 10 डिग्री से. पर जड़ों की पत्तियों की खाद के साथ सुरक्षित रखा जा सकता है।

पौध संरक्षण : **पत्तियों का झुलसन रोग -** पत्तियो पर भूरे दिखाई देते हैं और कुछ समय बाद ये धब्बे पूरे पौधे में फैल जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए ब्लाइटाक्स 0.5 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।

एफिड - ये कीट पत्तियों तथा फूलो का रस चूसते हैं। इनके नियंत्रण के लिए फालीडाल (1:800) का भुरकाव या मैलाथिया न 50 ई.सी. 0.04 प्रतिशत का छिड़काव करें।

14.6 ग्लैडिओलस की खेती

वनस्पति नाम - ग्लैडिओलस प्रजाति

कुल - इरीडेसी

सामान्य विवरण - यह सुन्दी पुष्पों के लिए जो कट फ्लावर या गुलदस्ता के लिए लोकप्रिय है, प्रसिद्ध है। इसकी पत्तियां तलवार जैसी होती है, तथा तलवार को लैटिन भाषा में ग्लैडियस कहते हैं। इसलिए इसे ग्लैडिओलस कहते हैं। इसे कट फ्लावर, गमलों में, पुष्प पट्टियों के रूप में और व्यापारिक उत्पादन के लिए खेतों में उगाया जा सकता है। कन्द लगाने के 65-70 दिन के बाद छोटे किस्म में और 100 से 120 दिन बाद बड़े किस्म में फल आ जाते हैं। इसका कन्द और पुष्प विदेशों को भी निर्यात किया जाता है।

उन्नतिशील किस्में - अन्य पुष्पों की भांति इसकी किस्मों को दो वर्गों में बांटा गया है - बड़े पुष्प वाली तथा छोटे पुष्प वाली। कुछ नवीनतम विकसित किस्में इस प्रकार है। मीरा (बर्फ जैसे सफेद), नजराना (बैरियम पीला), सपना (बैरियम, पीला, मार्जिन नारंगी) आरती (पापी लाल), अप्सरा (रूबी लाल), (आई.ए.आर.आइ्र द्वारा विकसित) मयूर (नीला गुलाबी), मोहिनी (सफेद) सुचित्रा (कैमिली - गुलाब), अग्नि रेखा (अग्नि लाल), (आई.ए. आर.आई द्वारा विकसित) मुक्ता (गन्धक पीला), मोहिनी (सफेद), अर्चना (मध्य में सफेद धारी), अरूण (सिन्दूरी)।

प्रवर्धन - बीज तथा घनकन्द

उद्यानिक क्रियाएं -

लगाने का अन्तर - 30 ग 30 सेमी

लगाने का समय - अगस्त से अक्टूबर

खाद एवं उर्वरक -

गोबर की खाद - 5 किग्रा /वर्ग मीटर

नाइट्रोजन - 50ग्रा./वर्ग मीटर

फॉस्फोरस - 50 ग्रा./वर्ग मीटर

पोटाश - 20 ग्रा./वर्ग मीटर

फसलों के लिए मिश्रण -

लाल मिट्टी - 2 ग्राम, रेत - 2 भाग, पत्ती की खाद - 2 भाग, मिट्टी - 1 भाग और चारकोल 1/4 भाग । इस मिश्रण के अलावा कुछ समय बाद उर्वरक देना आवश्यक हो जाता है। लगाने के 5 से 6 सप्ताह बाद मिट्टी चढ़ाना और बांस का टेंका देना आवश्यक है।

कन्द संग्रहण - फूल खिलने के 3 से 5 सप्ताह पश्चात् घनकन्द खोद लेना चाहिए। उन्हें सूखने के लिये शीतल और सूखी जगह पर रेत में रखें। सूख जाने पर (आवश्यकता से अधिक नमी निकल जाने पर) संग्रहित करें।

पौध संरक्षण - घनकन्द के सड़न को रोकने के लिए लगाने से पहले 0.05 प्रतिशत ओरिओफन्जिन के घोल में डुबायें। कीट नियंत्रण के लिए 0.02 प्रतिशत मैथिल पैराथियान का छिड़काव करें।

14.7 सारांश

गुलाब की झाड़ीनुमा बहु वर्षीय पौधा है जो पुष्पों के लिए उगाया जाता है इसका उत्पति स्थल अनिश्चत है क्योंकि इसको भारत, रोम तथा मिश्र में आदि काल से उगाया जा रहा है। गुलाब के तेल में सिट्रेनेआल, नेराल, जिरेनिआल, लिनेनूल नामक कई औषधिय यौगिक पाये जने से इसकी उपयोगिता आदिकाल से है। इसका प्रवधन कलमों के माध्यम से किया जाता है। खाद एवं उर्वरकों की आवश्यकतानुसार पूर्ति किया जाना अनिवार्य है।

गुलादाउदी एक वर्षीय पौधा है जो फूलों के लिये ही उगाया जाता है। इसके फल पीले, सफेद, नारंगी आदि विभिन्न रंगों में आते हैं। सम्भावयता भारत इसका आगमन सत्रहवीं शताब्दी में हु आ है। इसको नर्सरी की क्यारियों एवं गमलों में उगाया जा सकता है। ग्लोडियोलस का फूल कट फ्लोवर के लिए विश्व प्रसिद्ध है।

14.8 अभ्यास प्रश्न

1. गुलाब का उत्पति स्थल है -
   (अ) भारत (ब)रोम
   (स)भारत, रोम (द) चीन ( )
2. गुलाब का पौधा है -
   (अ) एक वर्षीय (ब)द्‌वि वर्षीय
   (स)बहु वर्षीय (द) उक्त में से नहीं ( )
3. गुलाब की कुल जातियां है -
   (अ) 10 (ब)15
   (स)18 (द) 21 ( )
4. गुलाब सफेद फूल वाली किस्म है -
   (अ) हिमांगनी (ब)क्वीन
   (स)शोला (द) आर्थर वेल ( )
5. गुलदाउदी में लाल फूल की किस्म है
   (अ) जुबली (ब)राजा
   (स)पीकॉक (द) सुपर जायंट ( )
6. गुलदाउदी में पीले फूल की किस्म है -
   (अ) इन्त्रोसेंस (ब)चन्द्रमा
   (स)राजा (द) जुबली ( )

14.9 संदर्भ सामग्री

1. Singh ,Ranjit,1992,Fruits,National Book Trust.

2. Katyal ,S.L. and Chadha,K.L.,1995,Vegelable Growing in India ,Oxford and IBH Publishing Company,pp.157.
3. Bose, T.K.1985, Fruits of India : Tropical and Sub- troprical ,Naya Prokash,pp.637.
4. Singh,S.P.,1989,Production technologies of Vegetable Crops ,ARCC,pp.380
5. National Horticulture Data Base ,National Horticulture Board Agriculture Ministry,Government of India.
6. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.
7. श्रीवास्तव, एस. एस., उद्यान विज्ञान, 2013, सेंट्रल बुक हाउस, रायपुर.

इकाई 15

सब्जी एवं फल परिरक्षण (संरक्षण)

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देष्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 सब्जी एवं फल संरक्षण - अर्थ, परिभाषा एवं अधिनियम

15.3 सब्जी एवं फल संरक्षण के महत्व

15.4 सब्जी एवं फलों के परिरक्षण की विधियाँ

15.5 फलों एवं सब्जियों के नष्ट होने के कारण

15.6 सब्जी एवं फलों की डिब्बाबंदी

15.7 फलों एवं सब्जियों के उपयोग

15.8 सारांश

15.9 बोध प्रश्न

15.10 संदर्भ ग्रन्थ

15.0 उद्देष्य

मनुष्य को अपनी भूख शांत/संतुष्ठ करने के लिए भोजन मूल आवश्यकता है। अधिकांश कृषि उत्पाद जैसे अनाज, दाले, फल एवं सब्जियां, दूध, अंडा, मछली तथा मांस खाद्य पदार्थो के अंश है। उत्पादन के पश्चात् तथा उपभोग से पहले इन खाद्य पदार्थो पर कई विपरीत भौतिक एवं रसायनिक कारकों के साथ ही कुछ सूक्ष्मजीव एवं परजीवी के कारण सड़न हो जाती है, जिसके कारण इनके उपयोग से बीमारियां उत्पन्न होती हैं।

इन सभी संख्यात्मक एवं गुणात्मक हानियों से खाद्य पदार्थो को बचाने एवं उन्हें तत्कालिक अथवा भविष्य के लिए उपयोगी बनाने हेतु परिरक्षण (संरक्षण) आवश्यक है।

15.1 प्रस्तावना

फल एवं सब्जियां मानव आहार के महत्वपूर्ण पूरक है । फल एवं सब्जियों से आवश्यक खनिज लवण, विटामिन और रेशे प्रचुर मात्रा में होते हैं जो स्वास्थ को संतुलित रखने में सहायक है। भाग्यवश, फल एवं सब्जियों के उत्पादन में भारत का दूसरा स्थान है परन्तु कई कारणों से उत्पादन का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता और 20-30 प्रतिशत सड़न के कारण बेकार हो जाता है।

फल एवं सब्जियों को सड़न की दो प्रकार से समस्या को हल किया जा सकता है - फल एवं सब्जी उत्पादक क्षेत्रों में तथा मुख्य उपयोगी शहरों के नजदीक शीत ग्रह या शीत श्रृंखला सुविधा का निर्माण करके जिससे वर्षभर ताजी फल एवं सब्जियों की उपलब्धता बनी रहे। दूसरे प्रकार में फल एवं सब्जियों को पसंदकरण कर लम्बे समय हेतु परिरक्षित करने के साथ ही गुणात्मक बदलाव कर अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

15.2 सब्जी एवं फल संरक्षण - अर्थ, परिभाषा एवं अधिनियम

सब्जी एवं फल कीट-रहित करके सुरक्षित रख लिया जाये तथा उनको बाहर भेजने अथवा अपने स्वयं के उपयोग के समय उन्हें हानि से बचा ले तों वे उपयोगी होते हैं एवं आर्थिक हानि से बचा जा सकता है।

इसे इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं -

'फलों एवं सब्जियों को किसी रासायनिक अथवा भौतिक प्रक्रिया द्वारा बगैर किसी क्षति के, उनके गुणों को बनाए रखना एवं उन्हें उनकी सामान्य जीवन अवधि से अधिक समय तक सुरक्षित रखना ही फल एवं सब्जी संरक्षण कहलाता है।'

आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 के खण्ड 3 के तहत फल उत्पाद आदेश 1955 का लक्ष्य, फल एवं सब्जी उत्पाद तैयार करने में स्वच्छ एवं स्वास्थ्यकर दशाओं को विनियमित करना है। सभी फल एवं सब्जी उत्पाद के उत्पादकों को इस आदेश के तहत् लायसेंस प्राप्त करना अनिवार्य है।

स्वास्थ्यकर परिस्थितियों में बढ़िया किस्म के उत्पाद तैयार करने के लिये यह आदेश निम्नलिखित के वास्ते जरूरतें निर्धारित करता है -

1. परिसर, वातावरण और कर्मचारियों की स्वच्छ और स्वास्थ्यकर स्थितियाँ।
2. प्रसंस्करण के लिये उपयोग किये जाने वाला पानी।
3. मशीनरी और उपकरण
4. उत्पाद मानक।

इसके अतिरिक्त, विभिन्न उत्पादों के लिये परिरक्षकों, योगजों और संदूषकों की अधिकतम् सीमायें भी विनिर्दिष्ट की गई हैं। यह आदेश खाद्य प्रसंस्करण उद्योग विभाग, कृषि मंत्रालय भारत सरकार और उसके नई दिल्ली, मुम्बई, कोलकता तथा चेन्नई स्थित क्षेत्रीय कार्यालय के द्वारा तथा लखनऊ एवं गुवाहाटी स्थित उसके उपकार्यालयों के जरिये कार्यान्वित किया जाता है। केन्द्रीय फल सलाहकार समिति जिसमें संबंधित सरकारी विभागों के अधिकारी, तकनीकी विशेषज्ञ, केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिकीय अनुसंधान संस्थान, भारतीय मानक ब्यूरो, फल एवं सब्जी उत्पादक तथा प्रसंस्करण उद्योग के प्रतिनिधि शामिल होते हैं। फल उत्पाद आदेश में संशोधन की सिफारिश के लिये जिम्मेदार हैं।

15.3 सब्जी एवं फल संरक्षण के महत्व -

1. बे-मौसम में इन्हें प्रयोग किया जा सकता है, 2. मौसम में सब्जियों एवं फलों की अधिकता के समय कम कीमत पर संरक्षित कर अप्राप्य मौसम में अधिक धन कमाया जा सकता है। 3. दूरस्थ एवं दुर्लभ स्थानों पर भेजा जा सकता है, जहां वे पैदा नहीं होते। 4. दैवीय आपदाओं - सूखा, बाढ़, भूकंप, युद्ध आदि के समय सब्जी एवं फलों की डिब्बाबंदी कर हवाई जहाजों द्वारा ऐसी जगह भेजा जा सकता है। 5. सड़ने से बचाया जा सकता है तथा कटे फटे फल-सब्जियों का सही सदुपयोग कर सकते हैं। 6. रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं। 7. वर्ष भर स्वादिष्ट फल सब्जी मिलते रहते हैं।

15.4 सब्जी एवं फलों के परिरक्षण की विधियाँ -

1. अल्पकालीन / अस्थायी परिरक्षण   2. स्थाई परिरक्षण

(1) अल्पकालीन / अस्थाई परिरक्षण - इस विधि में फल व सब्जियों के जीवन को कुछ दिनों से कुछ महीनों तक बढ़ाया जा सकता है, इसके बाद इनमें खराबियाँ उत्पन्न होने लगती है, ये विधियाँ हैं -

1. **सफाई** - पेड़ पौधों से फल व सब्जियाँ तोड़ने के बाद जीवाणुओं की क्रिया से ये खराब होने लगती हैं। अतः तुड़ाई से परिरक्षण करने से पूर्व तक जो सफाई की जाती है, बहुत ही महत्वपूर्ण है, अतः इनकी तुड़ाई सावधानीपूर्वक की जाये, साफ टोकरियों में रखा जाये, चोट खाये या दागी फल व सब्जियों को अलग रखा जाये।
2. **कम तापमान** - कीटाणुओं की कार्यक्षमता कम तापक्रम पर धीमी पड़ जाती है जो मरते नहीं, बल्कि निष्क्रिय हो जाते हैं। अतः फल व सब्जियों को फ्रिज में कुछ दिनों के लिये रख सकते हैं, बड़े पैमाने पर इन्हें शीत भंडार में रखते हैं।
3. **हल्के कीटाणुनाशकों का प्रयोग** - खाद्य पदार्थो को अल्प समय के लिये संरक्षित रखने में नमक, चीनी, सोडियम बेन्जोएट, साइट्रिक अम्ल आदि का प्रयोग कम मात्रा में करते हैं।
4. **पाश्चुराइजेशन या भाप विधि** - खट्टे फलों के रस को स्थाई रूप से तथा खटास रहित खाद्य पदार्थो को अस्थाई परिरक्षण कर सकते हैं।

(2) **स्थाई परिरक्षण** - फल व सब्जियों को लंबे समय तक खाने योग्य रखने हेतु कीटाणुओं को नष्ट करके अथवा निष्क्रिय करके परिरक्षण किया जा सकता है, जिसकी विधियाँ हैं -

1. **गर्मी द्वारा** - किसी खाद्य पदार्थ के सभी कीटाणुओं को नष्ट कर देना ही खौलाना कहा जाता है जिसमें खाद्य पदार्थ को काफी गर्म करना पड़ता है जिसमें विटामिन्स, रंग, स्वाद आदि नष्ट हो जाते हैं। यदि खाद्य पदार्थ को केवल इतना गर्म करें कि उसमें उपस्थित कीटाणु निष्क्रिय हो जायें तो उसे प्रोसेसिंग कहेंगे, अतः सब्जियों एवं फलों की डिब्बाबंदी इसी सिद्धांत पर कर इन्हें संरक्षित रखते हैं।
2. **चीनी द्वारा** - खाद्य पदार्थ में जब 66 प्रतिशत से अधिक चीनी की मात्रा हो जाये तो वह स्थाई रूप से सुरक्षित हो जाता है। चीनी की वजह से कीटाणु मरते नहीं है बल्कि गाढ़े घोल की वजह से ओसमोसिस की क्रिया से निष्क्रिय हो जाते हैं और कभी कभी मर भी जाते हैं, जैम, जैली, मार्मलेड, कैण्डी, मुरब्बा, सीरप आदि इसी सिद्धांत पर बनाये जाते हैं।
3. **नमक द्वारा** - साधारण नमक, कीटाणुओं के लिये विष का कार्य करता है तथा ओसमोसिस क्रिया घटा देता है। आमतौर पर 15 प्रतिशत या अधिक नमक द्वारा फल एवं सब्जियों का स्थाई संरक्षरण हो जाता है जैसे - अचार में।
4. **एसीटिक एसिड द्वारा** - साधारणतः 2 प्रतिशत एसीटिक अम्ल की उपस्थिति से खाद्य पदार्थो का स्थाई संरक्षण किया जा सकता है सिरका में 4-5 एसीटिक अम्ल होता है, अचार में इसका प्रयोग करते हैं।

5. **रसायनों द्वारा** - उचित मात्रा में पोटेशियम मेटा बाई सल्फाइड या सोडियम मेटा बाई सल्फाइट, सोडियम बेंजोएट आदि से स्थाई संरक्षण किया जा सकता है।

6. **किण्वन** - इस क्रिया से कीटाणुओं तथा एंजाइम की क्रिया से खाद्य पदार्थो के कार्बोहाइड्रेटस का विदारण हो जाता है निर्मित पदार्थो से भी खाद्य पदार्थों का स्थाई संरक्षण हो जाता है, किण्वन 3 तरह के होते हैं -

अ. अल्कोहालिक ब. एसीटिक स. लैक्टिक

अ. **अल्कोहालिक किण्वन** - इस क्रिया में खमीर की कार्बोहाइड्रेट पर क्रिया से अल्कोहल तथा कार्बन डाय आक्साइड गैस बनती है अल्कोहल की अधिक मात्रा में कीटाणु पनपते नहीं एवं मर जाते हैं। शराब इसी से बनती है। अठारह प्रतिशत अल्कोहल पर सारे कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

ब. **एसीटिक किण्वन -** एसीटिक अम्ल द्वारा खाद्य पदार्थ सुरक्षित एवं अधिक स्थाई रहते हैं। अचार, चटनी, कैचप में काम आता है, जो सिरका से एसीटि बनता है जिसमें 4-5 प्रतिशत अम्ल की मात्रा होती है।

स. **लैक्टिक किण्वन** - खाद्य पदार्थ के कार्बोहाइड्रेट, लेक्टिक अम्ल शाकाणुओं की क्रिया से लेक्टिक अम्ल में बदल जाते हैं। दही का जमना लेक्टिक अम्ल शाकाणुओं से होता है।

(3) **सुखाना** - खाद्य पदार्थो को धूप या मशीन या भाप द्वारा सुखाते हैं जैसे -बैर व अन्य फल व सब्जी इनमें सूखने से नमी समाप्त हो जाती है क्योंकि पानी की वजह से कीटाणु पनपते रहते हैं। सुखाने के बाद इन्हें हवाबंद डिब्बों में रख देते हैं।

15.5 फलों एवं सब्जियों के नष्ट होने के कारण -

वस्तुतः फल व सब्जियाँ किसी निश्चित समय के बाद खराब होने लगती है। जिसकी वजह एंजाइम्स, सूक्ष्म जीव, जैसे जीवाणु, फफूंद व खमीर है प्रायः फलों में फफूंद लगने से किण्वन शुरू हो जाता है जिससे फलों में अवांछनीय परिवर्तन होने लगते हैं फलस्वरूप मौलिक रंग, स्वाद तथा पोषक तत्वों का ह्रास हो जाता है, इसके निम्नलिखित कारण हैं -

1. **एंजाइम्स -** यह रसायन पदार्थ प्रत्येक जीव में होता है जो फलों के रंग परिवर्तन में भूमिका अदा करता है जैसे- हरा आम तोड़कर रखने पर पीला पड़ जाना, या सेब को चाकू से काटने पर उसका रंग भूरा होना, जिससे फलों का स्वाद व सुगंध में भी अंतर आता है।

2. **सूक्ष्म जीव** - वैज्ञानिक लुई पाश्चर ने बताया कि खाद्य पदार्थ हवा से खराब नहीं होते हैं बल्कि सूक्ष्मजीवों से होते हैं उन्होंने यह अवधारणा स्थापित कर दी है, ये सूक्ष्मजीव हवा, मिट्टी, पानी में मौजूद रहते हैं, इनमें 3 वर्ग हैं -

क. **जीवाणु** - यह एककोशीय जीव है, जिसे केवल सूक्ष्मदर्शी से ही देखा जा सकता है। अधिकांशतः ये सूक्ष्म जीव क्लोरोफिल रहित होते हैं इसीलिये ये अपना जीवन यापन खाद्य पदार्थो पर ही करते हैं। अधिकतर जीवणुओं को 100 डिग्री सेंटीग्रेड ताप पर अम्लीय

माध्यम से 30-45 मिनिट तक गर्म करके नष्ट किया जा सकता है। ठण्ड में जीवाणु नष्ट नहीं होते हैं।

ख. **फफूंद** - रूई की भांति काली, भूरी, नीली व सफेद रंगों में सड़े फलों सब्जियों में ये फफूंद पनप जाती है, जो गर्मी व नमी पाकर लग जाती है। जैसे- वर्षा में अचार, जैम, जैली पर। जिससे इनका स्वाद कसैला हो जाता है। फफूंद अम्लीय माध्यम में अधिक पनपती है। इन्हें 71-74 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान पर 20-30 मिनिट तक गर्म करने पर नष्ट किया जा सकता है।

ग. **खमीर** - यह एक कोशीय सूक्ष्म जीव है जो रंगहीन या क्लोरोफिल रहित होता है जो स्वयं अपना भोजन न बनाकर खाद्य पदार्थो से लेते हैं। इनकी वजह से फल सब्जियों का स्वाद व रंग बदल जाता हैं। इसे 66 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान पर 20-30 मिनिट तक गर्म करने पर नष्ट किया जा सकता है।

15.6 सब्जी एवं फलों की डिब्बाबंदी -

फलों की डिब्बाबंदी से पूर्व डिब्बों का जीवाणुनाशन करना अनिवार्य है, इसमें प्रायः 3 क्रियायें की जाती है -

क. **निर्जलीकरण** - 1 धूप में सुखाना - फल व सब्जियों को प्रायः लकड़ी की ट्रे में रखकर धूप में सुखाया जाता है लेकिन फलों के रंग व गुणों में अंतर आ जाता है।

2. **मशीन से सुखाना** - ड्रायर डिहाइटड्रेटर यंत्रों द्वारा फल-सब्जी को सुखाया जाता है ताकि इनके अंदर का पानी भाप बनकर उड़ जाये व तापमान 60 डिग्री सेंटीग्रेड रखते हैं।

ख. **डिब्बों तथा बोतलों को वायु रहित करना** - इन्हें गर्म पानी डालकर वायु रहित कर देते हैं। ध्यान रहे डिब्बों अथवा बोतलों का चैथाई भाग गर्म पानी में डूबा रहे जिनका तापक्रम 80-85 डिग्री सेल्सियस रखते हैं। इस बात का ध्यान रहे कि डिब्बे बंद करते समय उनका ताप कम से कम 70 डिग्री सेल्सियस हो यदि डिब्बों में हवा रह जाएगी तो खाद्य पदार्थ का रंग खराब हो जाएगा तथा आॅक्सीजन से विटामिन 'सी' नष्ट हो जाएगी।

ग. **प्रसंस्करण** - फल सरंक्षण में अधिक ताप व देर तक खाद्य पदार्थो को गर्म नहीं करना पड़ता अन्यथा उनके रंग, स्वाद तथा अन्य गुणों में अंतर आ जाएगा। अतः फल एवं खाद्य पदार्थ को पूर्णरूप से जीवाणु रहित न कर उन्हें केवल इतना गर्म करते हैं जिससे उसमें उपस्थित सूक्ष्मजीव निष्क्रिय हो जाए, इसी को प्रसंस्करण कहते हैं। निर्धारित प्रोसेसिंग समय के बाद डिब्बों को शीघ्र ही ठण्डे पानी में डाल कर ठण्डा कर लेना चाहिए, ताकि उनके अंदर बंद किए गए फल अधिक न गल पाऐं।

डिब्बाबंदी के लिए उपयुक्त डिब्बों में पीले रंग की पॉलिश लगा दी जाती है, ताकि फल पदार्थ टीन के संपर्क में न आए, ताकि उसका प्राकृतिक रंग नष्ट न हो। शीशे के जार भी प्रयोग किए जाते है।

फलों की छांट - साफ, धोया हुआ फल प्रयोग में लाते हैं कटे-फटे, चिड़ियों के खाए फलों को इस्तेमाल न करें, ताजे एवं गद्धर फल काम में लें।

फलों की छीलन एवं काटना - फलों को डिब्बों में भरने से पूर्व पहले उन्हें छीलना तथा छोटे टुकड़ों में करना होता है, अतः फलों को दो प्रकार से छीला जाता है -

1. **चाकू द्वारा** - प्रायः Cutting Knife, Peeling Knife, Coring Knife तथा Pitting Knife काम में लाए जाते हैं। आम को छीलकर गुठली निकाल दी जाती है, जबकि अनन्नास को छीलने के बाद एक सेमी की मोटाई के गोल टुकड़े काट लेते है।
2. **कॉस्टिक सोडा द्वारा** - 20 प्रतिशत कास्टिक सोडा का घोल बना दिया जाता है अर्थात एक लिटर पानी में 200 ग्राम कॉस्टिक सोड इस घोल को मलमल के कपड़े पर रखकर 1 से 2 मिनट तक डुबाने के बाद निकाल दिया जाता है और फलों को ठण्डे पानी के बर्तन में छोड़ दिया जाता है। ठण्डे पानी में हाथ से रगड़ने पर छिलका छूट जाता है और फलों पर लगा सोडा भी घुल जाता है। इसके बाद इन छिले फलों को ठण्डे पानी में दूसरे बर्तन में डालते हैं जिसमें 0.5 प्रतिशत साइट्रिक एसिड पड़ होता है। इस क्रिया से बचा हुआ कॉस्टिक सोडा भी नष्ट हो जाता है और फलों में प्राकृतिक खटास फिर वापस आ जाती है।

फलों को डिब्बों में भरना तथा नष्ट करना

फलों को छीलने तथा काटने के बाद कीटाणु रहित डिब्बों में भर लेते हैं। डिब्बों में चीनी का घोल इतना भरते हैं कि डिब्बों के ऊपर से केवल 0.6 से.मी. स्थान रिक्त रहे। अधिकतर 33 से 40 प्रतिशत चीनी का घोल काम में लाते हैं। आम, पपीता, लीची आदि की डिब्बाबंदी में चीनी के घोल में 0.25 प्रतिशत साइट्रिक अम्ल भी मिला देते हैं। भरते समय चीनी के घोल का तापक्रम कम से कम 85 डिग्री सेल्सियस अवश्य हो। डिब्बाबंद करते समय डिब्बे का तापक्रम कम से कम 70 डिग्री सेल्सियस अवश्य होना चाहिए।

सब्जियों की डिब्बाबंदी

फलों की डिब्बाबंदी से सब्जियांे की डिब्बाबंदी में अंतर है, क्योंकि फलों में शक्कर की मात्रा एवं खटास दोनों ही अधिक होते हैं, जबकि सब्जियों में स्टार्च की अधिक मात्रा तथा खटास कम होती है। सब्जियों में फलों की अपेक्षा कीटाणुओं की संख्या भी अधिक रहती है।
सब्जियों की डिब्बाबंदी में निम्नक्रम रखते हैं -

1. **सब्जियों की छांट** - विकसित, मुलायम तथा ताजी सब्जी हो। अधिक पकी, रोगग्रस्त, दागी सब्जी डिब्बाबंदी हेतु न चुनें।
2. **डिब्बाबंदी के लिए तैयारी** - सब्जियों को साफ पानी से धोकर प्रयोग करें। गाजर के गोल टुकड़े या लम्बी फांकें, भिन्डी का डण्ठल वाला भाग काटना, फूलगोभी को 5‘6 सेमी टुकड़ों में काटना, टिन्डे के फलों को चाकू से छीलने के बाद दो टुकड़ों में काटना, पालक की पत्तियों के डण्ठल तथा मुरझाई पत्तियों को निकालना, ध्यान में रखना चाहिए।
3. **ब्लीचिंग** - सब्जियों को छीलने तथा काटने के बाद उबलते हुए पानी में 3 से 5 मिनट तक रखना, ब्लांचिंग कहलाता है। इस क्रिया से सब्जियों की सफाई, रंग निखरना, सब्जियों का आकार घट जाना आदि हो जाते हैं।
4. **डिब्बों में भरना एवं बंद करना** - ब्लांचिग के बाद सब्जियों को डिब्बों में भर देते हैं। खाली डिब्बों को गर्म पानी में उबाल कर जीवाणु रहित कर लेते हैं। सब्जी को डिब्बों में भरने के

बाद ऊपर से 2 प्रतिशत नमक का घोल भर देते हैं अर्थात् 200 ग्राम नमक एक लीटर पानी में घोलें। सब्जी भरे डिब्बों में 0.6 सेमी रिक्त स्थान रहे इसके बाद डिब्बों को गर्म पानी में रखकर वायु रहित कर लिया जाता है फिर तुरंत मशीन से डिब्बों को बंद कर देते है।

5. **प्रोसेसिंग** - डिब्बों को बंद करने के बाद एक बड़े प्रेशर कुकर में रख देते हैं जिसमें 5 सेमी गहराई तक पानी भर लेते हैं। प्रेशर कुकर के ढक्कन को ऐसा बंद करते हैं कि भाप बाहर न निकले, फिर इसे चूल्हे या स्टोव पर रखकर गर्म कर लेते हैं। 10 पौण्ड भाप के दबाव पर सब्जियों को 25 से 50 मिनट तक रखते हैं। मटर को 40-50 मिनट, फूलगोभी पत्तागोभी को 25 मिनट, पालक को 50-55 मिनट, टिन्डा, भिन्डी आलू को 35 मिनट तथा गाजर को 30 मिनट तक रखते हैं। ऐसा करने से डिब्बों के अंदर का तापक्रम 116 डिग्री सेल्सियस तक पहुंच जाता है जिससे सब्जी में उपस्थित कीटाणु निष्क्रिय अथवा नष्ट हो जाते हैं । प्रोसेसिंग के बाद डिब्बों को ठण्डे पानी में डालकर 38 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान तक ठण्डा कर भंडार में रख देते हैं।

15.7 फलों एवं सब्जियों के उपयोग -

1. सतरा तथा नीबूं का स्क्वेश बनाना।
2. टमाटर की चटनी, सौस बनाना ।
3. **फलों का मुरब्बा बनाना** - आंवला, आम, सेब, बेल, करौंदा का प्रयोग
4. **जैम तथा जैली बनाना -** जैम के लिए फल पका हो जैसे - सेब, नाशपाती, आड़ू, खुवानी, अलूचा, स्ट्राबेरी, अनानास, रसभरी तथा जैली के लिए फलों में पैक्टिन पर्याप्त हो, जैसे सेब, अमरूद, करौंदा, बेर, पपीता, अलूचा आदि काम में लाते हैं।
5. **अचार** - फलों एवं सब्जियों का अचार नमक, तेल तथा सिरके द्वारा बनाते है, अतः अचार 4 प्रकार के होते हैं - किण्वित अचार, बिना किण्वित अचार, सिरके (विनेगर) वाले अचार तथा तेल वाले अचार।

15.8 सारांश

देश में भंडारण हेतु शीत भंडार ग्रहों की सुविधा काफी कम है। प्रसंस्करण उद्योगों द्वारा सब्जी एवं फलों के कुल उत्पादन का मात्र 2.0 प्रतिशत ही उपयोग में लाया जाता है। यद्यपि प्रसंस्करण की कामना प्रतिवर्ष तेजी से बढ़ रही है, वर्ष 1997 में यह क्षमता 2.04 मिलियन टन थी जो वर्ष 2012 तक 4.00 मिलिटन पर पहुंच चुकी है।

भारत में सब्जी प्रसंस्कारित उत्पाद का अनुमानित उत्पादन हस प्रकार है -

क्र.	**उत्पाद का नाम**	**उत्पादन (प्रतिशत में)**
1.	फलों का रस एवं गूदा (पल्प)	27 प्रतिशत
2.	जेम एवं जेली	10 प्रतिशत
3.	आचार	12 प्रतिशत
4.	पेय	13 प्रतिशत

5.	संश्लेषित सायरप	08 प्रतिशत
6.	स्क्यश	04 प्रतिशत
7.	टमाटर उत्पाद	04 प्रतिशत
8.	डिब्बा बंद सब्जी	04 प्रतिशत
9.	अन्य	18 प्रतिशत

वर्तमान में देश के अंदर लगभग 5000 पंजीकृत सब्जी एवं फल प्रसंस्करण उद्योग संचालित है। साथ ही बड़ी संख्या में लघु एवं कुटीर उद्योग तथा घरेलू महिलाऐं भी इस व्यवसाय में शामिल है।

भारत में प्रसंस्करण से जुड़े उद्योगों के विस्तार की अपार संभावनाऐं है। यदि कच्चे माल की उपलब्धता के साथ इनकी कीमतों में कमी के साथ ही शील भंडार ग्रहों एवं शीत परिवहन की समस्या हल से जाए तो देश का सब्जी एवं फल संरक्षण उद्योग विश्व स्तर का हो सकता है।

15.9 बोध प्रश्न

1. सब्जी एवं फल संरक्षण के उद्देश्य क्या है?
2. सब्जी एवं फल संरक्षण की परिभाषा एवं लाभ क्या है?
3. सब्जी एवं फल संरक्षण की विधियां कौन-कौन सी है?
4. सब्जियों एवं फलों के नष्ट होने के कारणों का उल्लेख करें?
5. फल एवं सब्जियों के उपयोग लिखें?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. जैली के लिए में पर्याप्त मात्रा में होनी चाहिए -

   (अ) प्रोटीन (ब) पैक्टिन (स) खटास (द) मिठास

2. फलों एवं सब्जियों का स्थायी संरक्षण किसके द्वारा संभव है?

   (अ) 5 प्रतिशत नमक से (ब) 15 प्रतिशत या इससे अधिक नम से

   (स) 1 प्रतिशत नमक से (द) इनमे से कोई नहीं

3. खमीर होता है -

   (अ) एककोशिका वाला सूक्ष्मजीव (ब) बहुकोशिका वाला सूक्ष्मजीव

   (स) इनमे से कोई नहीं

4. फलों में रंग परिवर्तन होता है -

   (अ) प्रोटीन से (ब) एन्जाइम से

   (स) अम्ल से (द) इनमें से कोई नहीं

5. फलों को सुरक्षित रखने के लिए उमें नमी की मात्रा .... प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए ।

   (अ) 20 - 24 (ब) 5 - 10

(स) 40 - 50 (द) इनमें से कोई नहीं

15.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. Singh, Ranjit, *Fruits,* National Book Trust.
2. Katyal, S.L. and Chadha, K.L., 1995, *Vegetable Growing in India,* Oxford and IBH Publishing company, पीपी.157.
3. Bose, T.K., 1985, *Fruits of India : Tropical and Sub- tropical,* Naya Prakash, pp. 637.
4. Singh, S.P. 1989, *production Technologies of Vegetable Crops,* ARCC, pp.380
5. National Horticulture Data Base, National Horticulture Board Agriculture Ministry, Government of India.
6. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.
7. श्रीवास्तव, एस. एस., उद्ययान विज्ञान, 2013, सेंट्रल बुक हाउस, रायपुर.
8. हेण्डबुक आफ एग्रीकल्चर, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद नई दिल्ली